स्वर विहार

कक्षा 12 (संगीत)

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

स्वर विहार

कक्षा 12 (संगीत)

संयोजक

डॉ. सीमा राठौड़
सह–आचार्य, संगीत
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण

डॉ. निर्मला सनाढ्य
सेवानिवृत विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय,
उदयपुर

डॉ. दुष्यन्त त्रिपाठी
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय,
ब्यावर, अजमेर

डॉ. असित गोस्वामी
सह–आचार्य, संगीत वाद्य
महारानी सुदर्शन कन्या
महाविद्यालय, बीकानेर

श्रीमती ज्योति अजमेरा
व्याख्याता, संगीत
राज. बालिका उ.मा. विद्यालय,
कमला नेहरू, जयपुर

पाठ्यक्रम समिति

स्वर विहार

कक्षा 12 (संगीत)

संयोजक :

डॉ. सीमा राठौड़
सह-आचार्य
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण :

1. **डॉ. मधु माथुर**
सह-आचार्य, संगीत (कंठ)
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

2. **डॉ. दुष्यन्त त्रिपाठी**
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर (अजमेर)

3. **श्रीमती सीमा टिक्कीवाल**
व्याख्याता
राजकीय महारानी बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बनी पार्क, जयपुर

4. **श्रीमती अनुपमा भट्ट**
व्याख्याता
राजकीय आदर्श बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय,
गणगौरी बाजार, जयपुर

5. **श्रीमती अमिता अग्रवाल**
व्याख्याता
राजकीय अंध उच्च माध्यमिक विद्यालय, आदर्श नगर, अजमेर

6. **श्रीमती ज्योति अजमेरा**
व्याख्याता
राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय
हल्दियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

प्राक्कथन

'संगीतं वै योगः' विश्व इतिहास में भारत ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जो कि संगीत, काव्य, दर्शन की सीमाओं में सत्य की खोज हेतु प्राचीनकाल से शोधरत हैं, जिनके शोध का मूल अंतर्दृष्टि है। अंतदृष्टि बुद्धि और शरीर की आवश्यकताओं के उत्तर में कार्य करती है तथा साधक को नवीन अन्वेषण हेतु दिशा प्रदान करती है। यद्यपि विज्ञान एवं कला दोनों का स्रोत अंतर्दृष्टि ही है, लेकिन रंगों, लय, स्वर, ध्वनि के आंदोलनों से स्पंदित अंतर्दृष्टि ही संगीत के सौन्दर्य को आहतनाद में व्यक्त करके 'सत्यं शिवं सुन्दरं' रुपी अनाहतनाद का बोध कराती है। आध्यात्मिक दृष्टि से निराकार संगीत ही निराकार ब्रह्म का स्पर्श/अनुभव कर पाता है।

'शब्दो वै ब्रह्म' कोई भी बोला गया शब्द कभी खोता नहीं हैं। वह निरन्तर आकाश में रहता है और आंदोलित होता हैं वह शब्द में व्यक्त की गई आत्मस्थिति/भाव के अनुसार वातावरण में स्पंदित होता हैं। प्रत्येक व्यक्ति संपूर्ण विश्व रुपी वाद्यवृंद में एक वाद्य है और प्रत्येक आवाज इस वाद्य की ध्वनि। शब्द एवं स्वर के अंतर्निहित स्वरुप को समझकर, उसके गहनतम गह्वर में प्रविष्ट होकर दिव्य चेतना के साथ एकाकार होना ही संगीत का लक्ष्य हैं। इसी दायित्व के साथ नादब्रह्म की इयता, सत्ता, महत्ता का सम्मान एवं उसकी शुचिता के निर्वहन का प्रयास रखते हुए **''स्वर विहार''** संगीत पाठ्य पुस्तक कक्षा 12 के लिए यह द्वितीय भाग प्रस्तुत है।

संगीत मनुष्य के उस गुण का विकास करता है, जिस के द्वारा वह सीखता है कि क्या अच्छा है ? क्या सुन्दर है ? किसे सराहना है ? कला एवं विज्ञान के रुप में संगीत एवं कविता के रुप में सुख व दुखानुभूति के रुप में, जीवन में सौंदर्य के प्रत्येक पहलू के रुप में। नवांकुरों की कोमल भावनाओं, कल्पनाओं की उड़ान और विचारों के मंथन से प्राप्त अभिव्यक्ति को नवीन दिशा देने में यह प्रयास सार्थक हो पाएगा, ऐसी मंगल कामना हम व्यक्त करते हैं। **''स्वर विहार''** पुस्तक लेखन के इस द्वितीय संस्करण में भाषायी सम्बन्धी शुद्धाशुद्ध त्रुटि संशोधन हेतु सह–आचार्य डॉ. सहदेव शास्त्री संस्कृत का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

राज्य सरकार एवं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के समस्त नीति–निर्धारकों के हम दिल से आभारी हैं जिन्होंने राज्य की उच्च माध्यमिक शिक्षा–नीति में इस दीप–प्रज्ज्वलन का निमित्त हमें बनाया हैं।

समस्त लेखकगण

पाठ्यक्रम

स्वर विहार

कक्षा 12 (संगीत)

(कण्ठ अथवा वाद्य अथवा नृत्य)

(अ) कण्ठ संगीत गायन (सैद्धान्तिक)

समयः 3.15 घंटा पूर्णांक :24

क्र.सं.	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1.	सैद्धान्तिक 1. परिभाषाएँ, पद्धतियाँ, ग्रन्थ – अध्ययन, समय – सिद्धान्त, घराने एवं जीवन – परिचय 2. राग, ताल परिचय, रागों एवं तालों को लिपिबद्ध करना	16 08
2.	प्रायोगिक – 1. विभिन्न गायन शैलियों का गायन 2. हाथ से ताल लगाना 3. सुगम संगीत एवं राग पहचाना	 50 10 10

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	(अ) निम्नलिखित की परिभाषाएँ : – अलंकार, आरोह, अवरोह, पकड़, वर्ण, ग्राम, मूर्च्छना, गमक, आलाप, तान। (ब) भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियों (उत्तरी व दक्षिणी) की सामान्य जानकारी।	4
2.	(अ) संगीत ग्रन्थों का अध्ययन :– **(i)** भरत कृत नाट्यशास्त्र **(ii)** शारंगदेव कृत संगीत – रत्नाकर **(iii)** भातखण्डे कृत श्री मल्लक्ष्य संगीतम्। (ब) रागों का समय– सिद्धान्त।	4
3.	(अ) घरानों की शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन – ग्वालियर घराना, किराना घराना एवं जयपुर घराना। (ब) तानपुरे की सम्पूर्ण जानकारी (सचित्र)	4
4.	(अ) रागों का शास्त्रीय वर्णन :– वृन्दावनी सांरग, बिहाग, मालकौंस, खमाज, भूपाली, भैरवी। (ब) पाठ्यक्रम की रागों को स्वर – समूह से पहचानना।	4
5.	(अ) रागों की बन्दिशों को स्वरलिपि बद्ध करना। (ब) तालों का परिचय देते हुए तालों को ठाह व दुगुन में लिपिबद्ध करना :– झपताल, एकताल, चौताल, धमार, पंजाबी, त्रिताल।	4
6.	संगीतज्ञों का जीवन परिचय एवं संगीत जगत में योगदान : – **(i)** मीराबाई **(ii)** महाराणा कुम्भा **(iii)** कुमार गन्धर्व **(iv)** उस्ताद अल्लादिया खाँ **(v)** पं. जसराज।	4

(अ) कण्ठ संगीत – गायन (कियात्मक)

समय : 30 मिनट प्रति छात्र पूर्णांक : 70

1. (अ) निर्धारित रागों – मालकौंस, वृन्दावनी सारंग, बिहाग, भूपाली, खमाज और भैरवी में से किसी एक राग में विलम्बित (बड़ा) ख्याल एवं द्रुत ख्याल आलाप–तानों सहित। 20
   (ब) किन्हीं तीन रागों में स्वरमालिका। 05
   (स) किन्हीं दो रागों में छोटा ख्याल आलाप – तानों सहित। 10
   (द) किसी भी राग में तराना, ठुमरी, दादरा (कोई एक रचना) 10
   (ड.) किसी भी राग में ध्रुपद अथवा धमार दुगुन सहित। 05
2. ताल को हाथ से लगाते हुए ठेका एवं दुगुन :– 10
   झपताल, एकताल, चौताल, धमार ताल, पंजाबी ताल, त्रिताल।
3. परीक्षक द्वारा प्रस्तुत की गई राग को पहचानना। 05
4. राजस्थानी लोक गीत, भजन अथवा ग़ज़ल। 05

नोट – बड़ा ख्याल–छोटा ख्याल, दो अन्य छोटे ख्याल, ध्रुपद–धमार हेतु अलग– अलग रागों का चयन करें

स्वर वाद्य (सैद्धान्तिक)

आ– सितार/सरोद/वायलिन/दिलरूबा–इसराज/बांसुरी/गिटार

समय : 3.15 घंटा पूर्णांक :24

	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
सैद्धांतिक	1. परिभाषायें, पद्धतियां, ग्रंथ अध्ययन, समय सिद्धांत, घरानें एवं जीवन परिचय। 2. राग, ताल एवं राग परिचय एवं राग व तालों को लिपिबद्ध।	16 08
क्रियात्मक	1. विभिन्न वादन शैलियों का वादन। 2. हाथ से ताल लगाना। 3. ताल तथा राग पहचानना।	50 10 10

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	अ– निम्न की परिभाषायें : वर्ण, अलंकार, आरोह, अवरोह, पकड़ जोड़ आलाप, तोड़ा, झाला, कृन्तन, जमाजमा, मींड। ब– भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियों की सामान्य जानकारी।	4
2.	निम्नलिखित ग्रंथों का अध्ययन अ– भरतकृत नाट्यशास्त्र, शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, भातखंडे कृत श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् ब– रागों का समय सिद्धांत	4
3.	घरानों की शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन अ– इमदादखानी बाज, मैहर बाज, जाफरखानी बाज। ब– अपने चयनित वाद्य का सचित्र वर्णन।	4
4.	रागों का पूर्ण शास्त्रीय वर्णन अ– मालकौस, वृन्दावनी सारंग, बिहाग, भूपाली, खमाज व भैरवी ब– पाठ्यक्रम की रागों को स्वर समूह द्वारा पहचानना।	4
5.	अ– तालों का परिचय देते हुये तालों को ठाह व दुगुन में लिखना। झपताल, एकताल, चौताल, धमार, पंजाबी ताल, त्रिताल। ब– रागों की मसीतखानी गत एवं रजाखानी गत को लिपिबद्ध करना।	4
6.	संगीतज्ञों का पूर्ण जीवन परिचय : उस्ताद अली अकबर खां, विलायत खां, एन.राजम, विश्वमोहन भट्ट, हरिप्रसाद चौरसिया	4

स्वर– वाद्य (क्रियात्मक)

समय : 30 मिनट प्रति छात्र — पूर्णांक :70

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	(अ) किसी एक राग में मसीत खानी व रज़ाखानी गत (तोड़े एवं झाला सहित)	20
	(ब) पाठ्यक्रम में से कोई 3 रागों में रज़ाखानी गत 2–2 तोड़ों के साथ।	15
2.	(अ) किसी एक लोकधुन को अपने वाद्य पर बजाना।	5
	(ब) वाद्य पर प्रायोगिक प्रदर्शन–मींड, कृंतन, जमजमा	5
	(स) किन्हीं दो रागों में जोड़–आलाप (बिन्दु–1 के अतिरिक्त)	5
3.	तालों का ठेका व दुगुन को हाथ पर लगाने का ज्ञान।	10
4.	परीक्षक द्वारा गाये/बजाये गये रागों की पहचान करना।	5
5.	तबले पर बजाई जाने वाली तालों को पहचानना।	5

ताल वाद्य (इ)
तबला/पखावज (सैद्धांतिक)

समयः 3.¼ घन्टे — पूर्णांक :24

क्र.सं	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
सैद्धांतिक	1 विषय का तकनीकी व प्रायोगिक अध्ययन	13
	2 विषय का ऐतिहासिक व प्रान्तीय अध्ययन	8
	3 जीवन परिचय ज्ञान	3
क्रियात्मक	1 मुख्य प्रस्तुति व अभ्यास का परीक्षण	35
	2 विषय की गहनता की जाँच	20
	3 वाद्य तकनीक व संगत अभ्यास	15

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	(अ) निम्न की परिभाषाएँ–जरब, क्रिया, पेशकार, रेला, मोहरा, उठान, चक्करदार तिहाई (ब) लयकारियाँ – आड़, कुआड़, बिआड़	4
2.	(अ) तालों की तुलनात्मक अध्ययन 1. चौताल – एकताल 2. झपताल – सूलताल 3. दीपचंदी – झुमरा 4. रूपक तीव्रा (ब) पाठ्यक्रम की तालों का वर्णन व दुगुन, तिगुन एवं चौगुन में लिखना– रूपक, तीव्रा, दीपचंदी, झूमरा, पंजाबी, त्रिताल, तिलवाड़ा	6
3.	(अ) अवनद्ध वाद्यों का इतिहास, राजस्थानी लोक अवनद्ध वाद्यों के विशेष संदर्भ में (ब) तबले के प्रमुख बाज– फर्रुखाबाद, बनारस, अजराड़ा	8
4.	जीवनियाँ एवं योगदान – पुरूषोत्तम दास पखावजी, रामशंकर पागलदास, पंडित चतुरलाल, पंडित अनोखेलाल, अहमद जान थिरकवा	3
5.	वाद्य वर्णन – अपने वाद्य का सचित्र वर्णन	3

ताल वाद्य (इ)
तबला / पखावज (क्रियात्मक)

समय : 30 मिनट प्रति छात्र — पूर्णांक :70

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	विद्यार्थी की इच्छानुसार किसी भी ताल का विस्तृतवादन :– उठान, पेशकार, कायदा, गत, परन, रेला, चक्करदार तिहाई युक्त	20
2.	बिन्दु एक के अतिरिक्त किसी ताल में:– पेशकार, कायदा, गत व तिहाई का प्रदर्शन	15
3.	पाठ्यक्रम की तालों को ठेका दुगुन चौगुन व आड़ी लय में बजाना	10
4.	अपने वाद्य को मिलाने का ज्ञान	5
5.	विभिन्न तालों के लहरों के साथ संगत अभ्यास	10
6.	ताल की विभिन्न वादन रचनाओं की पढ़न्त व हाथ से ताल प्रदर्शन	10

(ई) कथक नृत्य (सैद्धांतिक)

समयः 3.15 घंटा — पूर्णांक :24

क्र.सं	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
सैद्धांतिक	1 नृत्य के शास्त्रीय व प्रायोगिक पक्ष का ज्ञान	6
	2 कथक का इतिहास शैलीगत भेद व व्यक्तित्व अध्ययन	9
	3 लोक व शास्त्रीय नृत्यों का अध्ययन	6
	4 ताल अध्ययन	3
क्रियात्मक	1 मुख्य प्रस्तुति व अभ्यास का परीक्षण	45
	2 विषय की गहनता की जाँच	15
	3 अन्य शैली का ज्ञान	10

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	(अ) परिभाषाऐं – नृत्त, नृत्य,नाट्य, तांडव, लास्य, चतुर्विध–अभिनय, प्रमलु संयुक्त हस्त मुद्रा (ब) ठुमरी, भजन, चतुरंग, तराना–गीत शैलियों का ज्ञान	6
2.	(अ) कथक नृत्य का संक्षिप्त इतिहास (ब) लखनऊ व जयपुर घराने का तुलनात्मक अध्ययन	6
3.	नृत्यकारों की जीवनियां– पं. अच्छन महाराज, पं. जयलाल जी, पं.कुंदनलाल गंगानी, पं.गोपीकृष्ण	3
4.	(अ) शास्त्रीय नृत्य शैलियों का ज्ञान – कथकलि, कुचिपुड़ी, मोहिनीअट्टम, सत्रिया (ब) राजस्थानी लोक नृत्य – गैर नृत्य, कच्छीघोड़ी, कालबेलिया	6
5.	तालों को दुगुन व चौगुन में लिखने का ज्ञान तीव्रा, झपताल, इकताल, धमार, पंजाबी, त्रिताल	3

(ई) कथक नृत्य
प्रायोगिक / कियात्मक

समय : 30 मिनट प्रति छात्र **पूर्णांक :70**

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	अंकभार
1.	त्रिताल व झपताल में हस्तकों सहित– 2 ठाठ, 1 सलामी, 1 आमद, चक्करदार तोड़े सहित	20
2.	मुख्य प्रस्तुति –ठाठ, आमद, वंदना, तोड़ा / टुकड़ा, गत निकास, परण, तिहाई, पढंत प्रदर्शन सहित त्रिताल, झपताल, व इकताल में लहरे का ज्ञान	25
3.	पाठ्यक्रम की तालों की प्रस्तुति – दुगुन व चौगुन में।	5
4.	लोक नृत्य की प्रस्तुति	10
5.	विशेष – भाव पक्ष – मुख मुद्रा व अंग प्रत्यंगों द्वारा भाव पूर्ण प्रदर्शन तत्कार– पदाघातों (Footwork) में कुशलता व सफाई लय पक्ष – नृत्य के किसी भी भाग में लय अधिकार	10

अनुक्रमणिका

खण्ड अ	गायन	पृष्ठ संख्या
अध्याय 1.	(अ) परिभाषाएँ	1–8
	(ब) भारत में प्रचलित संगीत पद्धतियाँ	
अध्याय 2.	(अ) संगीत ग्रन्थों का अध्ययन	9–13
	(ब) रागों का समय सिद्धांत	
अध्याय 3.	(अ) घराना	14–18
	(ब) तानपुरे की सचित्र जानकारी	
अध्याय 4.	रागों का शास्त्रीय वर्णन	19–22
	एवं स्वर–समूह से राग–पहचानना	
अध्याय 5.	(अ) स्वर–लिपिबद्ध बंदिश	23–37
	(ब) तालों का परिचय	
अध्याय 6.	संगीतज्ञों का जीवन परिचय	38–42
खण्ड आ	**स्वर वाद्य**	
अध्याय 7.	(अ) परिभाषाएँ	43–50
	(ब) भारत में प्रचलित संगीत–पद्धतियाँ	
अध्याय 8.	(अ) संगीत ग्रन्थों का अध्ययन	51–57
	(ब) रागों का समय–सिद्धांत	
अध्याय 9.	(अ) घराना	58–62
	(ब) चयनित वाद्य का वर्णन	
अध्याय 10.	रागों का शास्त्रीय वर्णन	63–66
	एवं स्वर–समूह से राग–पहचानना	
अध्याय 11.	(अ) तालों का परिचय	67–74
	(ब) स्वर–लिपिबद्ध बंदिश	
अध्याय 12.	संगीतज्ञों का जीवन परिचय	75–80

खण्ड इ	ताल वाद्य	पृष्ठ संख्या
अध्याय 13.	(अ) परिभाषाएँ	81–87
	(ब) लयकारियाँ	
अध्याय 14.	(अ) ताल–परिचय	88–95
	(ब) तालों का तुलनात्मक अध्ययन	
अध्याय 15.	(अ) अवनद्ध–वाद्यों का इतिहास, राजस्थानी लोक वाद्यों के संदर्भ में	96–104
	(ब) तबले के प्रमुख बाज	
अध्याय 16.	संगीतज्ञों का जीवन परिचय	105–108
अध्याय 17.	वाद्य का सचित्र वर्णन	109–113
अध्याय 18.	क्रियात्मक कार्य हेतु संदर्भ सामग्री	114–119

खण्ड ई	कथक नृत्य	
अध्याय 19.	(अ) परिभाषाएँ	120–128
	(ब) गीत शैलियों का ज्ञान	
अध्याय 20.	(अ) कथक नृत्य का संक्षिप्त इतिहास	129–134
	(ब) लखनऊ एवं जयपुर घराने का तुलनात्मक अध्ययन	
अध्याय 21.	नृत्यकारों का जीवन–परिचय	135–138
अध्याय 22.	(अ) शास्त्रीय नृत्य–शैलियाँ	139–146
	(ब) राजस्थानी लोक–नृत्य	
अध्याय 23.	ताल–परिचय	147–150
अध्याय 24.	क्रियात्मक कार्य हेतु संदर्भ–सामग्री	151–158

सरस्वती परन

(ताल त्रिताल)

वीऽणपा ऽणिहेऽ माऽतशा ऽरदाऽ सुधबुध अनतज्ञा ऽनवर दाऽयिनी
सुरलय ताऽलता ऽनगाऽ यनवाऽ दनविऽ धाऽवर दाऽनप्र दाऽयिनी
धवलव स्त्रऔर धवलप ऽद्मधर धवलहंऽ सपर माऽतआ ऽसिनीऽ
तिमिरना ऽशिनीऽ, भवप्रका ऽशिनीऽ ज्ञाऽनध्या ऽनसम्मा ऽनरऽ क्षिणीऽ
सुर-सुर सुर-सुर सुप्रदा ऽयिनीऽ झननन झनझंऽ काऽरव ऽर्शिणीऽ
तिरकिटधेत तिरकिटधेत ब्रऽह्मचा ऽरिणीऽ धातिरकिटतक धुमतिरकिटतक परमजो ऽगिनीऽ
झननन साऽझन ननरेऽ झननन गाऽझन ननमाऽ झननन पाऽझन
ननधाऽ झननन निऽझन ननसांऽ जय-जय जयमां ऽसरऽस्व तीऽऽऽ।
जय-जय जयमांऽ सरऽस्व तीऽऽऽ जय-जय जयमांऽ सरऽस्व तीऽऽऽ।

रचना : डॉ. दुष्यन्त त्रिपाठी

(खण्ड–अ)

संगीत-गायन

अध्याय 1

अ. परिभाषाएं
ब. भारत में प्रचलित संगीत–पद्धतियाँ

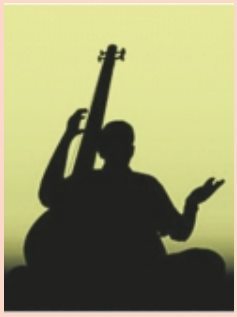

अ. परिभाषाएं

अलंकार–स्वरूप

संगीत में अलंकार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। **वर्ण की नियमित रचना अथवा विशिष्ट स्वर समुदाय को अलंकार कहते हैं।** प्रचार में इसे पल्टा भी कहते हैं। दूसरे शब्दों में नियमित क्रम से की हुई स्वर रचना को अथवा स्वरों की सिलसिले वार रचना को अलंकार या पल्टे कहते हैं । जैसे : – सारेग, रेगम, गमप सारेसारेग, रेगरेगम, गमगमप, इत्यादि।

'संगीत रत्नाकर' में अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।

''विशिष्ट–वर्ण–सन्दर्भम्–अलंकारः प्रचक्षते''

भावार्थ :– विशेष वर्ण समुदायों को अलंकार कहते है।

"The specific Pattern of a certain group of notes is known as Alankar"

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है आभूषण या गहना। जिस प्रकार आभूषण एक स्त्री की शोभा के लिये होते हैं उस प्रकार अलंकार गायन–वादन की सुन्दरता के लिए होते हैं।

स्वर का शीघ्र ज्ञान होना एवं राग का विस्तार समझ में आना ही अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। अलंकार में स्वर संख्या के लिए कोई नियम नहीं है। अलंकार में कई कड़ियाँ होती हैं जो आपस में एक दूसरे से जुड़ी होती है। इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है। संगीत के विद्यार्थियों को प्रारम्भ में नित्य प्रति अंलकार का अभ्यास करना चाहिये। इससे विद्यार्थियों में रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और गायन में गला विभिन्न प्रकार के स्वरों पर घूमने योग्य हो जाता है।

अगर किसी राग में अंलकार बनाने हैं तो उसके आरोह–अवरोह में लगने वाले स्वरों के अनुसार स्वर प्रयोग करने पड़ेंगे। प्रत्येक अंलकार में मध्य सा से तार सां तक आरोही वर्ण और तार सां से मध्य सा तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। इस प्रकार अंलकार आरोह तथा अवरोह दोनों में होते हैं।

संगीत में अंलकार के दो प्रयोजन है :–

(1) विद्यार्थियों के गले एवं हाथ की तैयारी करना तथा स्वर एवं ताल का ज्ञान करना।

(2) गायन वादन क्रिया में इन अंलकारों का प्रयोग कर अपने गायन–वादन को सुन्दर तथा भावयुक्त बनाना।

आरोह– अवरोह

आरोह–अवरोह के शाब्दिक अर्थ के अनुसार स्वरों के चढ़ते क्रम को आरोह और इसके विपरीत स्वरों को उतरते क्रम को अवरोह कहते हैं जैसे षड्ज–स्वर से निषाद की ओर जाने को आरोह कहते हैं तथा निषाद से षड्ज की ओर वापस लौटने को अवरोह कहते हैं।

जैसे– आरोह – सा रे ग म प ध नि सां अवरोह – सां नि ध प म ग रे सा।

गाते बजाते समय गायक या वादक किसी भी एक स्वर पर बहुत समय तक नहीं ठहरता बल्कि वह ऊपर नीचे चढ़ता उतरता है। इसी को हम आरोह–अवरोह कहते हैं।

कुछ रागों में स्वरों का उतार चढ़ाव सपाट न होकर वक्र होता है – जैसे :– राग केदार का आरोह–सा म म प ध प, नि ध सां इसमें ध प और नि ध **आवरोहात्मक** स्वर है फिर भी ये आरोह में रखे गये है और ऐसे अनेक राग है जिनके आरोह–अवरोह इसके शाब्दिक अर्थानुसार ठीक नहीं है। अतः हम आरोह–अवरोह की परिभाषा इस प्रकार दे सकते है राग के चलन के अनुसार मध्य सा से तार सा तक स्वरों के चढ़ते क्रम को **आरोह** और इसके विपरीत तार सा से मध्य सा तक स्वरों के उतरते क्रम को **अवरोह** कहते है।

आरोह–अवरोह राग का एक अनिवार्य तथा महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यह राग में विचरण करने का राग के विस्तार का मार्ग है। यह राग का 'कायदा' है। राग के आरोह–अवरोह से राग का स्वरूप बहुत–कुछ स्पष्ट हो जाता है।

पकड़ :–

जिस स्वर समुदाय द्वारा राग का स्वरूप पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाये राग की पकड़ कहलाता है। स्वयं पकड़ शब्द से यह स्पष्ट है कि जिससे किसी राग को पकड़ा जा सके अर्थात् राग पहचाना जा सके। अर्थात् **राग सूचक स्वर समुदाय पकड़ कहलाता है।**

प्रत्येक राग में कुछ स्वर समुदाय ऐसे होते है जो उस राग को अन्य सभी रागों से अलग दिखा देते है। पकड़ ऐसे ही समुदायों में से एक मुख्य स्वर समुदाय या राग सूचक स्वर समुदाय है जैसे :– नि ध, म प ध, म ग गाते ही खमाज राग का रूप स्पष्ट हो जाता है।पकड़ का उद्देश्य राग को स्पष्ट करने का है। अतः कोई सा स्वर समुदाय जो इस कार्य को पूर्ण कर सके, राग की पकड़ कहा जा सकता है।राग गाते समय पकड़ वाला अंश बार–बार गाया बजाया जाता है जिससे राग स्पष्ट होता रहे तथा उसका पूर्ण स्वरूप श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित होता रहे।

वर्ण:–

गाने की प्रत्यक्ष क्रिया को या गाने के ढंग को वर्ण कहा गया है। **''गान क्रियोच्यते वर्णम् ''** अर्थात् गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। दूसरे शब्दों में गाते बजाते समय विभिन्न स्वरों के प्रयोग के कारण आवाज को जो चाल अथवा गति मिलती है उसे वर्ण कहते हैं।

वर्ण चार प्रकार के होते हैं – जिन्हें स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी वर्ण कहते हैं।

(1) स्थायी वर्ण : – किसी भी एक स्वर को बार–बार गाने, बजाने या उच्चारण करने को 'स्थाई वर्ण' कहते हैं। जैसे – सा सा सा सा अथवा ग ग ग ग यह स्थाई वर्ण हुआ।

(2) आरोही वर्ण : – षड्ज से ऊपर निषाद की ओर स्वरों को गाते या बजाते हुए जाने को 'आरोही वर्ण' कहते हैं जैसे हम 'सा' से ऊपर नि तक सा रे ग म प ध नि इस प्रकार को कहें तो यह आरोही वर्ण कहलायेगा।

(3) अवरोही वर्ण : – निषाद से नीचे षड़ज की ओर स्वरों को गाते या बजाते हुए वापस आने को 'अवरोही वर्ण' कहते हैं। जैसे – नि से नीचे सा तक – नि ध प म ग रे सा स्वरों को गायें या बजाये तो यह अवरोही वर्ण होता है।

(4) संचारी वर्ण : – स्थायी, आरोही और अवरोही इन तीनों वर्णों के मिश्रण या मेल को संचारी वर्ण कहते है अर्थात् ये तीनों वर्ण मिलकर अपना रूप दिखाते है। तब उसे संचारी वर्ण कहते हैं जैसे – सा रे ग सा सा ग रे गम प ध पम गरे सारे सासा रे ग म प म ग म ग रे सा।

गाते या बजाते समय इन सब वर्णों का प्रयोग किया जाता है। किसी भी गायक या वादक को गायन वादन में ये चारों वर्ण अवश्य मिलेंगें इसके बिना गायन क्रिया या वादन क्रिया चल नहीं सकती है।

ग्राम:–

ग्राम शब्द का अर्थ है गांव। यह एक समूहवाधी शब्द है जिस प्रकार कुटुम्ब में लोग मिलजुल कर मर्यादा की रक्षा करते हुए इकट्ठे रहते हैं, उसी प्रकार संगीत में स्वरों के रहने के स्थान को प्राचीन समय में ग्राम कहा जाता था।

जिस प्रकार अलग–अलग गांव में भिन्न–भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं उसी प्रकार संगीत में भिन्न–भिन्न आवाजों के अन्तर पर स्वर स्थित रहते हैं। इस प्रकार प्राचीन समय की संगीत पद्धति में **निश्चित श्रुत्यांतरों पर स्थापित सात स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं।** अतः जब तक स्वरों में श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप से होगी तभी तक ग्राम रहेगा।

ग्राम तीन प्रकार के माने जाते थे, जिन्हें (1) षड्ज ग्राम (2) मध्यम ग्राम (3) गंधार ग्राम कहते थे।

(1) षड्ज ग्राम :– जिस ग्राम में सा रे ग म प ध नि ये सात स्वर चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा, द्वय द्वय निषाद गांधारों,

तिस्री, ऋषभ धैवता अर्थात् चार–चार श्रुतियाँ सा म प की दो दो श्रुतियां नि, ग की और तीन–तीन श्रुतियाँ रे ध की इस नियम के अनुसार 4,7,9,13,17,20 और 22 इन श्रुतियों पर सात स्वर स्थित रहते हैं। इसे प्राचीन समय में षड्ज ग्राम कहते थे।

स्वर –सा रे ग म प ध नि

श्रुति – 4 7 9 13 17 20 22

षड्ज ग्राम में षड्ज स्वर की प्रधानता है इसलिये इसका नाम षड्ज ग्राम पड़ा।

(2) मध्यम ग्राम : – मध्यम ग्राम में सा रे ग म ध नि ये छः स्वर षड़ज ग्राम के अनुसार ही श्रुतियों पर स्थित रहते थे परन्तु पंचम स्वर एक श्रुति कम यानी सत्रहवीं श्रुति के बजाय सोलहवीं श्रुति पर स्थित रहता था। उसे मध्यम ग्राम कहते हैं।

स्वर – सा रे ग म प ध नि

श्रुति – 4 7 9 13 16 20 22

अतः मध्यम ग्राम में सातों स्वर क्रमशः 4, 3, 2, 4, 3, 4, 2 श्रतियों की दूरी पर स्थापित हो गये मध्यम ग्राम का नाम मध्यम ग्राम इसलिये पड़ा क्योंकि इसमें मध्यम स्वर प्रधान होता है।

(3) गान्धार ग्राम : – भरत ने अपने ग्रन्थ में गन्धार ग्राम का वर्णन नहीं किया है। बस इतना ही कहा कि गन्धार ग्राम गन्धर्व लोगों के साथ स्वर्ग–लोक में निवास करता है। गान्धार ग्राम का गायन स्वर्ग–लोक में ही हुआ करता था अर्थात प्रयोग में केवल षड्ज मध्यम ग्राम ही थे।

इस प्रकार ग्राम कुल तीन होते है षड़ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गन्धार ग्राम। इसमें से गन्धार ग्राम स्वर्गलोक में निवास करता है। मध्यम ग्राम का प्रचार अब नहीं है। षड़ज ग्राम में श्रुतियों का क्रम 4,3,2,4,4,3,2 होता है और ये स्वर हमारे काफी थाट जैसे होते है।

मूर्च्छना

क्रमाव्यवस्था सप्तानामारोहश्चावरोहणम् मूर्च्छनेव्युच्यते ग्रामद्वयेताः सप्त सप्तच।। –'संगीत रत्नाकर'

ग्राम में सात स्वरों के क्रमिक आरोह–अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं और दोनों ग्रामों में से प्रत्येक की सात–सात मूर्च्छनाएं बनती है। मूर्च्छना की उत्पत्ति–ग्राम से हुई थी। इस प्रकार षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम से बनी सात स्वरों के सिलसिले वार या क्रमानुसार आरोह–अवरोह को मूर्च्छना कहते थे ग्रामों के सात स्वरों में से प्रत्येक स्वर से आरम्भ करके आठवें स्वर तक आरोह करें फिर उन्हीं स्वरों पर अवरोह करें तो इस प्रकार जो सिलसिले वार आरोह–अवरोह बनेगें वे मूर्च्छनाएँ कहलाएगी।

प्रत्येक ग्राम से मूर्च्छना बनाने का कायदा यह था कि षड्ज ग्राम की मूर्च्छना षड्ज स्वर से आरम्भ की जाती थी और फिर शेष छः मूर्च्छनाएँ मन्द्रसप्तक के अन्य स्वर से आरम्भ की जाती थी। इसी प्रकार मध्यम–ग्राम की पहली मूर्च्छना मध्यम स्वर से आरम्भ की जाती थी।

मूर्च्छना का प्रचार प्राचीन समय में तो अवश्य था परन्तु मध्य काल में मूर्च्छना के अर्थ में परिवर्तन हो गया और आधुनिक काल धारा के प्रवेश आ जाने से मूर्च्छनाओं का अस्तित्व नहीं रह गया है।

गमक :–

आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन्न पैदा होता है तो उसका गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करना ही गमक कहलाता है शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में गमक की परिभाषा इस प्रकार दी है **''स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः''**।

अर्थात् स्वरों के ऐसे कम्पन्न को गमक कहते हैं जो सुनने वालों के चित्त को सुखदाई हो।

स्वरों को गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करने को गमक कहते हैं। गायन में गमक उत्पन्न करने से नाभि पर जोर पड़ता है। ध्रुपद धमार में गमक का खूब प्रयोग होता है। आधुनिक समय में ख्याल–गायन का अधिक प्रचार होने के कारण गमक का प्रयोग कुछ कम हो गया है।

प्राचीनकाल में गमक के 15 प्रकार माने जाते थे। कर्नाटक संगीत में इनमें से अधिकांश का प्रयोग आज भी गमक के नाम से मिलता है किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत में वर्तमान समय में गमकों का प्रयोग प्राचीन ढंग से नहीं होता तथापि किसी न किसी रूप में गमक का प्रयोग वाद्य संगीत और कंठ संगीत में होता अवश्य है। खटका मुर्की, जमजमा, मींड सूत, गिटकरी, कम्पन्न इत्यादि शब्द गमक की

ही श्रेणी में आते हैं। संगीत रत्नाकर में गमक के 15 भेद बताये गये हैं– तिरिप, स्फुरित, कंपित, लीन, आंदोलित, वलित, त्रिभिन्न, कुरुला, आहत, उल्लासित, प्लावित, हुम्फित, मुद्रित, नामित एवं मिश्रित।

आलाप :–

राग के स्वरूप की रक्षा करते हुए विलम्बित लय में स्वर विस्तार करने की क्रिया को आलाप कहते है।

कुछ निश्चित स्वरों के अन्दर विस्तार करने की क्रिया भारतीय संगीत की प्रमुख विशेषता रही है। आलाप में सौन्दर्य –वृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार कण, खटका, मुर्की, भीडं, गमक आदि का प्रयोग होता है जिससे गायक अपनी हृदयगत भावनाओं को व्यक्त करता है। आलाप के प्रमुख तीन रूप है– पहला आकार में और दूसरा बोल आलाप तथा तीसरा नोम–तोम में आलाप। नोम–तोम का आलाप अधिकतर ध्रुपद धमार में तथा आकार का आलाप ख्याल में किया जाता है।

आलाप का प्रयोग मुख्यतः दो स्थानों पर होता है।

(1) गीत अथवा गत के पूर्व

(2) गीत अथवा गत के बीच

गीत अथवा गत के पूर्व का आलाप चार भागों में दिया जाता है – स्थाई अन्तरा, संचारी और आभोग आलाप के बाद गीत अथवा गत को प्रारम्भ किया जाता है और इसी स्थान से तबले का प्रयोग प्रारम्भ होता है।

गाने के बीच का आलाप आकार में छोटा होता है।

प्रत्येक आलाप के बाद गीत अथवा गत का मुखड़ा पकड़ कर सम से मिल जाते हैं।

दोनों प्रकार का आलाप (नोम तोम तथा आकार) राग का स्वरूप, चलन, आरोह–अवरोह तथा न्यास के स्वर का ध्यान रखते हुए किया जाता है। गीत के शब्दों को लेकर आलाप करने को बोल–आलाप कहते हैं।

तान :–

तान का अर्थ है फैलाना या तानना अर्थात् कुछ स्वरों को एक साथ गाने को तान कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते है कि द्रुतगति में राग के स्वरों के गाने को तान कहते हैं।

आलाप और तान में केवल गति का अन्तर होता है अन्यथा दोनों समान हैं। आलाप – तान–द्वारा गीत में सुन्दरता तथा वैचित्र्य उत्पन्न होता है तथा गीत काफी समय तक बढ़ाया जा सकता है।

तानें कई प्रकार की होती हैं जैसे शुद्ध तान, सपाट तान, कूटतान, छूट की तान, खटके की तान, झटके की तान, वक्रतान, जबड़े की तान आलंकारिक तान, मिश्रतान तथा बोलतान इत्यादि। तानों का प्रयोग ख्याल नामक गीतों में बहुत होता है क्योंकि इस गायन में तान लेने की स्वतन्त्रता दी गई है। ध्रुवपद गायन में ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है तान छोटी–से–छोटी और बड़ी से बड़ी हो सकती हैं।

तानों का प्रयोग गाने के बीच में होता है। वाद्यों में प्रयोग किये जाने वाली तानों को तोड़ा कहते है। छोटे ख्याल में अधिकतर दुगुन और कभी कभी बराबर की लय की और बड़े ख्याल में चौगुन, अठगुन, बारह गुन, सोलह गुन के लय की तान बोलते है।

Milestone of Hindustani Music
Ut. Amir Khan Sahib

ब. भारत में प्रचलित संगीत–पद्धतियाँ

भारत वर्ष में मुख्य रूप से दो प्रकार की संगीत पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

प्राचीनकाल में सम्पूर्ण भारत में संगीत की केवल एक पद्धति थी लेकिन विदेशी आक्रमणों के कारण ये अलग–अलग हो गई। क्योंकि विदेशी आक्रमणों का प्रभाव उत्तर भारत में अधिक पड़ा। दक्षिण भारतीय संगीत पर कोई बाह्य प्रभाव न पड़ा। अतः वहाँ का संगीत अपरिवर्तित रहा।

इस प्रकार भारतीय संगीत में प्रमुख रूप से दो प्रकार का संगीत मिलता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति तथा कर्नाटक संगीत पद्धति केसंस्थापक आचार्य

(1) हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति :–

यह संगीत–पद्धति तमिलनाडू, कर्नाटक, केरल एवं आन्ध्रप्रदेश को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हैं। इसे उत्तर भारतीय संगीत पद्धति भी कहते हैं।

(2) कर्नाटक संगीत–पद्धति :–

यह पद्धति तमिलनाडू, कर्नाटक, केरल तथा आन्ध्रप्रदेश की ओर प्रचलित है। इसे दक्षिणी संगीत–पद्धति भी कहते है।

वास्तव में हिन्दुस्तानी और कर्नाटकी इन दोनों संगीत–पद्धतियों का बीज एक ही है परन्तु दोनों एक दूसरे से स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र होते हुए भी दोनों में कुछ समानता तथा भिन्नता है।

हिन्दुस्तानी संगीत

(1) हिन्दुस्तानी संगीत–स्वर प्रधान होता है।

(2) इस पद्धति में केवल गीत की बंदिश निबद्धरूप में गायी जाती है, अन्य सम्पूर्ण विस्तार अनिबद्धरूप से किया जाता है।

(3) हिन्दुस्तानी संगीत–शैली के अन्तर्गत अलाप, बोल तान तथा तान इत्यादि को प्रयोग में लाया जाता है।

(4) विलम्बित ख्याल की लय अति विलम्बित होती है।

(5) हिन्दुस्तानी संगीत का स्वरूप् अनिबद्ध होने के कारण तबले पर ताल के ठेके का अखण्ड रूप से बजते रहना जरूरी है।

(6) इस पद्धति में ध्रुपद, धमार, ख्याल, भजन या ठुमरी इत्यादि शैलियों के गायन का प्रदर्शन किया जाता है।

कर्नाटक संगीत

(1) कर्नाटक संगीत मुख्यतः निबद्ध रूप से गाया जाता है।

(2) कर्नाटक संगीत लय प्रधान अथवा ताल प्रधान होता है।

(3) कर्नाटक संगीत में गायन करते समय केवल संगतियाँ, नेरावल और सरगम का प्रयोग होता है तथा आलाप तान नहीं ली जाती।

(4) गीतों की लय प्रायः मध्यलय में रहती है।

(5) कर्नाटक–संगीत का स्वरूप निबद्ध होने के कारण मृदंग पर इनकी ताल का उपयोग संगीत का सौंदर्य बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता है और ठेका बंद होने पर भी गायन को कोई नुकसान नहीं पहुँचता।

(6) रागम्, तालम्, पल्लवी तथा कीर्तनम् या कृति का प्रदर्शन किया जाता है।

समानता

(1) दोनों ही पद्धतियों में शुद्ध और विकृत स्वर मिलाकर कुल बारह स्वर स्थान है।

(2) दोनों ही पद्धतियों में बारह स्वरों से थाट या मेल पद्धति के आधार पर रागों की उत्पत्ति होकर संगीत में उनका प्रयोग किया जाता है।

(3) दोनों पद्धतियों में आलाप–गान को स्वीकार किया जाता है।

(4) दोनों में ही आलाप एवं तानों के साथ चीजे गाई जाती है।

(5) जन्य–जनक (थाट–राग) का सिद्धान्त दोनों में ही स्वीकार किया गया है।

भिन्नता :–

(1) दोनों ही संगीत पद्धतियों में यद्यपि स्वर–स्थान बारह ही माने गए हैं ,किन्तु दोनों के स्वर तथा नामों में अंतर है।

(2) उत्तरी संगीत पद्धति में केवल दस थाटों में रागों को वर्गीकृत किया गया है, किन्तु दक्षिणी पद्धति में बहत्तर थाटों या मेलों का प्रमाण मिलता है।

(3) दोनों पद्धति में भाषा का अन्तर है।

(4) दोनों पद्धतियों में ताल भिन्न–भिन्न है।

(5) दोनों शैलियों में स्वरोच्चारण तथा आवाज निकालने की शैलियाँ भिन्न–भिन्न है।

(6) दोनों पद्धतियों के प्रायः अपने स्वतन्त्र राग है।

(7) दक्षिणी संगीत–पद्धति के शुद्ध सप्तक को कनकांगी अथवा मुखारी मेल कहते हैं किन्तु उत्तरी–संगीत पद्धति के शुद्ध स्वर–सप्तक को बिलावल ठाठ कहा जाता है।

मुख्य बिन्दु –

- अभ्यास करते समय स्वरों को निश्चित क्रम से छोटे–छोटे समूह में रचकर जो टुकड़े बनते है, उन्हें अलंकार कहते हैं। 'भरत मुनि' ने अलंकारों को संगीत में एक आवश्यक तत्त्व माना है भरत का इसकी आवश्यकता संबंधी यह कथन है कि जिस प्रकार चन्द्ररहित रात्रि, जल विहिन नदी पुष्प रहित लता, जल विहिन नदी एवं आभूषणहीन स्त्री की अवस्था होती है वही अवस्था बिना अलंकार के गीत की होती है। गायन या वादन क्रिया में अलंकार का प्रयोग कर अपने गायन–वादन को सुन्दर एवं भावयुक्त बनाया जाता है।
- निर्धारित श्रुति अन्तराल द्वारा सात स्वर के परस्पर, संबंध से ग्राम का निर्माण होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

(1) वर्ण की विशिष्ट रचना अथवा स्वरों की सिलसिले वार रचना को क्या कहते हैं?

(अ) आरोह (ब) अवरोह (स) अलंकार (द) वर्ण

(2) जिस छोटे स्वर समुदाय से किसी राग का बोध हो उसे कहते हैं –

(अ) आलाप (ब) आरोह (स) वर्ण (द) पकड़

(3) निम्नलिखित स्वर समूह में आरोह किसे कहेंगें

(अ) म ग रे सा (ब) ग म प ध नि (स) प ध म ग (द) सा रे ग रे

(4) मूर्च्छना की उत्पत्ति किससे हुई थी।

(अ) ग्राम से (ब) सप्तक से (स) तान से (द) अलंकार से

(5) स्वरों को कम्पित करके उच्चारण करने को क्या कहते हैं।

(अ) वक्र स्वर (ब) गमक (स) तान (द) खटका

(6) वर्ण कितने प्रकार के होते हैं –

(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच

उत्तरमाला : (1) स (2) द (3) ब (4) अ (5) ब (6) स

लघुउत्तर प्रश्न –

(1) वर्तमान में सम्पूर्ण भारत में कितनी संगीत पद्धतियाँ प्रचलित हैं?

(2) आलाप में किसकी प्रधानता होती है?

(3) वर्ण किसे कहते हैं?

(4) स्वर समूह को ग्राम कब कहा जाता है?

(5) आरोह किसे कहते हैं?

(6) ध्रुपद् गायक किस प्रकार के आलाप करते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

(1) अलंकार की परिभाषा देते हुए समझाईये कि संगीत में इसका क्या महत्त्व है? दो अलंकार भी लिखिये।

(2) भारत में प्रचलित संगीत–पद्धतियों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

(3) ग्राम किसे कहते हैं तथा कितने प्रकार के माने गये हैं? विस्तार से वर्णन कीजिये।

(4) तान की परिभाषा लिखते हुए तान के विभिन्न प्रकार को भी समझाईये।

(5) आलाप किसे कहते हैं? समझाईये। आलाप का प्रयोग राग में कब किया जाता है?

अध्याय 2

अ. संगीत ग्रन्थों का अध्ययन
ब. रागों का समय–सिद्धान्त

अ. भरतकृत नाट्य–शास्त्र

नाट्य शास्त्र भारतीय संगीत का आदि और प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है जिसमें संगीत के आधारभूत तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। भरत के समय के विषय में बहुत मतभेद है। अधिकांश विद्वान् ई. पू. 200 से 400 ई. तक के मध्य भरत का समय मानते हैं।

स्वयं नाम से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ नाट्य पर लिखा गया है किन्तु इसके अन्तिम छः अध्यायों में (अट्ठाईस से तैंतीस) तक भरत ने संगीत शास्त्र का विवेचन ने किया है।

नाट्य–शास्त्र के छः अध्याय संगीत से सीधा सम्बन्ध रखते हैं 'अट्ठाइसवें' अध्याय में वाद्यों के प्रकार, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, जाति भेद तथा उनके लक्षण आदि पर प्रकाश डाला है।

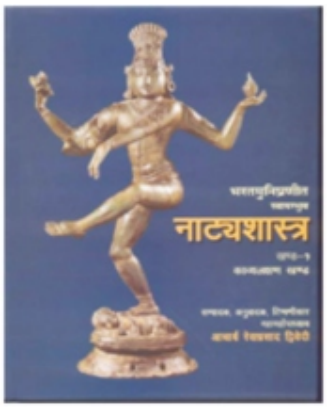

उन्तीसवें अध्याय में विभिन्न प्रकार की वीणा, उनकी वादन–विधि, जातियों का रसानुकूल प्रयोग का विवरण है तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्यों का विवरण हैं। इकतीसवें अध्याय में कला, लय और विभिन्न तालों का विवरण दिया गया है। बत्तीसवें अध्याय में गायक–वादक के गुण, ध्रुव के पांच भेद और तैंतीसवें में अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, भेद, वादन–विधि का वर्णन किया गया है।

इसमें वादन की अठारह जातियाँ और वादकों के लक्षणों का वर्णन है। इस प्रकार इन छः अध्यायों में 28 और 29 अध्याय बड़े महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु इसके अतिरिक्त नाट्य शास्त्र का छठा और सातवाँ अध्याय भी संगीत के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण है। छठे अध्याय में रस का लक्षण और व्याख्या, भाव लक्षण और व्याख्या, आठों रसों का वर्णन, रस के देवता और वर्ण तथा सातवें में भाव, अनुभाव, आदि की व्याख्या 'स्थाई', व्यभिचारी और सात्विक भावों का विवरण दिया गया है। साथ ही 19 वें अध्याय में स्वरों का रसों में विनियोग, तीन स्थान काकु, अलंकार आदि का वर्णन है।

भरत को संगीत का अच्छा ज्ञान था और अपने कानों पर बड़ा विश्वास था। भरत द्वारा बताई गई अधिकांश बातें आज भी अक्षरशः सत्य मानी जाती है। भरत ने एक सप्तक के अन्तर्गत बाईस श्रुतियाँ, सात शुद्ध स्वर और दो विकृत स्वर माने हैं प्रत्येक स्वर को अन्तिम श्रुति पर स्थापित किया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ संगीत का आधार ग्रन्थ सिद्ध होता है।

शारंग देव कृत संगीत रत्नाकर

शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' 'मध्यकालीन संगीत का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका रचनाकाल 13 वीं शताब्दी के मध्य का है। प्राचीन संगीत में जो स्थान 'नाट्य शास्त्र' का है वही मध्यकालीन संगीत में 'संगीत रत्नाकर' का है।

उत्तर भारत और दक्षिण भारत के लोग रत्नाकर को अपने संगीत का आधार ग्रन्थ मानते हैं। दोनों ही संगीत पद्धतियों में इस ग्रन्थ को सम्मान दिया जाता है।

संगीत रत्नाकर सात अध्यायों में विभाजित है जिनमें गायन, वादन और नृत्य तीनों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों तथा अन्य बातों

पर प्रकाश डाला गया है।

संगीत रत्नाकर के **प्रथम अध्याय** में नाद की परिभाषा, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणा चतुष्टयी, ग्राम, मूर्च्छना, तान निरूपण, स्वर और जाति–साधारण, वर्ण–अलंकार तथा जातियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। **द्वितीय अध्याय** में ग्राम राग व उसके विभाग तथा रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग व उनके नाम आदि दिए गए हैं। **तृतीय अध्याय** में वाग्गेयकार के लक्षण गीत के गुण–दोष, गायक के गुण–दोष और स्थायी इत्यादि का विवरण प्राप्त होता है। **चतुर्थ अध्याय** में गान के निबद्ध और अनिबद्ध भेद, धातु एवं प्रबन्ध के भेद तथा अंगों इत्यादि का विवरण प्राप्त होता है। **पंचम अध्याय** में ताल विषय जिसमें उस समय के प्रचलित तालों पर विचार किया गया हैं। **छठा अध्याय** वाद्याध्याय है। इस अध्याय में उन्होंने समस्त वाद्यों को चार भागों में बाँटा है। तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों और वादकों के गुण–दोष दिए गए हैं। **सप्तम अध्याय** नृत्य, नाट्य और नृत्त पर है। इसमें नर्त्तन सम्बन्धी प्रत्येक बात को स्पष्ट किया गया है।

इस ग्रन्थ में 264 रागों का वर्णन दिया गया है। शारंगदेव ने सात शुद्ध और बारह विकृत स्वर कुल 19 स्वर माने है।

इस प्रकार यद्यपि शारंगदेव ने श्रुति, स्वर, ग्राम जाति आदि के वर्णन में भरत का ही अनुसरण किया है, फिर भी उनकी पद्धति में प्रगति और विकास के लक्षणों का अभाव नहीं है। मूर्च्छनाओं की मध्य सप्तक में स्थापना, विकृत स्वरों की कल्पना, मध्यम ग्राम का लोप और प्रति मध्यम की उत्पत्ति इत्यादि विषय 'संगीत रत्नाकर' की मौलिकता प्रकट करते है।

भातखंडे कृत – श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्

पं. भातखंडे ने 1909–1910 में 'श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्' नामक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा। यह ग्रन्थ चतुर पंडित उपनाम से लिखा है। इस पुस्तक में रागों का वर्णन सप्तक के शुद्ध और विकृत 12 स्वरों के आधार पर किया गया है। इस ग्रंथ की रचना तिथि सोमवार, चैत्रशुक्ल प्रतिपदा शक् 1831 तदनुसार मार्च 22 ईस्वी सन् 1909 है।

इस ग्रंथ का उद्देश्य वह मार्ग प्रशस्त करना है जिस के द्वारा 'लक्ष्य संगीत' अर्थात् प्रचलित संगीत का ज्ञान सुगमता से हो सकें। ग्रंथकर्त्ता के अनुसार संगीत के शास्त्र पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष दोनों का ही समन्वय करने वाली आधुनिक युगीन शिक्षा प्रणाली के लिये योग्य अध्यापकों का निर्माण एवं उनकी अपेक्षाओं की पूर्ति करना इस ग्रंथ का ध्येय है।

'श्रीमलमक्ष्य संगीतम्' में दो अध्याय है, पहला 'स्वराध्याय' तथा दूसरा 'रागाध्याय'। 'स्वराध्याय' में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, मेल, राग, वर्ण, अलंकार, तान आदि विषयों का निरूपण शास्त्रीय परम्परा के अनुसार एवं महत्त्वपूर्ण संगीत–ग्रंथों से प्रमाण देते हुए किया है। इस ग्रंथ में संगीत रत्नाकर आदि प्राचीन ग्रंथो और ग्रंथकारों पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ भी की गई है।

'रागाध्याय' में जन्य एवं जनक राग वर्गीकरण के अनुसार उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित मेलों एवं उनसे जन्य रागों का वर्णन मिलता है। रागों का वर्णन यद्यपि संक्षेप में है परन्तु राग के बारें में जानने योग्य सभी महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश है। रागों के विवरण के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों –जैसे गायक के गुणदोष, वाग्गेयकार के लक्षण, सुशरीर लक्षण आदि पर संगीत रत्नाकर के अंश भी उद्धत किये गये है। राग का समय सिद्धान्त तथा 10 थाट निरुप व्यवस्था का उल्लेख किया है।

अंत में परिशिष्ट में विभिन्न संगीत ग्रंथों में प्रतिपादित रागों एवं राग वर्गीकरण की तालिकाऐं दी गई है। इस ग्रंथ में कहीं भी प्रचलित प्रबंध शैलियों तथा ताल पद्धति का उल्लेख नहीं मिलता है।

यह ग्रंथ भातखंडे जी के सांगीतिक शोध एवं मान्यता का सार है। इसमें जो–जो बाते संकेत के तौर पर कहीं गई है, उनका विस्तार भातखंडे के अन्य ग्रंथो में हुआ है। इस प्रकार यह ग्रंथ उत्तर भारतीय संगीत–पद्धति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ अथवा Practical Hand Book सिद्ध हुआ है।

ब. रागों का समय सिद्धान्त

भारतीय संगीत की यह प्रमुख विशेषता है कि प्रत्येक राग के गाने–बजाने का एक निश्चित समय माना गया है शास्त्रकारों ने अपने अनुभव तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर विभिन्न रागों के पृथक–पृथक समय निश्चित किये है। इस प्रकार प्रत्येक राग को दिन और रात के विशेष समय पर गाना या बजाना चाहिए इसी को रागों का समय सिद्धान्त कहते हैं। उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के गायन–वादन का समय दिन और रात्रि के चौबीस घंटों के दो भाग करके बाँटा गया है।

(1) पहला भाग बारह बजे दिन से बारह बजे रात्रि तक माना जाता है। पहले भाग को पूर्व भाग कहते हैं।

(2) दूसरा भाग बारह बजे रात्रि से बारह बजे दिन तक माना जाता है। दूसरे को उत्तर भाग कहते हैं।

स्वर और समय के अनुसार उत्तर भारतीय रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल तीव्र स्वरों के हिसाब से उनका विभाजन किया गया हैं।

(1) रेध कोमल वाले अथवा सन्धि प्रकाश राग

(2) शुद्ध रे और शुद्ध ध वाले राग

(3) कोमल ग और कोमल नि वाले राग

इस वर्गीकरण में पहले वर्ग के रागों को अर्थात् कोमलरे ध स्वर वाले रागों को सन्धि प्रकाश राग भी कहते हैं किन्तु दूसरे और तीसरे वर्ग के रागों का कोई दूसरा नाम नहीं है।

सन्धि प्रकाश का अर्थ है प्रकाश का मेल। सन्धि प्रकाश उस समय को कहते हैं जब दिन और रात का मेल होता है। सन्धि प्रकाश समय 24 घन्टे में दो बार आता है एक सूर्यास्त के समय दूसरा सूर्योदय के समय। ऐसे ही समय पर गाये जाने वाले रागों को सन्धि प्रकाश राग कहते हैं। सन्धि प्रकाश समय सूर्यास्त और सूर्योदय के थोड़ी देर पहले शुरू होता है और सूर्योदय और सूर्यास्त के थोड़ी देर बाद तक रहता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के गायन समय सिद्धान्त में मध्यम एक महत्त्वपूर्ण स्वर है मध्यम स्वर दिन और रात के रागों का सूचक है इसीलिए मध्यम स्वर को **अध्वदर्शक** स्वर कहा जाता है। जिन रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है वे अधिकतर सन्ध्या समय और रात्रि में गाये बजाये जाते हैं अर्थात् चार बजे शाम से चार बजे सुबह तक गाये–जाने वाले अधिकांश राग में (ग और नि कोमल स्वर वाले रागों को छोड़कर) तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है। इसी प्रकार जिन रागों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है वे अधिकतर प्रातःकाल और दिन में गाये बजाये जाते हैं अर्थात् चार बजे सुबह से चार बजे शाम तक गाये जाने वाले रागों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है। (सुबह के कुछ सन्धि प्रकाश रागों को जैसे सोहनी, बसंत, रामकली आदि छोड़कर तथा दिन के कुछ रागों को जैसे हिन्दोल, तोड़ी मुल्तानी आदि को छोड़कर)सन्धि प्रकाश रागों में भी मध्यम स्वर का बहुत महत्त्व है – प्रातः कालीन सन्धि प्रकाश रागों में अधिकतर मध्यम स्वर, कोमल यानी शुद्ध होगा जैसे – भैरव कालिंगड़ा और सांय कालीन संधि प्रकाश रागों में अधिकतर तीव्र मध्यम होगा। जैसे पूर्वी मारवा राग। इनमें तीव्र मध्यम है।उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार तीनों श्रेणी के रागों की कुछ विशेष पहचान है प्रथम रे और ध कोमल स्वर वाले रागों अर्थात् संधि प्रकाश रागों की पहचान यह है कि उनमें रे अवश्य कोमल होता है ध चाहे कोमल हो या तीव्र और ग तथा नि तीव्र होते हैं।दूसरे रे और ध तीव्र वाले रागों की पहचान यह है कि उनमें रे ग और ध अवश्य तीव्र होते है नि चाहे कोमल हो या तीव्र। तीसरे ग और नि कोमल स्वर वाले रागों की पहचान यह है कि उनमें ग अवश्य कोमल होता है और रे तथा ध चाहे कोमल हो या तीव्र।

समय सिद्धान्त के अनुसार तीनों श्रेणी के राग 24 घन्टे में दो बार गाये बजाये जाते हैं –रे ध तीव्र स्वर वाले राग हमेशा सन्धि प्रकाश रागों के गाने के बाद गाये बजाये जाते हैं। इसमें कल्याण बिलावल और रवमाज थाट के राग गाये बजाये जाते हैं।ग और नि कोमल स्वर वाले राग हमेशा रे और ध शुद्ध स्वर वाले रागों के गाने के बाद गाये बजाये जाते हैं।इसमें बागेश्वरी, जय जयवंती, मालकोस इत्यादि राग होते हैं।

मुख्य बिन्दु –

- भारतीय संगीत–शास्त्र के अध्ययन के लिये जो कुछ सामग्री आज उपलब्ध है, उसका प्रथम ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र है, क्योंकि इससे पूर्व संगीत–शास्त्र पर रचित कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।
- पं. शारंगदेव द्वारा रचित 'संगीत रत्नाकर' को भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इसको सप्त अध्यायी भी कहा जाता है।
- मनोवैज्ञानिक आधार पर शास्त्रकारों द्वारा राग गायन का समय निर्धारण किया गया है जिस प्रकार रंग देखने से हमारे मनोभावों में परिवर्तन होता है जैसे लाल रंग उत्तेजना, गर्मी एवं नीला रंग शान्ति, ठंडक का आभास देता है वैसे ही स्वर भी भाव के अनुकुल प्रभाव पैदा करते है। समय तथा ऋतुओं के अनुकुल स्वर कई रागों का सर्जन करते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(1) संगीत रत्नाकार के लेखक कौन हैं?

(अ) भरत (ब) औंकारनाथ

(स) मंतग (द) शारंगदेव

(2) महर्षि भरत ने कुल कितने स्वर माने थे–

(अ) दस (ब) आठ

(स) नौ (द) सात

(3) 'चतुर पण्डित' उपनाम, किसके लिये प्रयुक्त होता है–

(अ) अहोबल (ब) भरत

(स) विष्णुनारायण भातखण्डे (द) विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

(4) निम्नलिखित में से कौनसा सन्धि प्रकाश राग है–

(अ) भैरव (ब) बिहाग

(स) खमाज (द) भूपाली

(5) संगीत शास्त्र पर रचित सामग्री सर्व प्रथम कौन से ग्रन्थ से प्राप्त हुई?

(अ) नाट्यशास्त्र (ब) संगीत रत्नाकर

(स) भातखण्डे जी (द) संगीत विशारद

उत्तरमाला– (1) द (2) स (3) स (4) अ (5) अ

लघुउत्तर प्रश्न –

(1) नाट्यशास्त्र के रचयिता कौन है? लिखिये।

(2) समय सिद्धान्त के अनुसार रेध कोमल स्वर वाले रागों को क्या कहते हैं?

(3) हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के गायन समय के अनुसार कितने वर्गीकरण किये गये हैं?

(4) 'श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्' के लेखक कौन हैं?

(5) 'सप्ताध्याई' किस ग्रन्थ को कहते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न –

(1) रागों के समय सिद्धान्त का वर्णन कीजिये। रागों को निश्चित समय पर गाना क्यों महत्त्वपूर्ण है?

(2) हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के गायन समय के अनुसार कितने वर्गीकरण किये गये हैं।समझाईये।

(3) नाट्य शास्त्र के कितने और कौन से अध्याय संगीत से सम्बन्धित हैं?

(4) 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ पर अपने विचार व्यक्त करिये।

(5) भातखण्डे द्वारा रचित 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' ग्रन्थ के बारे में विस्तार से लिखिये।

नाट्य शास्त्र के पश्चात् उपलब्ध प्रमुख संगीत ग्रन्थ

संगीत ग्रन्थ	लेखक	रचना काल
बृहद्देशी	मतंग	6 ठी सदी
नारदीय शिक्षा	नारद	7 वीं सदी
संगीत मकरंद	नारद	8 वीं सदी
गीत गोविंद	जयदेव	12 वीं सदी
संगीत रत्नाकर	शारंगदेव	13 वीं सदी
संगीत सार	विद्यारण्य	14 वीं सदी
राग तरंगिणी	लोचन	15 वीं सदी
स्वरमेलकलानिधि	रामामात्य	16 वीं सदी
संगीत पारिजात	अहोबल	17 वीं सदी
संगीत दर्पण	दामोदर	17 वीं सदी
चतुर्दण्डिप्रकाशिका	व्यंकटमखी	17 वीं सदी

अध्याय 3

अ. घराना

ब. वाद्य वर्णन : तानपुरा

अ. घराना

संगीत में घरानों का बड़ा महत्त्व माना गया है। भारत के शास्त्रीय संगीत की विकास परम्परा में गुरु शिष्य परम्परा का विशेष स्थान है। भारत में समय–समय पर ऐसे संगीतज्ञ होते रहे हैं जिन्होंने अपनी कला साधना से संगीत की उपासना की।

प्रत्येक कलाकार की गायकी में अपनी एक विशेषता होती है जो उसे अन्य गायक कलाकारों से पृथक् करती है जब संगीत संसार में एक कलाकार बहुत उन्नति करता है तो उसकी कला की विशेषताओं को अन्य व्यक्ति शिष्य बनकर अनुसरण करके उस गायकी को निरन्तर बनाए रखने की चेष्टा करते हैं। यही गुरु शिष्य परम्परा घराना कहलाती है।

घराने से तात्पर्य है कुछ विशेषताओं का पीढ़ी दर पीढ़ी चला जाना अर्थात् गुरु शिष्य परम्परा। इस प्रकार गायन–वादन के अनेक घराने बन गये। इन घरानों में राग स्वर तो एक ही है परन्तु उनके गाने का या स्वरों को प्रयुक्त करने का ढंग अलग–अलग होने से यह कहा जाता है कि यह अमुक घराने की गायकी है।

ग्वालियर घराना

इस घराने के जन्मदाता **नत्थन पीर बख्श** माने जाते हैं। इनके परिवार के ही सदस्य ग्वालियर के दरबारी गायक हुए। बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर भी इसी परम्परा के गायक हुए है। विष्णु दिगम्बर पलुस्कर इनके शिष्य थे।पलुस्कर जी ने बम्बई में पहुँचकर ग्वालियर घराने की गायकी का प्रचार किया। जिसके फलस्वरूप पं.ओमकार नाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास आदि गायक हमें प्राप्त हुए। शंकर राव पंडित, कृष्णराव पंडित तथा राजाभैया पूछवाले भी ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक कलाकार हुए।

विशेषता :

(1) जोरदार तथा खुली आवाज का गायन। (2) ध्रुपद अंग के ख्याल। (3) सीधी तथा सपाट तानें।
(4) बोल तानों में लयकारी। (5) गमकों का प्रयोग। (6) ख्याल के बाद तराना गायन।

ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध कलाकार

विनायक राव पटवर्धन

ओमकार नाथ ठाकुर

नारायण राव व्यास

जयपुर घराना

बड़े मुहम्मद खाँ के छोटे पुत्र मुबारक अली लखनऊ वाले एवं करामत अली जयपुर घराने के आरम्भकर्ता माने जाते हैं। ये दोनों महाराज रामसिंह के दरबारी गायक भी है, कोल्हापुर के प्रसिद्ध गायक स्व. अल्लादिया खां साहब भी इस घराने के कलाकार रहे हैं। आगे चलकर इस घराने के दो उप घराने हो गये। (1) पटियाला घराना। (2) अल्लादिया खां घराना। अल्लादिया खां की शैली के गायक मंजी खां, मुर्जी खां, केसरबाई तथा मोघूबाई कुर्डीकर है।

विशेषता :–

(1) खुली आवाज में गायन।

(2) आवाज बनाने की अपनी स्वतन्त्र शैली।

(3) गीत की संक्षिप्त बन्दिश, कलापूर्ण बन्दिश।

(4) आलाप की बढ़त में छोटी–छोटी तानों का प्रयोग तथा वक्र तानें।

(5) स्वर सौन्दर्य पर विशेष बल एवं अप्रचलित रागों का गायन।

जयपुर घराने के प्रसिद्ध कलाकार

अल्लादिया खां

मोधूबाई कुर्डीकर

मल्लिकार्जुन मंसूर

किराना घराना

इस घराने के जन्मदाता **बन्दे अली खाँ** को मानते हैं। यह दिल्ली के पास एक गाँव किराने के रहने वाले थे। इस घराने के मुख्य कलाकार अब्दुल करीम खाँ, अब्दुल बहीद खाँ, हीराबाई बड़ौदकर, गंगूबाई हंगल, सुरेश बाबू माने और रोशन आरा बेगम, भीमसेन जोशी उल्लेखनीय हैं। इसे स्वर प्रधान घराना भी कहा जाता है।

विशेषता :–

(1) वीणा के ढंग पर रागों की बढ़त करना।

(2) एक–एक स्वर को जोड़ते हुए ख्याल का विस्तार करना।

(3) स्वर लगाने का अपना विशेष ढंग।

(4) शब्दों की अपेक्षा स्वर को महत्त्व।

(5) आलाप प्रधान गायकी।

(6) ठुमरी अंग की गायकी, चैनदार गायकी।

(7) मीड तथा गमक युक्त तान क्रिया एवं अतिविलम्बित लय का प्रयोग

किरानाघराने के प्रसिद्ध कलाकार

अब्दुल करीम खां

सवाई गंधर्व

भीमसेन जोशी

ब. तानपुरा

तानपुरा एक स्वर देने वाला वाद्य है। उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों संगीत पद्धतियों में तानपुरे का स्थान शास्त्रीय संगीत जगत में महत्त्वपूर्ण है। इससे गायक तथा वादक को आधार स्वर मिलता है, जिससे उसे स्वर की शुद्धता बनाये रखने में सहायता मिलती है। तानपुरे से दो–चार स्वर नहीं उत्पन्न होते बल्कि सहायक नाद के रूप में सप्त स्वरों के सप्त का मधुर अहसास भी होता है। तानपुरे के बिना शास्त्रीय गायन फीका सा लगता है।

तानपुरे में कोई ताल या गीत नहीं निकाला जाता, बल्कि इसके तारों को झंकृत करके संगीतकार अपने राग की आधार भूमि के रूप में इसका इस्तेमाल करता है। इसे लिटाकर या सीधा खड़ा करके बजाया जाता है।

तानपुरे में पर्दे नहीं होते, केवल चार तार होते हैं। प्रथम तार को मन्द्र सप्तक के पचंम (प) में मिलाते हैं जिन रागों में पंचम स्वर वर्जित होता है वहाँ पंचम वाले तार को मध्यम में मिला लेते है कुछ रागों में जिनमें न तो पंचम और न शुद्ध मध्यम ही प्रयोग होते है जैसे सोहनी, पूरिया और मारवा तो पंचम वाले तार को गन्धार (ग) या निषाद (नि) स्वर में मिला लिया जाता है।

तानपुरे के दूसरे और तीसरे तार को मध्य सप्तक के षड़ज (सा) में और चौथे तार को मन्द्र सप्तक के षड़ज (सा) में मिलाया जाता है। चौथे तार को खरज का तार भी कहते हैं।

तानपुरे के पहले तीन तार स्टील के होते हैं और चौथा तार पीतल का होता है। यह तार अन्य तारों की तुलना में मोटा होता है कुछ लोग मर्दानी या भारी आवाज के लिए पहला तार पीतल या तांबे का भी इस्तेमाल करते हैं।

तानपुरा के विभिन्न अंग

तूम्बा :– यह लौकी का बना हुआ गोल तथा कुछ चपटे आकार का होता है डाड के नीचे भाग से जुड़ा होता है। तुम्बे से तानपुरे की ध्वनि में वृद्धि तथा गूँज उत्पन्न होती हैं।

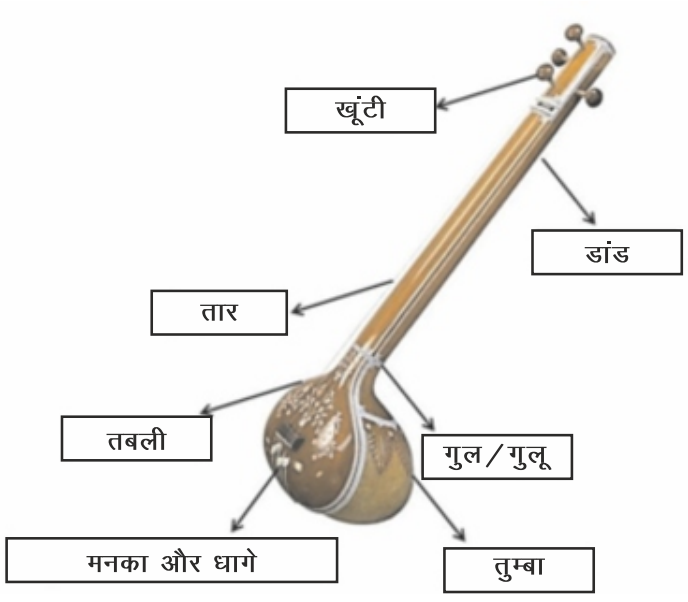

तबली :– गोल लौकी के ऊपर का भाग काटकर अलग कर दिया जाता हैं और खोखले भाग को लकड़ी के एक टुकड़े से ढ़क दिया जाता है इसे तबली कहते हैं।

घुड़च :– इसे घुर्च या घोड़ी या अंग्रेजी में ब्रिज कहते हैं। यह तबली के ऊपर स्थित होती है जिसके ऊपर चारों तार स्थिर रहते हैं। यह लकड़ी या हड्डी की बनी हुई छोटी चौकी के आकार की होती है।

सूत अथवा धागा :– धुड़च के ऊपर तारों के नीचे सूत अथवा धागे का टुकड़ा प्रयोग किया जाता है जिसे ठीक स्थान पर स्थिर कर देने से तानपुरे का स्वर अच्छी गूँज के साथ उत्पन्न हो जाता है। इसी को जवारी या जवारी खुलना कहते हैं। इस प्रकार धुड़च के ऊपर की सतह का भाग 'जवारी' वाला स्थान माना जाता है।

कील अथवा लंगोट :– तूम्बे के पेंदे में तार बाँधने के लिये एक कीली अथवा तिकोनी पट्टी होती है जिसे कील, लंगोट अथवा मोगरा कहते है। इसी से तार शुरू होकर खूँटियों तक जाते हैं।

पत्तियाँ :– सजावट के लिये तूम्बे के ऊपर लकड़ी की सुन्दर पत्तियाँ बनाई जाती है। जिन्हें शृँगार भी कहते हैं।

गुल :– जिस स्थान पर तुम्बा और ऊपर का भाग (डांड) मिलता है गुल अथवा गुलू कहलाता है।

डाँड :– यह तानपुरे के ऊपर का भाग है जो लम्बी और पोली (खोखली) लकड़ी की बनी होती हैं। इसके नीचे का भाग तूम्बे से जोड़ दिया जाता है। ऊपर के भाग में चार खूंटियाँ होती है। डाँड के ऊपर चारों तार तने रहते हैं।

अटी या अटक :– तानपूरे के चारों तार कील से धुड़च पर होते हुए ऊपर को जाते हैं। ऊपर की ओर सर्वप्रथम हाथी दाँत की एक पट्टी जिस पर चारों तार अलग–अलग रखे जाते हैं। जिसे अटी, अटक या मेरू कहते हैं।

तार गहन :– अटी से होता हुआ तार पुनः ऊपर जाता है। आगे एक दूसरी पट्टी होती है जिसके छिद्रों के बीच से होकर तार खूँटियों तक जाते हैं। इस पट्टी को तार गहन कहते हैं।

खूँटियाँ :– खूँटियां तानपुरे के ऊपरी भाग में होती हैं। अटी और तार गहन से होते हुए चारों तार खूंटियों से क्रमशः बाँध दिये जाते हैं। दो खूटियाँ तानपुरे के सामने के भाग में, एक डाँड की बाँई और दूसरी दाहिनी ओर होती है। खूँटी को घुमाने से ही तार को कसा या ढ़ीला किया जाता है।

सिरा या ग्रीवा :– अटी और तार गहन के बाद तानपुरे का ऊपर का भाग 'सिरा' या ग्रीवा कहलाता है। इसे मुख या मस्तक भी कह सकते है। इसी भाग में खूँटियाँ लगी रहती है।

मनका :– स्वरों के सूक्ष्म अन्तर को ठीक करने के लिये हाथी दाँत, काँच अथवा प्लास्टिक के मोती तानपुरे के चारों तार में धुड़च और लंगोट के बीच पिरोये जाते हैं। इन्हें मनका कहते हैं।

तानपुरे का पहला तार सीधे हाथ की मध्यमा अँगुली से बाकी तीनों तारों को तर्जनी अँगुली से कोमल टंकोर से छेड़ा जाता है। तानपुरा बजाते समय ध्वनि उतनी ही करनी चाहिये जितनी गायक की जरूरत है। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते बल्कि एक–एक तार को लयबद्ध ढंग से क्रमशः छेड़ा जाता है।

मुख्य बिन्दु –

- प्रत्येक व्यक्ति के गायन वादन पर उसके स्वभाव, उसकी शिक्षा, उसकी परिस्थिति, वातावरण आदि का प्रभाव पड़ता है इसी प्रभाव के कारण मनुष्य के गायन अथवा वादन शैली का निर्माण होता है। जिसे संगीत में घराना नाम से जाना जाता है।
- राग की शुद्धता व ताल के साथ सामांजन्य ग्वालियर घराने की विशेषता है। यह घराना लय प्रधान है। किराना घराना स्वर की शुद्धता व मधुरता के लिये विख्यात हैं।जयपुर घराने में स्वर व ताल पर बराबर ध्यान दिया जाता है तथा ताल, रागों की विविधता और बन्दिशों के लिये विख्यात है।
- भारतीय शास्त्रीय संगीत में तानपूरा एक महत्वपूर्ण तत् वाद्य है श्रुति–शुद्धता तथा षड्ज स्वर का स्थायित्व भारतीय संगीत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग होने के कारण इस वाद्य का निरंतर बजाया जाना अनिवार्य माना जाता है। तानपूरा हमें षड्ज का मुख्य नाद देता है। जो हमारे गायन का प्रमुख आधार स्वर होता है। उसके साथ षड़ज, पंचम या निषाद के नाद को शामिल करने से अन्य स्वरों के सहायक नाद एवं अनुगुंज बनती है जिससे गायक को अपने स्वरों को शुद्धता से लगाने में सहायता मिलती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(1) गायन/वादन की कुछ विशेषताओं का पीढ़ी दर पीढ़ी चलने को कहते हैं।

(अ) घराना (ब) परिवार (स) सप्रल (द) थार

(2) किराना घराने के कलाकार थे।

(अ) बड़े गुलाम अली (ब) फैयाज़ खाँ (स) अब्दुल करीम खाँ (द) शंकर राव पंडित

(3) तानपुरे में कुल कितने तार होते हैं।

(अ) पाँच (ब) चार (स) तीन (द) दो

(4) तानपुरे में खरज का तार किस तार को कहते हैं?

(अ) पहला तार (ब) तीसरा तार (स) चौथा तार (द) दूसरा तार

(5) ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक कौन थे?

(अ) फैयाज खाँ (ब) भीमसेन जोशी (स) केसर बाई (द) कृष्णराव पण्डित

उत्तरमाला– (1) अ (2) स (3) ब (4) स (5) द

लघुउत्तर प्रश्न –

(1) उत्तर भारतीय संगीत में तानपुरे का क्या स्थान है?

(2) सीधी और सपाट तानों का प्रयोग कौन से घराने की विशेषता है?

(3) भीमसेन जोशी किस घराने के थे?

(4) विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का सम्बन्ध कौन से घराने से था?

(5) गायन–वादन में तानपूरे का क्या कार्य है?

निबन्धात्मक प्रश्न –

(1) तानपुरे की उपयोगिता का विस्तार से वर्णन कीजिए।

(2) तानपुरे के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हुए बताईये कि तानपुरे के तारों को किन–किन स्वरों में मिलाते हैं?

(3) संगीत में घरानों से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये।

(4) घराने की अपनी अलग–अलग गायन शैली किस आधार से बनती हैं?

(5) जयपुर घराने की विस्तार से जानकारी दीजिये।

(6) किराना घराने के जन्म दाता कौन थे? इस घराने की क्या विशेषता थी तथा कलाकारों की जानकारी दीजिये।

महान महिला संगीतज्ञ

जोहरा बाई आगरेवाली

अंजनि बाई मालपेकर

बेगम अख्तर

गंगू बाई हंगल

अध्याय 4

रागों का शास्त्रीय वर्णन

राग बिंद्रावनी सारंग

परिचय :–

बिंद्रावनी अथवा वृन्दावनी सारंग राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। इस राग के आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग किया जाता है। अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। इसके आरोह–अवरोह में गान्धार और धैवत स्वर वर्जित है, अतः इसकी जाति औड़व–औड़व हैं। वादी स्वर ऋषभ तथा सम्वादी स्वर पंचम हैं। इसका गायन समय–मध्याह्न काल है।

दोहा :– **जब तिखो ही निखाद है, चढ़ते धैवत नाहीं।**
तब यह सारंग राग हि बिन्द्रावनी कहाई।

आरोह :– नि़ सा, रे, म प, नि सां।

अवरोह :– सां नि़ प, म रे, सा।

पकड़ :– नि़ सा रे, मरे, प म रे, सा।

स्वर समूह :– (1) नि़ सा रे म रे मप नि़ प
(2) मप, नि सां नि़ प म रे सा
(3) सा रे, मप, म रे, सा, नि़ सा

राग बिहाग

परिचय :–

राग बिहाग बिलावल थाट से जन्य राग है आरोह में ऋषभ और धैवत वर्ज्य तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इसलिये इसकी जाति औड़व–सम्पूर्ण है। वादी स्वर गन्धार और सम्वादी स्वर निषादं है। इस राग को रात्रि के प्रथम प्रहर में गाते बजाते हैं। राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिये कभी कभी अवरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम के साथ विवादी स्वर की तरह किया जाता है। जैसे– पम गमग, रे सा।

दोहाः– कोमल मध्यम तीख सब चढते रिध को त्याग।
गनि वादी संवादितें जानत राग बिहाग'' –चन्द्रिकासर

आरोहः– नि़ सा ग, म प, नि सां।

अवरोहः– सां,नि,ध प, म ग, रे सा

पकड़ः– नि़ सा ग म प, म ग म ग, रे सा

स्वर समूहः– (1) नि़ सा ग, म प, प म ग म ग, रे सा।

(2) ग म प, ग म प नि, ध प, ग म ग।

(3) नि, ध प, म प, ग म ग, रे सा

राग–मालकौंस

परिचय

राग मालकौस 'भैरवी' थाट से माना जाता है। इस राग के आरोह–अवरोह में ऋषभ और पंचम वर्जित होने से इसकी जाति औड़व–औड़व मानी जाती है।इस राग में ग ध नि कोमल लगते है। राग मालकौंस का गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। वादी स्वर – मध्यम तथा सम्वादी स्वर षड़ज है। इस राग की प्रकृति–गम्भीर है, और यह बहुत लोकप्रिय राग हैं।

दोहा :– कोमल सब पंचम रिखब दोऊ बरजित कीन्ह।
साम समबादिबादितें मालकंस को चीन्ह।।

आरोह :– नि सा, ग म, ध, नि सां।

अवरोह :– सां नि ध, म, ग म ग सा।

पकड़ :– म ग, म ध नि ध, म, ग, सा।

स्वर समूह :–(1) सा ग, म, ध म, ध नि ध म।

(2) सां नि ध म, ग म ध म।

(3) ध नि सां, गं सां नि ध म

राग खमाज

परिचय–

यह राग खमाज थाट से उत्पन्न होता है। खमाज थाट की प्रमुख एवं आश्रय राग है। इसके आरोह में शुद्ध निषाद् तथा अवरोह में कोमल निषाद् का प्रयोग किया जाता है। शेष स्वर शुद्ध है। इस राग के आरोह में ऋषभ–वर्जित है और अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते है इसलिये इसकी जाति षाड़व सम्पूर्ण है। वादी स्वर गन्धार और सम्वादि स्वर–निषाद् माना जाता है। गायन समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है।

दोहा– चढ़त रिखब न लगाइये कोमल मनि विराज।
गनि वादी संवादितें कहियत राग खमाज।। –चन्द्रिकासार

आरोह :– सा, गम, प, ध नि सां।

अवरोह :– सां निध प, मग, रे सा।

पकड़ :– नि ध, म प, ध, म ग,।

स्वर–समूह :–(1) ग म प ध नि सां, नि ध प।

(2) नि ध प, म प ध मग, प म ग रे सा।

(3) नि सां नि ध प, म प ध म ग।

राग भूपाली

परिचय –

भूपाली–राग कल्याण थाट से जन्य राग है। इसमें मध्यम और निषाद् दोनों स्वर वर्ज्य है इसलिये इसकी जाति औड़व–औड़व

मानते हैं। वादी स्वर गांधार है और संवादी स्वर धैवत हैं। इस राग के गाने का समय रात्रि का पहला प्रहर है। यह एक सरल एवं मधुर राग है।

दोहा :– आरोही अवरोही में सुर मनि किन्हें त्याग।
धग संवादीवादिते कहो भूपाली राग। चन्द्रिकासार

आरोह :– सा रे ग प, ध सां।

अवरोह :– सां, ध प, ग, रे, सा।

पकड़ :– ग, रे, सा ध़, सा रे ग, प ग, ध प ग, रे सा।

स्वर समूह :–(1) प़ ध सा, रे ग, प ग, ध प ग, रे सा।
(2) ग प, ध प, ग, रे ग, प ग रे सा।
(3) सां, धप ग, प ग रे ग, प ग, रे ग रे सा।

राग–भैरवी

परिचय–

इस राग की उत्पत्ति भैरवी थाट से हुई है, राग भैरवी में रे, ग ध और नि स्वर कोमल लगते है। इस राग के आरोह तथा अवरोह में सातों स्वर लगते हैं, अतः इसकी जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है। वादी स्वर– मध्यम और सम्वादी षड्ज माना जाता है। गायन समय प्रातः काल है।

दोहा :– सब कोमल सुर भैरवी संपूरन सुर दोई।
मसवादी संवादी है सब जो चाहै कोई।। –चन्द्रिकासार

आरोह :– सा, रे ग म, प, ध निसां।

अवरोह :–सां, निध प, म ग, रे सा,।

पकड़ :– म, ग सा, रे सा, घ नि सा।

स्वर समूह :– (1) सा, ध, नि, सा रेगरे सा।
(2) निसा, ग, म प, ध प, निध, प ग म ग,रे सा
(3) सां, निध प, ग म प, ध प म प ग म गरेसा

मुख्य बिन्दु –

- राग–बिहाग, बिंद्रावनी सारंग, भूपाली, खमाज क्रमशः बिलावल, काफी, कल्याण, खमाज थाट की रागे हैं।
- राग मालकौंस तथा भैरवी दोनों ही भैरवी थाट की रागे हैं।
- स्वर स्वरूप, पकड़ द्वारा ही राग के चलन का ज्ञान हो पाता है।
- राग खमाज तथा राग भैरवी क्रमशः खमाज थाट तथा भैरवी थाट की आश्रय रागें हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. राग बिंद्रावनी सारंग की जाति क्या है?

   (अ) औडव–औडव (ब) औडव सम्पूर्ण

   (स) सम्पूर्ण–सम्पूर्ण (द) सम्पूर्ण षाढव

2. ग़ ध़ नि़ कोमल स्वर युक्त राग है–

   (अ) बिलावल (ब) भूपाली (स) मालकौंस (द) खमाज

3. किस राग में म नि स्वर वर्जित है–

   (अ) बिंद्रावनी सारंग (ब) भूपाली (स) भैरवी (द) बिहाग

उत्तरमाला– 1. (अ) 2. (स) 3. (ब)

लघुउत्तर प्रश्न–

1. पाठ्यक्रम की रागों की जाति लिखिए।
2. राग खमाज का परिचय लिखिए।
3. भूपाली एवं मालकौंस राग की प्रमुख स्वर–संगति लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न–

1. पाठ्यक्रम की समस्त रागों के परिचय की संयुक्त तालिका बनाइये।

अभ्यास बिन्दु

पाठ्यक्रम की समस्त रागों की ऑडियो एवं वीडियो रिकॉर्डिंग का संग्रह कर दैनिक श्रवण करें।

Vocalist of Gwalior Gharana _Malini Rajurkar (Born-1941)

अध्याय 5

अ. स्वर लिपिबद्ध बंदिश
ब. तालों का परिचय

अ. स्वर–लिपिबद्ध बंदिश

राग बिंद्रावनी सारंग
सरगम गीत तीव्रा (मध्यलय)

स्थायी

नि नि	प म	रे रे सा	नि़ सा	रे सा	रे – रे
नि़ नि़	सा –	प़ नि़ सा	रे म	प म	रे रे सा
2	3	x	2	3	x

अन्तरा

म म	प प	नि – नि	सां –	सां –	नि रें सां
नि सां	रें मं	रें रें सां	नि सां	रें सां	नि नि प
म प	सां –	नि प म	रे –	प म	रे रे सा
2	3	x	2	3	x

राग बिंद्रावनी सारंग एकताल (विलम्बित)

स्थायी

रेम पनि	पम रेसा	रे –	सा –	निसा रेसा	म रे
आऽ ऽऽ	मोऽ रेऽ	कं ऽ	त ऽ	तुम बिन	मो ऽ
3	4	x	0	2	0

सा	—	रे	म	प	—	मपनि॒नि॒	पमप—	रे	—	नि़	सा
रा	ऽ	जि	य	रा	ऽ	अऽऽऽ	कुऽऽऽ	ला	ऽ	वे	ऽ
3		4		x		0		2		0	
नि़सा	रे	रेमपनि॒	पमरेसा								
रे ऽ	ऽ	आ ऽऽऽ	मोऽरेऽ								
3		4									

अन्तरा

म	प	नि॒प	निनि	सां	—	निसां	सां	प	नि	सां	मपनिसां
रे	ऽ	नऽ	दीऽ	ना	ऽ	मोऽ	हे	त	र	प	तऽऽऽ
सां	—	नि॒	प	रेंमं	रेंसां	निसां	नि॒प	मरे	म	रेमपनि॒	पमप—
बी	ऽ	त	त	कल	नाप	रत	मोहे	कऽ	छु	नऽऽऽ	हीऽऽऽ
रे	सा	रेमपनि॒	पमप—								
भा	वे	आऽऽऽ	मोऽरेऽ								
3		4		x		0		2		0	

बिन्द्रावनी—सारंग—त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई

सां सां सां सां	नि॒ — प पम	रे — म —	प — — —
ब न ब न	ढूं ऽ ढ न ऽ	जा ऽ ऽ ऽ	ऊ ऽ ऽ ऽ
0	3	x	2
म प सां —	नि॒ प म रे	रे म नि॒ पम	रे — सा —
कि त हूँ ऽ	छु प ग ये	कृ ऽ ष्ण मु ऽ	रा ऽ री ऽ
0	3	x	2

अन्तरा

म – प प	नि॒ प नि नि	सां – सां सां	नि सां सां सां
सी ऽ स मु	कु ट औ र	का ऽ न न	कुं ऽ ड ल
x	2	0	3
नि सां रें –	मं मं रें सां	नि सां रें सां	नि सां नि॒ प
बं ऽ सी ऽ	घ र म न	रौ ऽ ग कि	र त गि र
x	2	0	3
मप निसां रेमं रेंसां	निसां रेसां नि॒ प	सां सां सां सां	नि॒ प पम॒ पम॒
धाऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ री ऽ	ब न ब न	ढं ऽ ढऽ नऽ
x	2	0	3

राग बिहाग
सरगम–गीत–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ग – सा –	– ग – म	प नि – प	– ग – म
x	2	0	3
ग – सा –	नि़ – प़ –	नि़ सा – म	ग – सा –
x	2	0	3
नि़ सा ग म	प नि – प	मं ग – म	ग – सा –
x	2	0	3

अन्तरा

प मं ग म	प नि – सां	– प नि –	सां – – मं
x	2	0	3
ग – सां –	नि सां गं मं	पं गं – मं	गं – सां –
x	2	0	3
नि नि प सां	– नि – प	– ग – म	ग – सा –
x	2	0	3

राग–बिहाग एकताल (विलम्बित)

स्थाई

		ध़	नि़			सा	घ़		नि़
ग	सा(सा)	नि़,	साम	ग	–	सा	–	नि़	नि़	–	सा(सा)
कै	से ऽ	ऽ	सुख	सो	ऽ	वे	ऽ	नीं	ऽ	ऽ	दरि
3		4		x		0		2		0	
नि़	–	प़	–	सा	–	–	म	ग	मग	प	प
या	ऽ	ऽ	ऽ	श्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	मु ऽ	र	त
3		4		x		0		2		0	
मं				नि						प रे	
–	प	नि	–ध	सां	(सां)	नि	प	प	(प)	गम,ग	गमपधम
ऽ	चि	त	ऽऽ	च	ढी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ,ऽ	ऽऽऽऽ
3		4		x		0		2		0	
		घ	प								
ग	सा(सा)	नि.	,साम								
कै	सेऽ	ऽ	,सुख								
3		4									

अन्तरा

		ध				ध्			
प	सां	सां	निनि	रें	सां	–	सां (सां)	नि	–	प	–
सो	चे	सो	चेऽ	स	दा	ऽ	रं ऽ	ग	ऽ	ऽ	ऽ
3		4		x		0		2		0	
प	गम	ग	गमपधम	ग	–	सा	–	सा	–	म	ग
ऽ	ऽऽ	ऽ	ओऽऽऽक	ला	ऽ	वे	ऽ	या	ऽ	बि	ध
3		4		x		0		2		0	
म	घ							मे		रे	
प	–	नि	धसां	(सां)	–	नि	प	प	(प)	गम,ग	गमपघम
गां	ऽ	ठ	ऽप	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ,ऽ	ऽऽऽऽ
3		4		x		0		2		0	

बिहाग–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

म			
ग म प नि	सां नि (प) –	प – ग म	ग – – सा
मे रो म न	अ ट क्यो ऽ	सुं ऽ द र	ध्या ऽ ऽ न
0	3	x	2

अन्तरा

प प सां –	सां सां रें सां	सां सां नि प	प सां नि नि
नि स वा ऽ	स र मो हे	प ल क न	ला ऽ ग त
0	3	x	2
नि़ सा ग म	प – नि सां	निसां गंरें सांनि धप	मध पम गरे सासा
नि क सो ऽ	जा ऽ त प	राऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ
0	3	ग	2

राग मालकौंस
सरगम गीत–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ध नि ध म	ग सा ध नि़	सा – म –	– ग म ग
0	3	x	2
म ग म ध	नि सां नि ध	सां नि ध नि	ध म, सां नि
0	3	x	2

अन्तरा

म ग म ध	नि सां – सां	ध नि सां –	गं म गं सां
0	3	x	2
मं गं सां गं	सां नि ध ध	सां नि ध नि	ध म, सां नि
0	3	x	2

राग–मालकौस
तराना–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

सां – ध –नि	ध म ग सा	सा म – म	ध ग म म
ता ऽ नो ऽम	त दि या रे	ना रे ऽ त	दा रे दा नी
0	3	x	2
सा ग म ग	सा नि़ सा –	म ध नि ध	म ग म –
त दि य न	दे रें ना ऽ	त न न न	दे रे ना ऽ
0	3	x	2
ग ममं ध नि	सां सां ध नि	म ध ग म	स ग म म
तु दिर दा नी	त न दे रे	ना त दा रे	ता रे दा नी
0	3	x	2

अन्तरा

ग ग म म	ध ध नि नि	सां – सां सां	गं नि सां सां
ना द्रे द्रे द्रे	तुम द्रे द्रे द्रे	तो ऽ त न	दा रे दा नी
0	3	x	2
नि नि नि नि	सां – नि ध	म ध म ग	स ग म म
त दी य न	दिं ऽ त न	त दी या रे	ता रे दा नी
0	3	x	2
ध नि सां गं	मं गं सां –	म – म ध	म ग सा –
दिर दिर त न	दे रे ना ऽ	तों ऽ त न	दे रे ना ऽ
0	3	x	2
ग – ममं ममं	धध निनि सां –	ध नि धध सांसां	नि – म ध
धा ऽ तिट कत	धुम तिट धा ऽ	धिऽ ता धिड़ नक	धा ऽ धिं ता
0	3	x	2
ममं निनि ध –	ग़ म गग सासा	म – – म	ध ग म म़
धिड़ नक धा ऽ	धिं ता धिड़ नक	धा ऽ ऽ त	दा रे दा नी
0	3	x	2

राग खमाज

सरगम–गीत–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

ग ग सा ग	म प ग म	नि॒ ध ऽ म	प ध ऽ म
x	2	0	3
ग ऽ ऽ ऽ	ध नि सां ऽ	सां नि॒ ध प	म ग रे सा
x	2	0	3

अन्तरा

ग म ध नि	सां ऽ नि सां	सां गं मं गं	नि नि सां ऽ
x	2	0	3
सां रें सां नि	ध नि॒ ध प	ध म प ग	म ग रे सा
x	2	0	3
नि॒ सा ग म	प ग ऽ म	नि ध ऽ म	प ध ऽ म
x	2	0	3
ग ऽ ऽ ऽ	ध नि सां ऽ	सां नि॒ ध प	म ग रे सा
x	2	0	3

Ut. Bade Gulam Ali Khan Sahib - Patiala Gharana (1902 - 1968)

राग–खमाज

द्रुत–ख्याल, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई

नि म रे			सां घ
सा ग – ग	म – म प	ध म ग म	प नि – नि
न मा ऽ नुं	गी ऽ न मा	ऽ नुं गी ऽ	न मा ऽ नुं
x	2	0	3
सां – – –	नि सां – –	नि – सां –	नि सां – सां
गी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	में ऽ तो ऽ	ऽ ऽ ऽ उ
x	2	0	3
सां घ सां –	नि – ध धप	ग म प –	ध म ग –
न्हीं ऽ ऽ ऽ	के ऽ ऽ मऽ	ना ऽ ये ऽ	ऽ बि ना ऽ
x	2	0	3

अन्तरा

सां		नि	
नि नि नि सां	सां सां नि सां	सां – (सां) –	नि नि ध प
जा ओं जि जा	ओ जि स खि	वे ऽ तो ऽ	अ प ने ऽ
0	3	x	2
प	प	नि़	
ग म प घ	ग म ग –	सा ग – ग	म – म प
र स के ऽ	र सि या ऽ	न जा ऽ ऊ	गी ऽ न जा
0	3	x	2
ध ग ग म	प नि – नि	सां – – –	नि सां – –
ऽ ऊँ गी ऽ	न जा ऽ ऊं	गी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
0	3	x	2
	सां ध		
नि – सां –	नि सां – सां	सां ध सां –	नि – ध धप
मैं ऽ तो ऽ	ऽ ऽ ऽ उ	न्ही ऽ ऽ ऽ	के ऽ ऽ मऽ
0	3	x	2
ग म प –	ध म ग –		
ना ऽ ये ऽ	ऽ बि ना ऽ		
0	3		

राग–खमाज–ध्रुपद–चौताल (विलंबित)

स्थाई

सां				सां				नि							
नि	सां	नि	सां	–	रे	सांनि	सां	सां	नि	–	धप				
आ	ऽ	ज	तो	ऽ	स	खीऽ	ऽ	री	दे	ऽ	खेऽ				
x		0		2		0		3		4					
प		घ						प							
ग	–	म	प	सां	नि	ध	–	म	ग	–	सा				
रा	ऽ	म	च	ऽ	न्द्र	छ	ऽ	त्र	धा	ऽ	ये				
x		0		2		0		3		4					
सा	सा	–	ग	–	म	प	घ	नि	सां	सां	–				
ग	ज	ऽ	की	ऽ	स	वा	ऽ	रि	की	ये	ऽ				
x		0		2		0		3		4					
रें	नि	सां	सां	–	रें	सां	–	सां	नि	ध	प				
च	ले	ऽ	जा	ऽ	त	बा	ऽ	ट	में	ऽ	ऽ				
x		0		2		0		3		4					

अन्तरा

म	ग	म	नि	घ	नि	सां	–	नि	सां	–	सां
के	ते	ऽ	आ	ऽ	स	बा	ऽ	र	सो	ऽ	है
x		0		2		0		3		4	
सां	सां					सां					
नि	नि	सां	सां	–	सां	नि	सां	निसां	नि	–	ध
के	ते	ऽ	सो	ऽ	हे	ब	र्क	ऽऽ	दा	ऽ	ज
x		0		2		0		3		4	
प						सां					
म	ग	ग	प	–	घ	नि	सां	नि	सां	–	सां
के	ते	ऽ	के	ऽ	ते	न	की	ब	बो	ऽ	ले
x		0		2		0		3		4	
सां						श्रें				प	
गं	नि	सां	सां	सां	–	नि	सां	सां	नि	ध	ध
आ	नं	ऽ	द	के	ऽ	ठा	ऽ	ठ	में	ऽ	ऽ
x		0		2		0		3		4	

दुगुन

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
आऽ	जतो	ऽस	खीऽ	रीदे	ऽखे	राऽ	मच	ऽन्द्र	छऽ	त्रधा	ऽये
गज	ऽकी	ऽस	वाऽ	रिकी	येऽ	चले	ऽजा	ऽत	बाऽ	टमें	ऽऽ
x		0		2		0		3		4	

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
केते	ऽआ	ऽस	बाऽ	रसो	ऽहे	केते	ऽसो	ऽहे	बर्क	ऽऽदा	ऽज
केते	ऽके	ऽते	नकी	बबो	ऽले	आनं	ऽद	केऽ	ठाऽ	टमें	ऽऽ
x		0		2		0		3		4	

राग–भूपाली
सरगम–गीत, त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

सां सां ध प	ग रे सा रे	ग – प ग	ध प ग –
0	3	x	2
ग प ध सां	रें सां ध प	सां प ध प	ग रे सा –
0	3	x	2

अन्तरा

ग ग प ध	प सां – सां	ध ध सां रें	गं रें सां ध
0	3	x	2
गं गं रे सां	रें रें सां ध	सां सां ध प	ग रे सा –
0	3	x	2

द्रुत–ख्याल, त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

सां सां ध प	ग रे सा रे	ध़ ध़ सा रे	ग रे ग –
न म न क	र च तु र	शि रि गु रू	च र णा ऽ
0	3	x	2
ग ग प ध	सां ध सां सां	सां प ध प	ग रे सा –
त न म न	नि र म ल	क र भ व	त र णा ऽ
0	3	x	2

अन्तरा

ग ग ग ग	प – सां ध	सां सां सां सां	सां रें सां सां
जो इ जो इ	ध्या ऽ व त	शु भ फ ल	पा ऽ व त
0	3	x	2
सां सां गं रें	सां सां प ध	सां सां ध प	ग रे सा –
ज न म म	र न दु ख	स ब न ऽ	स्त र णा ऽ
0	3	x	2

राग भैरवी
सरगम–गीत–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

सा ध प ध	म प ग म	नि ध ऽ सा	ऽ रे ग म
ग रे सा ऽ	ध नि सा रे	नि सा म म	ग ग रे सा
0	3	x	2

अन्तरा

नि़ सा ग म	ध म ध नि	सां ऽ सां ऽ	गं गं रें सां
नि सां गं मं	पं गं ऽ मं	गं रें सां ऽ	गं गं रें सां
सां सां नि नि	ध ध प प	म म ग ग	रे रे सा ऽ
0	3	x	2

राग भैरवी धमार (विलंबित)

स्थायी

सां नि नि			
रें सा ध प	ग म – ध –	– नि	सां – –
आ ली दे खो	भो ऽ ऽ र ऽ	ऽ भ	ई ऽ ऽ
3	x	2	0
– – सां नि	गं – गं रें रे	रें –	सां – सां
ऽ ऽ लो ग	जा ऽ गे प व	न ऽ	जा ऽ गे
3	x	2	0
नि	नि म		ग
सां नि रें सां	ध – प ग ग	गप म	रे – सा
पं ऽ ऽ छी	जा ऽ गे ग ग	नऽ वि	रा ऽ जे
3	x	2	0

अन्तरा

म नि			
ग म – ध –	– नि	सां – –	सां – सां सां
प्रे ऽ ऽ म ऽ	ऽ अ	ला ऽ ऽ	प ऽ क छु
x	2	0	3

नि सां	नि	ध प	नि
सां सां गं रें सां	ध प	प गं –	रें सां ध प
सु न त हूँ ऽ	ना हिं	क हा ऽ	क रूँ मो रे
x	2	0	3
प नि धप ग –	प म	ग रे सा	रे सा ध प
प्रा ऽ नऽ जा ऽ	ऽ ऽ	ऽ व त	आ ली दे खो
x	2	0	3

स्थायी (दुगन)

11 12 13 14	1 2 3 4 5	6 7	8 9 10
आ ली दे खो	भो ऽ ऽ र ऽ	आली देखो	भोऽ ऽर ऽऽ
भई ऽऽ ऽऽ लोग	जाऽ गेप वन ऽजा ऽगे	पंऽ ऽछि	जाऽ गेग गनऽ
विरा ऽजे आली देखो	भो ऽ ऽ र ऽ		
3	x	2	0

अन्तरा

1 2 3 4 5	6 7	8 9 10	11 12 13 14
प्रे ऽ ऽ म ऽ	ऽ अ	प्रेऽ ऽम ऽऽ	आला ऽऽ पऽ कछु
सुन तहूँ ऽना हिक हाऽ	करू मोरे	प्राऽ नऽजा ऽऽ	ऽऽ वत आली देखो
x	2	0	3

निम्न वाद्यों के नाम बताइये।

ब. तालों का परिचय

झपताल

झपताल में मात्रा, दस भाग चार, पहले और तीसरे भाग में दो–दो मात्रा दूसरे और चौथे भाग में तीन–तीन मात्रा। एक, तीन और आठ पर ताली छः पर खाली।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ठेका	धीं	ना	धीं	धीं	ना	तीं	ना	धीं	धीं	ना
चिन्ह	x		2			0		3		
दुगुन	धींना	धींधी	नातिं	नाधीं	धींना,	धींना	धींधी	नातिं	नाधीं	धींना
चिन्ह	x		2			0		3		

एक ताल

एकताल में मात्रा बारह, भाग छः प्रत्येक भाग में दो दो मात्रा एक, पाँच, नौ और ग्यारह पर ताली, तीन और सात पर खाली।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
चिन्ह	x		0		2		0		3		4	
दुगुन	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना,	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना
चिन्ह	x		0		2		0		3		4	

चौताल

चौताल में मात्रा बारह, भाग छः प्रत्येक भाग में दो–दो मात्रा। एक, पांच, नौ और ग्यारह पर ताली तीन और सात पर खाली है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
चिन्ह	x		0		2		0		3		4	
दुगुन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिटकत	गदिगन,	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिटकत	गदिगन
चिन्ह	x		0		2		0		3		4	

ताल धमार

धमार ताल में मात्रा– चौदह, भाग चार, पहले भाग में पाँच मात्रा, दूसरे भाग में दो मात्रा, तीसरे भाग में तीन मात्रा और चौथे भाग में चार मात्रा। एक, छः और ग्यारह पर ताली आठ पर खाली है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
ठेका	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
चिन्ह	x					2		0			3			
दुगुन	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ
चिन्ह	x					2		0			3			

पंजाबी–ताल

पंजाबी ताल में मात्र सोलह, भाग चार होते है। प्रत्येक भाग में चार–चार मात्रा होती है। एक, पांच तथा तेरह पर ताली और नौ पर खाली।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	ऽधी	ऽक	धा	धा	ऽधी	ऽक	धा	त	ऽती	ऽक	ता	धा	ऽधी	ऽक	धा
X				2				0				3			

दुगन

धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	ताऽती	ऽकता	धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	ताऽती	ऽकता	धाऽधी	ऽकधा
X				2				0				3			

ताल–त्रिताल

त्रिताल में मात्रा सौलह, भाग चार होते है। प्रत्येक भाग में चार–चार मात्रा होती है। एक पांच तेरह पर ताली, नौ पर खाली है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
X				2				0				3			

दुगन

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
X				2				0				3			

Agra/Rangile Gharana
Aftab-e-Mousiqui **Ut. Faiyaz Khan**

The essence of Jaipur Gharana
Smt. Kishori Amonkar (10-01-1931)

अध्याय 6

जीवन परिचय

मीरा बाई

भक्ति–युग के सन्त–कवियों में मेवाड़ के राणा वंश की मीराबाई का नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। राजस्थान की प्रेमदीवानी मीराबाई ने अपनी गीतिमई वाणी के द्वारा भारत के जन मानस में प्रभु–भक्ति का प्रकाश फैलाया, जिसे आज तक "मीरा के भजनों के रूप में हम विभिन्न संगीतज्ञों द्वारा श्रवण करके आनन्द विभोर होते रहते हैं।

मीराँ का जन्म राजस्थान की जोधपुर रियासत में मेड़ता अन्तर्गत कुड़की नामक गांव में राठौड़ वंश में विक्रम संवत् 1559 में हुआ। मीराबाई रजत सिंह की इकलौती सन्तान थी। माता का नाम वीर कुँवरी था। मीराँ का विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ट पुत्र भोजराज से सम्वत् 1573 में कर दिया गया किन्तु ये तो गिरधर नागर को अपना पति मान बैठी थी। वह तो कृष्ण भक्ति में ही तल्लीन रहती थी। विवाह के पश्चात् मीराँबाई चित्तौड़ में रहने लगी। कुछ समय बाद युवराज भोजराज की मृत्यु हो गई तब तो मीराँ की कृष्ण भक्ति और भी बढ़ गई। उनका पूरा समय भगवान के भजन गाने और साधु सन्तों की संगति में बीतने लगा। यह गाना बजाना साधु संगत मेवाड़ के महाराजा विक्रमजीत सिंह (मीराँ बाई के देवर) को अच्छा नहीं लगता। राजवंश के अन्य लोग भी मीराँ के विरुद्ध हो गये मीराँ को हर प्रकार से रोका गया, समझाया गया, डराया गया, अनेक यातनाएँ भी दी गई, यहाँ तक की विष का प्याला तक उन्हें दिया गया किन्तु मीराँ की कृष्ण–भक्ति बढ़ती गई वह मन्दिरों में जाकर पैरों में घूँघरू बांध और हाथ में इकतारा और करताल लेकर ''मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी'' गाते हुए नाचने लगी, नाचते–नाचते वे तन्मय होकर बेसुध हो जाती और फिर नाचने लगती।

कुछ समय बाद अपने ससुराल और मैके को छोड़कर मीराँबाई भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा चली आई, और मथुरा वृन्दावन के मन्दिरों में ही भगवान के आगे 'म्हाने चाकर राखो जी' गाते हुए प्रभु की चाकरी करने लगी। इस प्रकार बहुत समय तक बृजभूमि में गिरधर नागर के गुणगान करती रही इनके संगीत का बृजवासियों पर विशेष प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि अब तक मीराँ भजनों का जितना प्रचार उत्तर प्रदेश और बृजभूमि में है, उतना अन्यत्र नहीं है। कुछ समय पश्चात् मीराबाई बृजभूमि को छोड़कर द्वारिका जी चली गई और वहाँ रणछोड़ जी के मन्दिर में प्रभु गुणगान में लीन रहने लगी।

मीराँ बाई की ख्याति देश भर में फैल चुकी थी अतः घर वालों को अपनी भूल का एहसास हुआ। उन्होंने अपने यहाँ के ब्राह्मणों को आदेश दिया कि किसी भी प्रकार से समझा बुझाकर मीराँ को सम्मान के साथ यहाँ ले आओ, लेकिन मीराँ अपने भगवान का दरबार छोड़कर जाने को सहमत नहीं हुई। कहा जाता है कि जब ब्राह्मणों ने चलने के लिए विशेष आग्रह किया तो वे मन्दिर में भीतर यह कहकर चली गई कि मैं भगवान से आज्ञा ले आऊँ, और वहीं प्रभुमूर्ति में विलीन हो गई। यह घटना 1630 (ई सन् 1573) के आसपास की मानी जाती है।

मीराँ बाई परम कृष्ण भक्त कवियित्री होने के साथ–साथ उच्च कोटि की गायिका और सफल संगीतज्ञ भी थी। उन्होंने असंख्य भजनों की रचना की। मीराँ के रचे हुए प्रभु भक्ति के पद अनेक रागों और तालों में बंधे हुए मिलते है। मीराँ की मल्लार प्रसिद्ध है इसकी रचियता स्वयं मीराँ बाई थी।

वास्तव में प्रभु भक्ति की पीर ने ही उन्हें कवियित्री और गायिका बना दिया था। कृष्ण प्रेम में उनकी संगीत धारा पदों और भजनों के रूप में राजस्थान के रेगिस्तान से फूटकर भारत के जन मानस को आप्लावित करती हुई आज तक प्रवाहित हो रही है।

महाराणा कुम्भा

पिता का नाम :– महाराणा मोकल के जयेष्ठ पुत्र कुम्भकर्ण (कुम्भा)

माता का नाम :– सौभाग्य देवी

संगीत गुरू :– "राजश्रित कवि संगीतज्ञ" कन्हव्यास

महाराणा कुम्भा के जन्म के संदर्भ में कहा जाता है कि कुम्भा का जन्म दीर्घकालीन गर्भावस्था के उपरान्त हुआ। शौर्य व साहित्य के प्रतीक व्यक्ति महाराणा कुम्भा परम विद्यानुरागी नरेश होने के साथ ही स्वयं महान साहित्यकार एवं संगीतकार भी थे। विदेशी आक्रमणों के संक्रमण काल में भारतीय शास्त्रीय संगीत के सिद्धान्तों को संगीतराज ग्रन्थ में संजो कर विलुप्त होने से बचाना महाराणा कुम्भा की भारतीय शास्त्रीय संगीत को अमर देन है।

संगीतराज ग्रन्थ संगीतमर्मज्ञ महाराणा कुम्भा के संगीत शास्त्रीय तलस्पर्शी गहन ज्ञान का परिचायक ग्रंथ है। संगीत के क्षेत्र में महाराणा कुम्भा की अक्षयकीर्त्ति को मुख्य आधार ग्रंथ संगीतराज का माना जाता है। संगीत के अपूर्व साधक और सर्जक महाराणा कुम्भा द्वारा रचित **"संगीत राज ग्रन्थ"** भारतीय संगीत का एक प्रौढ़तम आधारग्रंथ हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने श्रुति, स्वर, सप्त, ग्राम मूर्च्छना एवं जाति गायन से लेकर प्रबन्ध गायन तक के विशद विषय को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। कुम्भा ने जातिगायन के महत्त्व को भी स्वीकार करते हुए कहा कि सभी मनुष्यों द्वारा जो कुछ भी गाया जाता है वह जाति में निहित है।

गीत रत्न कोष में तान के संदर्भ में कुम्भा का कथन है कि तान को तानना अर्थात् विस्तार के अर्थ में समझना चाहिए। कुम्भा के अनुसार "विकृत स्वरों (अन्तर–काकली) का लोप तानों में समाहित नहीं है। कुम्भा ने संगीत की स्तुति के द्वारा संगीत के महत्त्व को उजागर करते हुए कहा है – "जीव और परमात्मा" में जो ऐक्य स्थापित करने में समर्थ है जो सभी प्राणियों को सम्मोहित करने की शक्ति रखता है। ऐसे गीत (गायन) की हम स्तुति करते हैं।

कुम्भा के शासनकाल में संगीत साहित्य, शिल्प, स्थापत्य, धर्म, मीमांसा, कामशास्त्र आदि विविध विषयों में साहित्य सर्जना हुई किन्तु कुम्भा के राजश्रय में रची गई लगभग सभी रचनाओं में संगीत प्रेमी कुम्भा की संगीत विषयक भावनाओं को अल्प अथवा बहुत्व रूप से स्थान अवश्य मिला।

निःसंदेह महाराणा कुम्भा के राज्याश्रय में सर्जित इन उच्च कोटि के विद्वानों की तृतीय शताब्दी तक इन्हें अमर रखेगी और अमर रहेगा कुम्भा का संगीत अनुराग और महाराणा का कलाप्रेमी व्यक्तित्व जो इन विद्वानों को महत्त्व एवं सम्मान देता था।

उ. अल्लादिया खाँ

अल्लादिया खाँ महाराष्ट्र के विख्यात गायक हुए। आपका जन्म 1855 ई में हुआ। अल्लादिया खाँ ने अपने पिता उस्ताद जहाँगीर खाँ से संगीत की तालीम ली थी। आपके पिता श्री भी उच्चकोटि के संगीतज्ञ हुए थे।

कोल्हापुर के छत्रपति साहू महाराज ने अल्लादिया खाँ को अपना दरबारी संगीतज्ञ नियुक्त किया था। आपकी गायकी कष्टसाध्य थी। कठिन रागों के गायन में आप प्रवीण थे। आपके घराने की गायकी प्राप्त करने में आपके शिष्यों को बड़ी तपस्या करनी पड़ती थी।

आपके शिष्य समस्त महाराष्ट्र में फैले हुए हैं जिनमें गायनाचार्य भास्कर बुआ, श्रीमती केसरबाई केरकर, श्री गोविन्द राव टैम्बे तथा भुर्जी खाँ, मोधूबाई कुर्डीकर जैसे प्रख्यात गायक कलाकार हुए हैं। अल्लादिया खाँ साहब मुश्किल और अप्रसिद्ध राग गाने में सिद्ध थे।

आप अपनी गायकी में स्वर कम्पन्न, मीड, गमक, हरकत के साथ–साथ आलाप की गम्भीरता पर विशेष ध्यान देते थे। पतली आवाज से तार और अतितार सप्तक के स्वरों में काम दिखाने की विशेषता आपके अन्दर विद्यमान थी।आपके घराने की गायकी में विशेष रूप से ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराने, होली आदि गीत प्रकार ही विशेष रूप से पाये जाते हैं। ठुमरी तथा गजल आपके घराने में नहीं के बराबर है।

भुर्जी खाँ (पुत्र) अल्लादिया खाँ अजीजुद्दीन(पौत्र)

स्व. अल्लादिया खाँ साहब जयपुर घराने के माने हुए कलाकार रहे हैं। आप ध्रुपद की डागुर बानी के वंशज थे विलम्बित एवं गमक युक्त आलाप, वक्र या बलपेच युक्त तानें, मुखबन्दी तानें, नई बन्दिशें और अप्रचलित रागों का गायन इस घराने की विशेषता है। ख्याल गायकी में यह घराना विलंबित तीन ताल को अधिक पसन्द करता है। धीमी आलापों में टप्पे जैसी छोटी–छोटी परन्तु द्रुतलय की मुरकिया एवं तानें ली जाती है।खाँ साहब का निधन 16 मार्च 1946 में कोल्हापुर में ही हुआ।

कुमार गंधर्व

विख्यात गायक कलाकार कुमार गन्धर्व का जन्म 8 अप्रैल 1924 को बेलगाँव जिले के सुलेयावी ग्राम में एक लिंगायत परिवार में हुआ। इनका मूल नाम शिवपुत्र था। (पूरा नाम शिवपुत्र सिद्धरमैया कोमकलि था) उनके पिता सिद्धराम स्वामी एक अति गुणी संगीतज्ञ एवं उनके प्रथम संगीत गुरू थे। बाद में वे डा. बी. आर. देवधर के शिष्य बनें। ख्याल के साथ वे भजन, गजल, लोकगीत आदि में भी अत्यन्त दक्ष थे।

पांच वर्ष की उम्र में एक दिन अचानक कुमार की प्रतिभा दृष्टिगोचर हुई। कुमार सवाई गन्धर्व केएक गायन जलसे में गये थे। वहाँ से लौटकर घर आये तो सवाई गन्धर्व द्वारा गाई गई बसन्त राग की बन्दिश तान–आलापों के साथ ज्यों की त्यों नकल करके गाने लगे। यह देखकर इनके पिताजी व अन्य लोग आश्चर्य चकित रह गये। कुमार में पूर्व जन्म के संगीत संस्कार हैं ऐसा लोगों ने कहा। अतः कुमार की संगीत भावना को बल देने के लिए इसे शास्त्रीय संगीत अवश्य सिखाइए।

कुमार में दो वर्ष की तालीम में ही विलक्षण शक्ति पैदा हो गई कि बड़े–बड़े गायकों के ग्रामोफोन रिकोर्डों की हू–ब–हू नकल करके गाने लगे। 7 वर्ष की उम्र में एक मठ के गुरु ने उन्हें **'कुमार गन्धर्व'** की उपाधि प्रदान की।

कुमार गन्धर्व का सर्व प्रथम गायन जलसा बेलगाँव में हुआ। इसके पश्चात् बम्बई के प्रोफेसर देवधर ने अपने संगीत विद्यालय में रख लिया। फरवरी 1936 में बम्बई में एक संगीत परिषद् में कुमार की कला का सफल प्रदर्शन हुआ जिससे श्रोतागण मुग्ध हो गए और इनका नाम संगीतज्ञों तथा संगीत–कला प्रेमियों में प्रसिद्ध हो गया। 23 वर्ष की उम्र में आपका विवाह करॉंची की एक संगीत–निपुण महिला भानुमती से हुआ लेकिन उनका देहान्त हो गया और कुमार को दूसरा विवाह करना पड़ा। दुर्भाग्यवश कुमार कुछ समय बाद ही तपेदिक जैसी बीमारी के शिकार हो गये। पत्नी छाया की तरह साथ रहकर इनकी सेवा की जिसके परिणामस्वरूप कुमार स्वस्थ हो गए और देवास को ही इन्होंने अपना निवास बना लिया।

कुमार गन्धर्व केवल मधुर गायक ही नहीं अपितु एक प्रखर कल्पनाशील कलाकार थे आपने नवीन

रागों का निर्माण किया– मालवती, सहेली तोड़ी, अध्मिोहिनी, रिंदयारी, भावमत भैरव, लग्नगधार आदि विशेष उल्लेखनीय है। उनकी रचनाओं का संकलन उनके ग्रन्थ 'अनुपराग विलास' के नाम से प्रकाशित हुआ। कुमार ने गायन की एक नई शैली को जन्म दिया जिसमें लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत का मधुर मिश्रण किया जिसे सुन श्रोता भावविभोर हो जाते हैं। 12 जनवरी 1992 को आपका देहावसान हुआ।

पंडित जसराज

जन्म – हिसार जिले के हरियाणा राज्य, 28 जनवरी 1930 ।

पिता का नाम– मोतीराम।

घराना – मेवाती।

संगीत गुरु – पं. मोतीराम (पिता), पं.मणिराम (भाई), महाराजा जयवंतसिंह (साणद दरबार)।

पण्डित जसराज आधुनिक काल के एक विख्यात गायक कलाकार हैं। उन्होंने अपने पिता पं. मोतीराम तथा भ्राता पं. मणिराम से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। जसराज जी ने भारत तथा अन्य देशों में अपनी कला का प्रदर्शन किया वर्तमान समय में वे आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के एक जनप्रिय कलाकार हैं।

पं. जसराज का जन्म मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ इनके पिता मोतीराम मेवाती घराने से सम्बन्ध रखते है। चार वर्ष के आयु में इनके पिता की मृत्यु हो गई।

इन्होंने ख्याल को मेवाती घराने में प्रसिद्ध बना दिया। इन्होंने अपने शोध–कार्य "हवेली संगीत" बाबा श्याम मनोहर गोस्वामी महाराज के निर्देशन में किया एवं इनके साथ मिलकर इन्होंने विभिन्न बदिशें बनाई प० जसराज जी ने जुगलबंदी पर एक साहित्य जसरंगी लिखा। पं. जसराज ने विविध रागों को विस्तृत में प्रस्तुत किया। इसमें गायन कली, अबीरी तोड़ी, धनश्री पुरबा, गुंजा कान्हडा आदि।

पं. जसराज के बहुत विद्यार्थी थे जिसमें रतन मोहन शर्मा, संजीव अबयंकर और कला रामनाथ आदि। पं. जसराज अपने पिता की स्मृति में हर साल एक संगीत महोत्सब आयोजित करते हैं जिसे पं. मोतीराम, पं. मनीराम संगीत महोत्सब के नाम से जाना जाता है। यह उत्सव समारोह हैदराबाद में आयोजित किया जाता है। इनके एक पुत्र शारंग देव पण्डित एवं एक पुत्री दुर्गा जसराज है। चित्रपट संगीत कम्पोजर जतिन–ललित पं.जसराज जी के भतीजे हैं।

पं. जसराज को संगीत क्षेत्र में विभिन्न पुरस्कार प्राप्त हुए जिसमें पद्म विभूषण (शास्त्रीय कंठ संगीत) 2007 में, पद्म भूषण 1990 में, संगीत नाटक अकादमी 1987 में, संगीत कला रत्न, मास्टर दीनानाथ मंगेशकर अवार्ड, लता मंगेशकर पुरस्कार, महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार, स्वाती संगीत पुरस्कारम् 2008, ए.स. एन मेमोरियत नेशनल अवार्ड (श्री रामासेवा मडंली ट्रस्ट) 2009, संगीत नाटक अकादमी छात्रवृत्ति 2010, मारवाड़ संगीत रत्न अवार्ड और संगीत मतंग 2012 अवार्ड शामिल हैं। पं. जसराज संगीत की एक विलक्षण प्रतिभा के रूप में उभर कर आये। ख्याल गायन, हवेली संगीत, भजन गायन को पं. जसराज ने नए प्रतिमान दिए हैं।

मुख्य बिन्दु–

- मेवाड़ के महाराणा कुम्भा संगीत राज ग्रंथ के प्रणेता थे। संगीत राज ग्रन्थ को पंचम उपवेद भी कहा जाता है।
- भोजराज की पत्नी मेवाड़ की महारानी मीरा बाई की कृष्ण भक्ति दाम्पत्य भाव की थी।
- कुमार गन्धर्व ने लोक संगीत पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

- जयपुर घराने के अल्लादिया खाँ साहब ने गायकी की नवीन शैलीगत विशेषताओं का समावेश कर अल्लादिया खाँ घराना बनाया।
- पं. जसराज मेवाती घराने के मूर्धन्य गायक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(1) मेवाड़ की उच्च कोटी की गायिका और सफल संगीतज्ञ थी–

(अ) किशोरी अमोलकर (ब) मीराँ बाई (स) माणिक वर्मा (द) मोघु बाई

(2) पं. जसराज किस घराने से सम्बन्धित हैं –

(अ) जयपुर (ब) आगरा (स) मेवाती (द) पटियाला

(3) अल्लादिया खां कौन से घराने के माने हुए कलाकार रहे हैं –

(अ) जयपुर (ब) ग्वालियर (स) किराना (द) आगरा

(4) सिद्ध राम स्वामी किसके प्रथम संगीत गुरु थे।

(अ) भीमसेन जोशी (ब) केसर बाई (स) जसराज (द) कुमार गंधर्व

(5) 'संगीत राज' ग्रन्थ के रचयिता है।

(अ) पं. भातखण्डे (ब) प. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर (स) महाराणा कुम्भा (द) अहोबल

उत्तरमाला– (1) ब (2) स (3) अ (4) द (5) स

लघुउत्तर प्रश्न –

(1) महाराणा कुम्भा के संगीत गुरु कौन थे?

(2) कुमार गन्धर्व का मूल नाम क्या था?

(3) अल्लादिया खां सा के प्रमुख शिष्य गायक कलाकार कौन हुए हैं?

(4) पं. जसराज के संगीत गुरु का नाम लिखिये?

(5) मीराँ बाई के भजनों का प्रचार सर्वाधिक कहाँ हुआ?

निबन्धात्मक प्रश्न –

(1) मीरा बाई का सम्पूर्ण जीवन–परिचय दीजिये।

(2) अल्लादिया खां की संगीत यात्रा का वर्णन करते हुए पूर्ण परिचय दीजिये।

(3) पं. जसराज को कौन–कौन सी उपाधि से सम्मानित किया गया? उनकी जीवनी भी लिखिये।

(4) कुमार गंधर्व की गायकी की मुख्य विशेषता लिखते हुए उनके जीवन का वर्णन करिये।

(5) महाराणा कुम्भा की जीवनी विस्तार से लिखिये।

(खण्ड–आ)

स्वर-वाद्य

सितार / सरोद / वायलिन / दिलरूबा–इसराज / बांसुरी / गिटार

भारत के विभिन्न वाद्यों तथा वादकों पर जारी कुछ डाक–टिकिट

अध्याय 7

अ. परिभाषाएं
ब. भारत में प्रचलित संगीत–पद्धतियाँ

अ. परिभाषाएँ

वर्ण–विचार

गान–क्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थयारोहावरोही च संचारीत्यथ लक्षणम्।।

–अभिनव राग मंजरी

अर्थात् गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। संगीत में स्वरों की किसी भी प्रत्यक्ष क्रिया के प्रकारों को वर्ण कहा जा सकता है। वर्ण चार प्रकार के होते हैं।

1. **स्थाई वर्ण :** जब एक ही स्वर को बार–बार प्रयुक्त किया जाए तो वह क्रिया स्थाई वर्ण कहलाती है। चाहे एक स्वर को कितनी ही बार प्रयुक्त किया जाए। जैसे–प प प प प, अथवा स स स स स स अथवा ग ग ग
2. **आरोही वर्ण :** स्वरों का आरोहात्मक प्रयोग आरोही वर्ण कहलाता है। यह वर्ण एक से अधिक कितने ही स्वरों का हो सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि उस वर्ण में प्रयुक्त सभी स्वर सप्तक के क्रम में ही हो (अर्थात् दो स्वरों के बीच का कोई स्वर वर्जित भी हो सकता है।) जैसे–म प ध नी अथवा रे ग म प ध नी सां अथवा रे म प नी
3. **अवरोही वर्ण :** स्वरों का उत्तरोत्तर नीचे उतरना अर्थात् अवरोहात्मक प्रयोग अवरोही वर्ण कहलाता है। यह वर्ण भी एक से अधिक कितने ही स्वरों का हो सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि उस वर्ण में प्रयुक्त सभी स्वर सप्तक के क्रम में ही हो (अर्थात् दो स्वरों के बीच का कोई स्वर वर्जित भी हो सकता है।) जैसे–म ग रे सा अथवा प रे स अथवा रे स
4. **संचारी वर्ण :** स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण और अवरोही वर्ण में से किन्ही दो या तीनों के मिश्रण से बना वर्ण संचारी वर्ण कहलाता है। जैसे–सा रे ग रे सा, अथवा रे रे रे रे म प ध सां अथवा सा रे ग ग ग रे ग म

स्वरों की सभी क्रियाएं इन्हीं वर्णों के अन्तर्गत आ जाती हैं क्योंकि हम जब भी गाते या बजाते है तो या तो हम एक ही स्वर को दोहराते हैं या स्वरों को आरोही क्रम में प्रयुक्त करते है या अवरोही क्रम में। साथ ही इन तीनों का मिश्रण कर स्वरों को बजाते या गाते है।

अलंकार

''विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकारः प्रचक्षते'' –संगीत रत्नाकर

अर्थात् कुछ नियमित वर्ण–समुदायों को अलंकार कहा जाता है।

स्वरों के एक निश्चित क्रम को अपनाकर उसका आरोह–अवरोह करने की क्रिया संगीत में अलंकार कहलाती है। इसे ''पलटा'' भी कहा जाता है। अलंकार एक संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ है–आभूषण जिस प्रकार आभूषण किसी व्यक्ति की सुंदरता को बढ़ाते है, उसी प्रकार संगीत में भी अलंकारों के अभ्यास से गायक का गला और वादक का हाथ तैयार होते है। कलाकार के लिए अलंकार का उतना ही महत्त्व है जितना किसी पहलवान के लिए प्रतिदिन किये जाने वाले व्यायाम का। संगीत के क्षेत्र में अलंकार के दो प्रयोजन हैं –

1. विद्यार्थियों के गले अथवा हाथ की तैयारी करवाना तथा उनकी क्षमता बढ़ाना तथा स्वर ताल का ज्ञान करवाना।

2. गायन अथवा वादन की क्रिया को इन अलंकारों के प्रयोग से सुंदर तथा भावयुक्त बनाना।

उदाहरण के लिए एक अलंकार इस प्रकार होगा –

आरोह– सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध प ध नी, ध नी सां

अवरोह– सां नी ध, नी ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा

इस प्रकार अनेक भिन्न–भिन्न स्वर समुदायों को लेकर भिन्न–भिन्न अलंकार बनाए जा सकते हैं।

आरोह–अवरोह

आरोह शब्द का अर्थ है–ऊपर चढ़ना। संगीत की भाषा में आरोह का अर्थ है नीचे स्वर से ऊँचे स्वर की ओर जाना। अर्थात् नाद की तारता के अनुसार बढ़ते क्रम में गाना या बजाना जैसा कि हम जानते है कि किसी भी सप्तक में सा से रे ऊँचा स्वर है रे से ग ऊँचा स्वर है ग से म ऊँचा है इसी प्रकार म से प, प से ध और ध से नी ऊँचा स्वर है। गायन अथवा वादन में किसी नीचे स्वर से ऊँचे स्वर की ओर जाना आरोह कहलाता है। उदाहरण के लिए सा रे ग अथवा प ध नी सां ये स्वर समुदाय आरोह की श्रेणी में आता है अथवा इसी प्रकार किसी नीचे सप्तक के किसी भी स्वर से अगर ऊपर के सप्तक के किसी स्वर पर जाएंगे तो यह आरोह कहलाएगा जैसे नी रे ग यहां नी मन्द्र सप्तक का है तथा रे व ग मध्य सप्तक के है।

ठीक इसके विपरीत अवरोह का शाब्दिक अर्थ है– नीचे उतरना अर्थात् नाद की तारता के अनुसार घटते क्रम में गाना या बजाना। जैसा कि हम जानते है किसी भी सप्तक में नी से ध नीचा स्वर है ध से प नीचा स्वर है प से म नीचा है इसी प्रकार म से ग, ग से रे और रे से सा नीचा स्वर है। गायन अथवा वादन में किसी ऊँचे स्वर से नीचे स्वर की ओर जाना अवरोह कहलाता है। उदाहरण के लिए नी ध प म ग अथवा म ग रे सा ये स्वर समुदाय अवरोह की श्रेणी में आते है। या इस प्रकार किसी ऊँचे सप्तक के किसी भी स्वर से अगर नीचे के सप्तक के किसी स्वर पर जाऐंगे तो वह अवरोह कहलाएगा। जैसे गं रें नी ध प यहां ग व रे तार सप्तक के है तथा नी ध प मध्य सप्तक के हैं।

किसी भी राग के लक्षणों की दृष्टि से आरोह –अवरोह का बहुत महत्त्व है क्योंकि प्रत्येक राग का आरोह–अवरोह निश्चित होता है अर्थात् राग के आरोह अथवा अवरोह में कौन सा स्वर किस प्रकार प्रयुक्त होता है या नहीं होता यह बात किसी भी राग के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैसे राग मालकोंस में आरोह तथा अवरोह दोनों में ऋषभ और पंचम वर्जित है। या राग भीमपलासी में आरोह में ऋषभ एवं धैवत वर्जित है परन्तु अवरोह में प्रयुक्त किये जाते हैं।

पकड़

स्वरों का वह छोटा समूह जिससे कोई राग पहचाना जा सकें, उस राग विशेष की पकड़ कहलाता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में कहें तो इसका अर्थ वह स्वर समूह जिससे कोई राग पकड़ में आ जाए या पहचान में आ जाए जैसे राग यमन की पकड़ है– नी रे ग रे सा, प ग रे सा या राग केदार की पकड़ है सा म, म प ध प म, रे सा। इसका अर्थ यह हुआ कि ये स्वर समुदाय सुनते ही हम तुरंत पहचान जाते हैं कि यह राग यमन या केदार है। पकड़ को कभी–कभी राग का मुख्य अंग, या मुख्य स्वर संगति या मुख्य स्वर स्वरूप भी कहा जाता है।

जोड़ आलाप

वर्तमान प्रचलित वादन पद्धति में आलाप दो प्रकार से किया जाता है। पहले बिना किसी लय के स्वतंत्र आलाप तथा उसके बाद लयबद्ध किन्तु ताल विहीन आलाप। यह लयबद्ध परंतु किसी भी ताल से विमुक्त आलाप ही जोड़ आलाप कहलाता है। लयमुक्त आलाप के बाद धीरे–धीरे जोड़ आलाप की लय बढ़ाई जाती है और इसका समापन झाले के साथ किया जता है। जोड़ आलाप करते समय कुशल वादक तंत्रकारी के सभी अंगो यथा मींड, गमक, खटका, कृन्तन आदि का भरपूर उपयोग कर अपनी प्रस्तुति को सुंदर बनाते हैं।

तोड़ा

गायन में स्वरों को द्रुत लय में गाने को तान कहा जाता है। इसी प्रकार तंत्री वाद्यों में गत के साथ दुगुन चौगुन या और अधिक लय में स्वरों को बजाने को तोड़ा कहा जाता है। तोड़ों के द्वारा ही कोई प्रस्तुति आकर्षक बनती है। गत का विस्तार तोड़ों के माध्यम से ही

होता हैं क्योंकि गत के स्थाई और अंतरा ही होते हैं। यदि केवल गत ही बजाई जाए तो एक या दो मिनट में प्रस्तुति समाप्त हो जाएगी। प्रस्तुति को अधिक देर तक बजाने के लिए तोड़े सहायक है।

झाला

बाज एवं चिकारी के तारों का छंदोबद्ध और लययुक्त वादन ही झाला कहलाता है। सामान्यतया झाला द्रुत गत के बाद लय को बढ़ाकर शुरू किया जाता है। वर्तमान में झाले का जो सर्वमान्य प्रकार प्रचलित है उसमें बाज के तार पर ''दा'' से एक प्रहार और फिर चिकारी के तार पर ''रा'' के द्वारा तीन प्रहार किये जाते है। इस प्रकार बाज और चिकारी के तारों पर इस प्रकार लय और छंद के अनेक आकर्षक और चमत्कारिक संयोजनों से झाला और भी प्रभावी बन जाता है। कुछ कलाकार आलाप जोड़ के बाद गत से पहले भी झाला प्रस्तुत करते है परन्तु यह झाला ''उलट झाला'' कहलाता है। क्योंकि इसमें पहले चिकारी के तार पर एक प्रहार ''रा'' से किया जाता है और फिर बाज के तार पर तीन प्रहार ''दा'' से किये जाते है। यह वाद्य संगीत में प्रस्तुत की जाने वाली सबसे लोकप्रिय चीजों में से एक है क्योंकि झालें के समय लय तेज़ होती है और यह उत्तरोत्तर और तेज़ होती जाती है इसलिए यह जन सामान्य को भी जल्दी से प्रभावित करता है। सितार अथवा सरोद के अतिरिक्त अन्य तंत्री वाद्यों में भी उस वाद्य विशेष की वादन तकनीक के हिसाब से झाला बजाया जाता है।

कृन्तन

जब एक बार के प्रहार से एक से अधिक स्वर बजाएँ जाएँ तो वह क्रिया ''कृन्तन'' कहलाती है। जब कोई स्वर इस प्रकार से बजाया जाए कि एक ही प्रहार में पहले उस स्वर के बाद का स्वर (बजाएँ जा रहे राग के अनुसार) फिर मुख्य स्वर, फिर उससे पहले का स्वर (बजाए जा रहे राग के अनुसार) और मुख्य स्वर बज जाएं, तो यह प्रक्रिया **''कृन्तन''** कहलाती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए हमें सा बजाना है, तो हम शीघ्रता से ''रेसानिसा'' बजाएंगे। इसे बजाने के लिए बाएं हाथ की मध्यमा रे के पर्दे पर रखकर प्रहार किया जाएगा और मध्यमा को झटके से उठाकर तर्जनी को सा पर लाना होगा और तत्काल उसे खिसका कर नी पर और फिर तुरंत सा पर लाना होगा। यह पूरी प्रक्रिया अत्यंत शीघ्रता से केवल एक ही प्रहार के साथ होगी। इसे दर्शाने के लिए जिस मुख्य स्वर को बजाना है उसे कोष्ठक में लिखते हैं। जैसे– (सा)

जमजमा

जमजमा बाएं हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों की सहायता से बजाया जाता है यदि हमें सा बजाना है, तो तर्जनी को सा पर तथा मध्यमा को रे पर रखेंगे और दा से प्रहार करेगे और झटके के साथ मध्यमा को रे से हटा लेंगे और तर्जनी को सा पर ही रहने देगें। इस प्रक्रिया से हमें एक ही प्रहार से रेसा ये दो स्वर सुनाई पड़ेंगे। **पं. रविशंकर** ने अपनी पुस्तक My music my life में लिखा है कि मध्यमा और तर्जनी के सहारे शीघ्रता से रेसा बजाने को जमजमा कहते हैं। उनके अनुसार रेसा रेसा रेसा इस प्रकार तीन बार भी बजाया जा सकता है। कई अन्य विद्वानों ने भी दो या तीन या चार बार इस प्रकार दो स्वरों को बजाने का उल्लेख किया हैं परन्तु किसी ने भी यह स्पष्ट नहीं किया कि इस प्रक्रिया में प्रहार कितनी बार किया जाना है। संगीत विशारद में जमजमा की परिभाषा इस प्रकार दी है– सितार में जब दो स्वरों को एक के बाद एक जल्दी–जल्दी इस प्रकार बजाया जाए कि पहले स्वर पर तो मिजराब से प्रहार किया जाए और दूसरे स्वर को बिना मिजराव केवल बायें हाथ की मध्यमा से बजाया जाए, तो यह प्रक्रिया जमजमा कहलाती है। जैसे

सारे सारे रेग रेग

दाS दाS दाS दाS

मींड

एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना आवाज़ खण्डित हुए दोनों स्वरों के बीच की समस्त श्रुतियों को छूते हुए जाने की क्रिया मींड कहलाती है। सितार सुरबहार इत्यादि वाद्य यंत्रों में मींड बजाने हेतु किसी स्वर पर बायां हाथ रखकर दाहिने हाथ से प्रहार किया जाता है तथा बाएं हाथ से तार को पर्दे के बाहर की ओर जितने स्वर की मींड लेनी हो उसके अनुसार वांछित दूरी तक खींचा जाता है। इस क्रिया से हम एक ही स्वर पर दो तीन चार या पांच स्वरों को उत्पन्न कर सकते है। यह क्रिया नाद के उस गुण पर आधारित है जिसके अनुसार यदि कम्पित पदार्थ की मोटाई और लम्बाई अपरिवर्तित रहे और उस पदार्थ पर डाले गए तनाव या खिंचाव को बढ़ा दिया जाए, तो नाद

की तीव्रता या तारता बढ़ जाती है मींड दो प्रकार की होती है–अनुलोम मींड और विलोम मींड

अनुलोम मींड किसी स्वर पर प्रहार कर तार को वांछित स्वर तक बाहर की ओर खींचकर ऊँचे स्वर को बजाने की क्रिया अनुलोम मींड कहलाती है।

विलोम मींड तार को पहले वांछित ऊँचे स्वर तक खींच कर फिर तार पर प्रहार कर उसे वापस उसी परदे स्थान तक लाकर अवरोह क्रम में स्वर उत्पन्न करना विलोम मींड कहलाता है।

दुर्लभ चित्र

बांए से– उ. आशिक अली, उ. इनायत खां, उ. इमदाद खां, उ. वाहिद खां, उ. सखावतखां

ब. भारत में प्रचलित संगीत–पद्धतियां

भारत में प्रमुख रूप से दो संगीत पद्धतियां प्रचलित हैं। पहली उत्तरी या हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति तथा दूसरी दक्षिणी या कर्नाटक पद्धति। जैसा कि नाम से ही विदित है, उत्तर भारतीय पद्धति समूचे उत्तर भारत में प्रचलित है। यह पद्धति पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों में प्रचलित है। दक्षिणी संगीत पद्धति कर्नाटक आंध्र प्रदेश तमिलनाडु केरल आदि दक्षिणी क्षेत्रों में प्रचलित है।

प्रारंभ में ये दोनो भिन्न पद्धतियां नहीं थी बल्कि एक ही पद्धति पूरे भारत में प्रचलित थी। मुस्लिम आक्रमण के प्रभाव से भारत की संस्कृति में बहुत से परिवर्तन होने शुरू हो गए चूंकि मुस्लिम साम्राज्य का प्रभाव ज्यादातर उत्तरी भारत में ही रहा, इसलिए हमारे संगीत में मुस्लिम संगीत का प्रभाव भी केवल उत्तर भारत में ही पड़ा। संगीत मकरंद नामक ग्रंथ में लिखा है कि आठवीं सदी में दोनो पद्धतियों में अन्तर आना आरंभ हो गया था। 12वीं सदी तक आते आते दोनों पद्धतियां एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हो चुकीं थी। यद्यपि दोनों पद्धतियों का मूल आधार एक ही है समय के साथ साथ हुए परिवर्तनों के कारण दोनों में भिन्नताएं आ गई। इन दोनों पद्धतियों में मुख्य विभिन्नताएं निम्न हैं–

1. **भाषा–** उत्तर भारतीय या हिन्दुस्तानी संगीत में गीतों की भाषा अधिकतर ब्रजभाषा है। स्थानीयता के चलते कुछ गीत पंजाबी मराठी हिन्दी आदि में भी मिलते हैं। वहीं दूसरी ओर दक्षिणी पद्धति में गीत की भाषा कन्नड, तेलुगू और तमिल होती है। संस्कृत भाषा के गीत दोनों पद्धतियों में ही कम मात्रा में पाएँ जाते हैं।
2. रागों के नाम दोनों पद्धतियों में भिन्न हैं। जैसे

उत्तरी–राग	दक्षिणी–राग
बिलावल	धीर शंकराभरणं
भूपाली	मोहनम
तोड़ी	शुभ पंतुवराली
आसावरी	मुखारी
बागेश्री	श्री रंजनी
सोहनी	हंसानदी
भैरव	मायामालव

इसके अलावा कुछ रागों के नाम दोनो पद्धतियों में समान हैं परंतु उनके स्वर भिन्न हैं। कुछ राग ऐसे भी हैं जो दक्षिणी पद्धति के राग हैं परंतु पिछले 6–7 दशकों में उत्तर भारतीय परिधि में मान्यता प्राप्त कर चुके हैं जैसे हंसध्वनि, मधुवंती वाचश्पति आदि।

3. **ताल–** दक्षिणी संगीत में 7 प्रमुख तालें है एवं 5 जातियां हैं। इस प्रकार कुल 7 x 5 = 35 तालें हो जाती हैं। इन तालों में थोड़ा सा परिवर्तन करने से अन्य तालें बन जाती हैं। उत्तरी संगीत में तालों की संख्या अनगिनत हो सकती है। उत्तर भारतीय संगीत में जहॉ ताली और खाली होते हैं वही दक्षिणी पद्धति मे खाली नहीं होता।
4. **राग वर्गीकरण–** उत्तरी संगीत पद्धति में समय समय पर भिन्न भिन्न राग वर्गीकरण पद्धतियां प्रचलन में रही है। राग–रागिनी पद्धति, दशविध राग–वर्गीकरण, रागांग राग पद्धति आदि प्रचलित रहे हैं और वर्तमान में उत्तरी संगीत पद्धति मे थाट राग वर्गीकरण प्रचलित है। इसमें 10 थाट प्रचलित हैं। दक्षिणी संगीत पद्धति मे मेल राग वर्गीकरण प्रचलित है। मेलों की संख्या समय–समय पर कम या ज्यादा होती रही है। वर्तमान में 19 मेल प्रचलित हैं।
5. **गायन शैलियां–** उत्तरी संगीत पद्धति प्रमुख रूप से खयाल पर आधारित है। इसके अन्य मुख्य गीत प्रकार हैं ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना, ध्रुपद धमार इत्यादि जबकि दक्षिणी पद्धति मे कृति, पदम्, तिल्लाना, आदि प्रमुख गीत प्रकार है।

6. **वादन शैलियां–** उत्तरी संगीत–पद्धति में अधिकतर गत ही प्रचलित है। इसके अलावा गायकी अंग के वादन में खयाल या ठुमरी अंग का वादन भी प्रचलित है जबकि दक्षिणी–पद्धति मे तत्त्व ओक और अनुगत शैलियां हैं।

7. **स्वर–** उत्तरी संगीत–पद्धति और दक्षिणी–पद्धति के स्वरों की संख्या तो 12 ही है परंतु इनके नामों में भिन्नता पाई जाती है। दक्षिणी पद्धति में कोमल स्वर नहीं होता है। पहले शुद्ध स्वर आता है फिर उसका विकृत रूप। विकृत स्वरों के नाम श्रुतिसंख्या के आधार पर होते हैं।

उत्तरी स्वर	दक्षिणी स्वर
स	स
कोमल रे	शुद्ध रे
शुद्ध रे	शुद्ध ग या चतुःश्रुति रे
कोमल ग	साधारण ग या षटश्रुति रे
शुद्ध ग	अंतर ग
शुद्ध म	शुद्ध म
तीव्र म	प्रति म
प	प
कोमल ध	शुद्ध ध
शुद्ध ध	शुद्ध नी या चतुःश्रुति ध
कोमल नी	कैशिक नी या षटश्रुति ध
शुद्ध नी	काकली नी

दोनों पद्धतियों में कुछ मूलभूत समानताएं हैं। वे इस प्रकार हैं–

- दोनों पद्धतियों में सप्तक में कुल 22 श्रुतियां मानी गई हैं।
- दोनों में ही सप्तक में स्वरों की संख्या 12 मानी गई हैं।
- दोनों में ही राग के 10 लक्षण बताए गए हैं।
- दोनों पद्धतियों में राग की जातियों का प्रचलन हैं।
- आलाप तान आदि दोनों पद्धतियों में ही प्रचलित हैं।
- नाट्य शास्त्र एवं संगीत रत्नाकर दोनों पद्धतियों के आधार ग्रंथ माने जाते हैं।
- ताल वाद्यों का प्रयोग दोनों पद्धतियों में होता हैं।
- गायन की कई शैलियां दोनों पद्धतियों में ही प्रचलित हैं जो एक दूसरे से मिलती जुलती हैं।

मुख्य बिन्दु

- गाने या बजाने की कोई भी क्रिया वर्ण कहलाती है। वर्ण चार प्रकार के होते हैं। स्थाई वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण और संचारी वर्ण
- स्वरों के एक निश्चित क्रम को अपनाकर उसका आरोह–अवरोह करने की क्रिया संगीत में अलंकार कहलाती है।
- एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना आवाज़ खण्डित हुए दोनों स्वरों के बीच की समस्त श्रुतियों को छूते हुए जाने की क्रिया मींड कहलाती है।
- उत्तरी संगीत–पद्धति प्रमुख रूप से खयाल आधारित है। इसके अन्य मुख्य गीत प्रकार हैं ठुमरी, दादरा, टप्पा, तराना, धुपद धमार इत्यादि हैं जबकि दक्षिणी पद्धति मे कृति, पदम, तिल्लाना, आदि प्रमुख गीत प्रकार है।

- उत्तरी–संगीत पद्धति और दक्षिणी–पद्धति के स्वरों की संख्या तो 12 ही है परंतु इनके नामों में भिन्नता पाई जाती है। दक्षिणी पद्धति में कोमल स्वर नहीं होता है। पहले शुद्ध स्वर आता है फिर उसका विकृत रूप। विकृत स्वरों के नाम श्रुतिसंख्या के आधार पर होते हैं।
- सप्तक में कुल 22 श्रुतियाँ होती हैं। सा म प की 4–4, रे ध की 3–3 तथा ग नी की 2–2।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. षड्ज ग्राम में श्रुतियों का क्रम होता है–

   (अ) 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 (ब) 4, 3, 2, 4, 3, 4, 2

   (स) 4, 2, 3, 4, 4, 3, 2 (द) 4, 3, 2, 4, 4, 2, 3

2. बिलावल राग के समान स्वरों का दक्षिणी राग है–

   (अ) मुखारी (ब) मोहनम (स) हंसानदी (द) धीर शंकराभरण

3. ग म रे सा यह स्वर समुदाय किस प्रकार का वर्ण है–

   (अ) आरोही (ब) अवरोही (स) स्थाई (द) संचारी

उत्तरमाला– (1) अ (2) द (3) द

प्रश्न–

1. वर्ण कितने प्रकार के होते हैं? नाम लिखिए।
2. अलंकार किसे कहते हैं?
3. आरोह–अवरोह की परिभाषा लिखिए।
4. पकड़ किसे कहते हैं? पाठ्यक्रम के रागों की पकड़ लिखिए
5. आलाप को समझाइए।
6. भारत में कौन–कौन–सी संगीत पद्धतियाँ मुख्य रूप से प्रचलित हैं।
7. उत्तर भारत और दक्षिण भारत की संगीत पद्धतियों के स्वरों में क्या अंतर है।

अभ्यास कार्य

1. सा रे ग रे सा इस स्वर समुदाय को आधार मान कर अलंकार बनाइये।
2. किसी वाद्य वादन की रिकार्डिंग को सुनकर उसमें आलाप विलंबित गत द्रुत–गत झाला मींड, कण इत्यादि को पहचानने का अभ्यास कीजिए।
3. दक्षिण भारतीय पद्धति के कलाकारों के बारे में जानकारी हासिल कीजिए।

अध्याय 8

अ. संगीत–ग्रन्थों का अध्ययन
ब. रागों का समय–सिद्धान्त

अ. संगीत–ग्रन्थों का अध्ययन

भरत–कृत नाट्य–शास्त्र

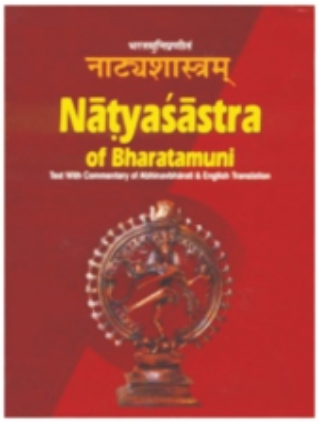

भारतीय संगीत के अध्ययन के लिए जो कुछ सामग्री आज उपलब्ध है उसके प्रणेताओं में भरतमुनि का नाम सर्वोपरि रखा जा सकता है, क्योंकि भरत द्वारा रचित नाट्यशास्त्र से पूर्व संगीत शास्त्र पर कोई ग्रंथ रचित नहीं हुआ है। कुछ पश्चिमी शोध कर्त्ताओं ने इस ग्रंथ का रचना काल 200 वर्ष ईसा पूर्व 500 ईस्वी के बीच का माना है, परन्तु भारतीय विद्वान इस ग्रंथ को और भी प्राचीन मानते है। यद्यपि भरत ने संगीत पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा परन्तु उनके द्वारा रचित ग्रंथ 'नाट्यशास्त्रम्' में ही कुछ अध्याय है जो पूर्णतः संगीत से संबंधित है। भरत ने संगीत को नाट्य का ही एक अंग माना है।

नाट्यशास्त्रम् ग्रंथ में कुल 36 अध्याय है परन्तु संगीत से संबंधित अध्याय 28वें से 33वें तक ही है। यदि नृत्य को भी संगीत से संबंधित माना जाए, तो चौथा अध्याय तथा रस को और सम्मिलित कर लिया जाए, तो छठा और सातवां अध्याय है जो पूर्णतः संगीत से संबंधित है।

अट्ठाईसवें अध्याय में वाद्यों के चार भेद, स्वर, श्रुति, ताल, ग्राम, मूर्च्छना, 18 जातियां एवं उनके लक्षण बताएं गए है। भरत ने सप्तक में कुल 22 श्रुतियां बताई है। षड्ज की 4 ऋषभ की 3, गंधार की 2, मध्यम की 4, पंचम की 4, धैवत की 3 एवं निषाद् की 2 इस प्रकार 22 श्रुतियों को सप्तक में विभाजित किया गया है। भरत ने इन सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त दो विकृत–स्वर और बताए है–अंतर गंधार और काकली निषाद्।

भारत के नाट्य शास्त्र की श्रुति–स्वर विभाजन निम्न प्रकार बताया गया है–

श्रुति संख्या	स्वर
पहली	
दूसरी	काकली निषाद
तीसरी	
चौथी	**षड्ज**
पॉचवीं	
छठी	
सातवीं	**ऋषभ**
आठवीं	
नवीं	**गंधार**
दसवीं	
ग्यारहवीं	अन्तर गंधार

श्रुति संख्या	स्वर
बारहवीं	
तेरहवीं	**मध्यम**
चौदहवीं	
पन्द्रहवीं	
सोलहवीं	
सत्रहवीं	**पंचम**
अठारहवीं	
उन्नीसवीं	
बीसवीं	**धैवत**
इक्कीसवीं	
बाईसवीं	**निषाद्**

उनतीसवें अध्याय में जाति और रस, अलंकार, धातु एवं वीणा के विभिन्न प्रकारों की तथा उनके वादन विधि की विस्तृत चर्चा की गई है।

तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इक्त्तीसवें अध्याय में कला, लय और ताल का वर्णन है तथा विभिन्न गान प्रकार तथा गायक के गुण–दोष बताए गये हैं।

नाट्यशास्त्र के तेंतीसवें अध्याय में अवनद्ध–वाद्यों की उत्पत्ति, भेद वादन की विधियां वाद्य वादकों के लक्षण तथा 18 जातियों की विवेचना की गई है।

शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर

यह ग्रंथ पं. शारंग देव द्वारा रचित है। संगीत रत्नाकर को उत्तर भारतीय संगीत का आधार ग्रंथ कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस ग्रंथ की रचना तेरहवीं सदी में हुई थी। शारंगदेव स्वकालीन प्रचलित संगीत–पद्धतियों और विचारों का प्राचीन विचारों के साथ समन्वय करना चाहते थे। प्राचीनकाल में जो स्थान नाट्यशास्त्र को उपलब्ध था, वहीं मध्यकाल में **''संगीत रत्नाकर''** का था। संगीत रत्नाकर में कुल 7 अध्यायों में विषय विभाजन हुआ है।

(1) स्वरगताध्याय

प्रथम अध्याय में शारंगदेव ने नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणा चतुष्टयी, ग्राम मुर्च्छना तान निरूपण, श्रुति, स्वर साधारण स्वरों के रंग, वर्ण, देवता आदि के विषय में विस्तार से चर्चा की है। तदुपरांत जाति और उसके लक्षणों का भी विशद् विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में वर्ण, अलंकार इत्यादि का भी वर्णन है।

शारंगदेव ने शुद्ध स्वर 7 एवं विकृत स्वर 12 इस प्रकार कुल 19 स्वर–नाम बताए है। स्वरों को श्रुतियों में बांटने के लिये शारंगदेव ने भरत की तरह ही 4 3 2 4 4 3 2 का ही सहारा लिया है अर्थात् षडज चार श्रुति का ऋषभ तीन श्रुतियों का गंधार दो श्रुतियों का, मध्यम व पंचम चार–चार श्रुतियों के धैवत तीन श्रुतियों का तथा निषाद् दो श्रुतियों का होता है। संगीत रत्नाकर के अनुसार श्रुति–स्वर विभाजन निम्न प्रकार है–

श्रुति संख्या	स्वर
पहली	कैशिक निषाद्
दूसरी	काकली निषाद्
तीसरी	च्युत षड्ज
चौथी	**षड्ज**
पॉचवीं	कैशिक षड्ज
छठी	अन्तर षड्ज
सातवीं	**ऋषभ**
आठवीं	विकृत–ऋषभ
नवीं	**गंधार**
दसवीं	साधारण गंधार
ग्यारहवीं	अन्तर गंधार

श्रुति संख्या	स्वर
बारहवीं	
तेरहवीं	**मध्यम**
चौदहवीं	कैशिकमध्यम
पन्द्रहवीं	विकृत–मध्यम
सोलहवीं	मध्यम–ग्राम–पंचम
सत्रहवीं	पं**चम**
अठारहवीं	मध्यम ग्राम धैवत
उन्नीसवीं	
बीसवीं	**धैवत**
इक्कीसवीं	
बाईसवीं	**निषाद्**

(2) रागाध्याय

द्वितीय अध्याय में ग्रामराग, उपराग, भाषाराग, विभाषा राग, अन्तर्भाषा राग, रागांग राग, क्रियांग राग, उपांग राग और उनके नाम इत्यादि का वर्णन है।

(3) प्रकीर्णकाध्याय

तृतीय अध्याय में गायक के गुण–दोष, गमक, स्थान रागालप्ति एवं कुतप् इत्यादि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में शब्द के गुण–दोष एवं गायकी के लक्षणादि की भी चर्चा की गई है।

(4) प्रबंधाध्याय

चतुर्थ अध्याय में गांधर्व, गान, निबद्ध एवं अनिबद्ध भेद 75 प्रकार के प्रबंधों, जाति आदि का वर्णन किया गया है।

(5) ताल अध्याय

इस अध्याय में मार्ग ताल, देशी ताल आदि की व्याख्या है तथा साथ ही 121 तालों का परिचय भी दिया गया है।

(6) वाद्याध्याय

वाद्याध्याय में तत्, सुषिर, घन तथा अवनद्ध वाद्यों का परिचय उनकी बनावट शैली, उनके गुण–दोष आदि का वर्णन है।

(7) नर्तनाध्याय

इस अंतिम अध्याय में नृत्य, नाट्य, नृत्त शरीर के अंगों पर अभिनय इत्यादि का विवेचन है।

संगीत रत्नाकार में कुल 264 रागों का वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ का आधार यद्यपि भरत कृत नाट्यशास्त्र है परन्तु शारंगदेव के काल तक जाति–गायन के स्थान पर राग–गायन का प्रचलन शुरू हो चुका था।

पं. भातखण्डे–कृत – श्रीमल्लक्ष्य–संगीतम्

पं. विष्णु नारायण भातखंडे

यह ग्रंथ पं. विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा रचित है। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इस ग्रंथ की रचना तिथि सोमवार, चैत्रशुक्ल प्रतिपदा शक् 1831 तदनुसार मार्च 22 ईस्वी सन् 1909 है।

इस ग्रंथ का उद्देश्य वह मार्ग–प्रशस्त करना है जिस के द्वारा 'लक्ष्य संगीत' अर्थात् प्रचलित संगीत का ज्ञान सुगमता से हो सकें। ग्रंथकर्त्ता के अनुसार संगीत के शास्त्र पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष दोनों का ही समन्वय करने वाली आधुनिक युगीन शिक्षा–प्रणाली के लिये योग्य अध्यापकों का निर्माण एवं उनकी अपेक्षाओं की पूर्ति करना इस ग्रंथ का ध्येय है।

पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने यह ग्रंथ **'चतुर पंड़ित'** उपनाम से लिखा है, **'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्'** में दो अध्याय है, पहला 'स्वराध्याय' तथा दूसरा 'रागाध्याय'। 'स्वराध्याय' में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, मेल, राग, वर्ण, अलंकार, तान आदि विषयों का निरूपण शास्त्रीय परम्परा के अनुसार एवं महत्त्वपूर्ण संगीत–ग्रंथों से प्रमाण देते हुए किया है। इस ग्रंथ में संगीत रत्नाकर आदि प्राचीन ग्रंथों और ग्रंथकारों पर आलोचनात्मक टिप्पणियां भी की गई है।

'रागाध्याय में' जन्य एवं जनक राग वर्गीकरण के अनुसार उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित 10 मेलों एवं उनसे जन्य रागों का वर्णन मिलता है। रागों का वर्णन यद्यपि संक्षेप में है परन्तु राग के बारें में जानने योग्य सभी महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश है। रागों के विवरण के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों –जैसे गायक के गुणदोष, वाग्गेयकार के लक्षण, सुशारीर आदि पर संगीत रत्नाकर के अंश भी उद्धृत किये गये है।

अंत में परिशिष्ट में विभिन्न संगीत ग्रंथो में प्रतिपादित रागों एवं राग वर्गीकरण की तालिकाऐं दी गई है। इस ग्रंथ में कहीं भी प्रचलित प्रबंध शैलियों तथा ताल पद्धति का उल्लेख नहीं मिलता है। यह ग्रंथ भातखंडे के समस्त सांगीतिक शोध एवं मान्यता का सार है। इसमें जो–जो बाते संकेत के तौर पर कहीं गई है, उनका विस्तार भातखंडे के अन्य ग्रंथो में हुआ है। इस प्रकार यह ग्रंथ उत्तर भारतीय संगीत–पद्धति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ अथवा Practical Hand Book सिद्ध हुआ है।

ब. रागों का समय सिद्धान्त

कहते हैं **'समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोय'** अर्थात् इस संसार में कोई भी वस्तु बदसूरत नहीं होती, बल्कि समय–समय पर प्रयोग की गई प्रत्येक वस्तु अपने आप में सुंदर होती है। इसी नियम के तहत दिन रात के 24 घंटों में गाए जाने वाले राग अपने–अपने समय पर गाए जाने पर ही आनंद देते हैं। इसे ही गायन समय सिद्धान्त कहा जाता है। इसे गायन–समय–चक्र भी कहते हैं क्योंकि कुछ राग प्रातः काल गाए जाने पर मधुर और प्रभावी होते हैं, तो कुछ दोपहर में और कुछ रागों का गायन सायंकाल में किया जाता है, यही क्रम सांय काल से लेकर रात्रि काल तक चलता रहता है। रागों का मुख्य उद्देश्य **''रजंको जनचित्तानां सः रागः कथितो बुधैः''** है, अर्थात् मनोरंजन या मन की संतुष्टि के लिए जिन स्वरावलियों का गायन किया जाता है, वहीं **'राग'** है। इसलिए प्राचीन समय से ही , न केवल राग–रागिनी, बल्कि वैदिक मंत्र, ऋचाएँ और भरतकालीन जातियाँ को समयानुसार गायन–वादन की परंपरा रही है इसीलिए कहा जाता है, **''समै समै सुंदर सवै''।**

मंत्र ऋचाएँ, जातियां एवं राग रागिनियों का घनिष्ठ संबंध ''रस'' से माना गया है, और इन सबकी रचना स्वरों से होती है, जबकि प्रत्येक स्वर का अपना 'रस' अपना अंदाज और अपना प्रभाव होता है जैसे–कोमल ऋषभ–धैवत करूण रस की अभिव्यक्ति करते हैं, तो शुद्ध ऋषभ–धैवत भक्तिपरक होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक स्वर का अपना ''रस'' होता है, जिसका मानव–मन से सम्बंध होता है। इन्हीं स्वरों से बने हुए राग और रागिनियों के गायन करने से व्यक्ति में एक भाव, एक रूझान पैदा होता है, जो उसके समस्त व्यक्तित्व का निर्माण करता है फिर राग–रागिनियों के मूल तत्त्व स्वर एवं लय (गति) है, जिन्हें व्यक्त करने का एक तरीका (style) होता है, एक समय होता है, जो हमारे बाह्य और आन्तरिक तंत्र में पूर्ण सन्तुलन पैदा करके हमें मानसिक और आत्मिक सुकून देता है। यही कारण है कि आज चिकित्सा जगत् में भी मधुर स्वरों का प्रयोग करके विकृत मन को शान्त करने के प्रयास किये जाते हैं लेकिन इसके लिए समय–असमय का ध्यान रखना अति आवश्यक है।

(1) जब समस्त ब्रह्माण्ड का कण–कण समय की सीमा में बाँधा हुआ है जैसे–सूर्योदय होना सूर्यास्त का होना, पृथ्वी का अपनी धुरी पर चक्कर लगाना, भिन्न–भिन्न प्रकार के मौसमों का आना, समुद्र में ज्वार–भाटे का आना, समय की सीमा को दिखाता है, यहाँ तक कि प्रत्येक प्राणी की श्वास प्रश्वास, धड़कन आदि क्रियाएँ एक गति से चलती है। यदि इन क्रियाओं में कहीं से भी, कैसा भी अवरोध आता है, तो प्राकृतिक आपदाएँ भूचाल, भूस्खलन, storm, बाढ आदि आने लगते हैं उसी प्रकार मानव की श्वासों में अवरोध होने पर डाक्टर बुलाने की जरूरत पड़ जाती है। इसी प्रकार हमारे राग–रागिनियाँ में जिन स्वरों का प्रयोग किया जाता है, उनके गायन समय की भी एक सीमा, एक मर्यादा होती हैं। इसलिए तो कुछ राग सुबह, कुछ दिन दोपहर और कुछ सांय एवं रात्रि में गाये जाते हैं, इसी प्रकार कुछ राग किसी खास मौसम में गाए जाने पर खिलते हैं जैसे वसन्त ऋतु में राग बसन्त, वर्षाकाल में मल्हार–अंग के राग, तो होली आदि के समय काफी, भीमपालासी आदि राग। इसलिए प्राचीन काल से लेकर आज तक रागों के गायन–वादन के समय–सिद्धान्त की (time key theory of Ragas) की मान्यता हैं रागों के गायन का यह समय सिद्धांत भले ही वैज्ञानिक न हो, किन्तु निश्चित रूप से यह मनोवैज्ञानिक है, इसी कारण यह (समय सिद्धांत) परम्परा से चला आ रहा है।

(2) भारतीय रागों एवं स्वरों का संबंध मनुष्य के हृदय से है, जिस प्रकार प्रातः काल से लेकर रात्रि तक मन के भाव बदलते रहते हैं। ठीक उसी प्रकार प्रातः से लेकर रात्रि तक हमारे यहां भिन्न–भिन्न रागों के गायन का विधान रखा गया है क्योंकि स्वरों का हमारें भावों (mood) से आन्तरिक नाता है, और इन्हीं स्वरों से रागों की रचना की गई है। अतएव समयानुसार रागों का गायन मानव मन को एक प्रकार की सन्तुष्टि देता है। इस सम्बंध में एक कथा है, नारद नाम के एक गायक गंधर्व थे। वे समय–असमय राग–रागिनियों का गायन वादन करते रहते थे। परिणाम स्वरूप वे सभी राग रागिनियाँ क्षत–विक्षत हो गये। जब नारद को मालूम हुआ, कि समय–असयम इनका गायन करने से इन रागों की यह दुर्दशा हुई, तब उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ, और वे पुनः उनका गायन समयानुसार करने लगे, परिणामतः सभी राग–रागिनियाँ अपने पूर्ववत स्वरूप में आ गई। अब यह किंवदन्ती कितनी प्रामाणिक है, यह तो कहा नहीं जा सकता है, किन्तु इससे यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि ''राग'' स्वरों का एक मनोवैज्ञानिक मधुर किन्तु अव्यक्त (abstract) व्यक्तिव है जिसका प्रभाव हमारे मन–मस्तिष्क और बाह्य शरीर पर अवश्य पड़ता है। इसलिए कहा गया है कि **''यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रंजकम्''** अर्थात् समय पर गाया गया, गीत ही रंजक और प्रभावशाली होता है अतएव भारतीय संगीत–विद्वानों ने कुछ ऐसे नियम बनाए हैं, जिन के द्वारा मोटे रूप से रागों के गायन समय

पर प्रकाश डाला जा सकता है।

राग–गायन समय सिद्धांत (time key theory of Ragas) के लिए तीन बातों का ध्यान रखना होगा–(1) स्वरों के द्वारा राग–गायन समय का निर्धारण (2) राग के वादी–सम्वादी स्वरों द्वारा समय ज्ञात करना तथा (3) मध्यम स्वर द्वारा रागों का समय जानना।

स्वरों के द्वारा राग–गायन समय का निर्धारण

रागों में लगने वाले शुद्ध और विकृत स्वरों के प्रयोग की दृष्टि से विद्वानों ने स्वरों के तीन वर्ग बनाए हैं, जिनके आधार पर दिन और रात के 24 घंटो में रागों के गायन का समय एक चक्र (circle) की भांति चलता रहता है– (i) कोमल रे–ध वाला वर्ग (ii) रे–ध शुद्ध स्वरों का वर्ग (iii) ग नी कोमल स्वरों का वर्ग।

(i) **कोमल रे–ध वाला वर्ग–** रे ध कोमल स्वरों का वर्ग, सन्धि प्रकाश रागों का समय कहलाता है। जिसमें ऋषभ–धैवत स्वर कोमल प्रयुक्त किए जाते हैं। ये राग चूंकि दिन और रात की सन्धि के समय में गाए बजाए जाते हैं अतएव ये राग सन्धि प्रकाश कहलाते है। 24 घंटों में इस प्रकार का सन्धि काल चूंकि दो बार आता है प्रातः 4 बजे से सात बजे, और सायं 4 बजे से सात बजे के बीच में। अतएव 4 से 7 बजे प्रातः काल गाए जाने वाले रागों में ऋषभ–धैवत कोमल और शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया जाता है। ये प्रातः कालीन सन्धिप्रकाश राग कहलाए जाते हैं। जैसे–राग भैरव। स <u>रे</u> ग म म प <u>ध</u> नी स इसी प्रकार सांयकाल 4 से 7 बजे तक के बीच में गाए जाने वाले राग सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग हैं इनमें भी कोमल ऋषभ और धैवत के प्रयोग के साथ तीव्र मध्यम भी लगाया जाता है। सांयकालीन होने के कारण इन रागों में तीव्र मध्यम का होना आवश्यक है। जैसे–राग पूर्वी : <u>रे</u>ग प <u>ध</u> नी सं

(ii) **रे–ध शुद्ध स्वरों का वर्ग–** प्रातः 4 से 7 बजे तक गाए जाने वाले वर्गों के बाद शुद्ध ऋषभ–धैवत वाले स्वरों का वर्ग आता है। इनका समय प्रातः 7 बजे से 10 बजे या 12 बजे तक का होता है। इसी प्रकार सायं 7 बजे से 12 बजे तक का होता है। इन रागों में ऋषभ व धैवत का शुद्ध होना जरूरी है क्योंकि ये दोनों स्वर जागरण के प्रतीक है तथा रागों का वांछित प्रभाव पाने के लिए इस वर्ग में शुद्ध गंधार भी आवश्यक स्वर माना जाता है। इस वर्ग के रागों में विलावल–कल्याण आदि थाटों के रागों का गायन–वादन किया जात है। यही क्रम (सायं 7 से 12) चलता है।

(iii) **ग नी कोमल स्वरों का वर्ग–** रागों के समय सिद्धांत को दर्शाने वाले स्वरों का तीसरा वर्ग कोमल गंधार निषाद का है। इस वर्ग में भैरवी काफी आसावरी, तोड़ी आदि थाटों के राग गाए बजाए जाते हैं। ग–नी कोमल वाले रागों का समय, शुद्ध रे–ध वर्ग के बाद अर्थात् सायं 7 बजे से 12 बजे के बाद आता है। अर्थात् 12 बजे से 4 बजे तक के बीच में होता है। ग–नी कोमल स्वर वाले राग के लिए विद्वानों का मत है कि इस वर्ग के रागों को यदि केवल कोमल गंधार वाले राग कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा। इस वर्ग के राग अधिकतर आसावरी, काफी और भैरवी थाट के राग होते है। इन थाटों में गंधार व निषाद कोमल है किन्तु इन थाटों से उत्पन्न रागों में शुद्ध निषाद् भी प्रयोग में लाया जाता है, जैसे तोड़ी थाट का राग मधुबन्ती, मुल्तानी, काफी थाट का पटदीप आदि अतएव इस वर्ग में गन्धार का कोमल होना आवश्यक है। इन रागों का गायन समय दोपहर 12 से 4 बजे सायं और इसी क्रम में रात्रि 12 बजे से प्रातः 4 बजे। फिर यही क्रम प्रातः 4 से 6 बजे, 7 से 10 या 12 बजे और 12 बजे से सुबह 4 बजे तक। यही रागों का समय सिद्धांत है (the time key theory of Ragas) या रागों का ''समय चक्र'' कहा जाता है। स्वरों द्वारा रागों का समय निर्देश करने में जो राग दिन गेय राग होते हैं उनमें तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता हैं।

राग के वादी–सम्वादी स्वरों द्वारा समय ज्ञात करना

राग में लगने वाले प्रधान स्वरों (वादी और सम्वादी स्वरों) द्वारा राग–गायन–समय पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। प्राचीन संगीत में जिसे 'अंश स्वर' कहा जाता था वहीं आज के राग–गायन में वादी स्वर के रूप में प्रयोग किया जाता है। वादी–स्वर के लिए कहा जाता है **'वदति इति वादी'** अर्थात् ऐसे स्वर से राग का स्वरूप, चलन और मोटे तौर पर समय सीमा ज्ञात हो, वह स्वर राग का वादी या प्रधान स्वर होता है। जिस राग का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग का स्वर हो वह पूर्वांगवादी राग होता है, और पूर्वांगवादी रागों का गायन समय दोपहर 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक के बीच में होता है अर्थात् 'स रे ग म प' सप्तक के इन पूर्वांग–स्वरों में से काई स्वर जिस राग का वादी–स्वर हो वह पूर्वांगवादी राग है, जैसे यमन, विहाग, भूपाली आदि राग में गंधार स्वर वादी है। अतएव ये सभी राग 12 बजे दिन से रात्रि 12 बजे तक के बीच में गाए बजाए जाते हैं।

इसी प्रकार जिन रागों का वादी–स्वर सप्तक के उत्तरांग का हो, अर्थात् 'म प ध नी सं' इन स्वरों में से जो स्वर, राग का वादी स्वर हो, वह राग उत्तरांगवादी राग कहलाता है।

मोटे तौर पर उत्तरांगवादी रागों का गायन समय रात्रि 12 बजे से दिन के 12 तक के बीच का है जैसे भैरव, देशकार, रामकली आदि। ये सभी राग रात्रि 12 से दिन 12 बजे तक के बीच में गाए बजाए जाते हैं। इस प्रकार वादी स्वर न केवल राग के स्वरूप को बताता है, बल्कि यह स्वर रागों के समय का बोध भी कराता है। उदाहरण के लिए देशकार और भूपाली राग म–नी वर्जित औडव जाति के राग है दोनों में समान स्वरों का प्रयोग किया जाता है जैसे–स रे ग प ध सं, सं ध प ग रे स इन दोनों रागों के चलन, स्वरूप और समय को बतलाने वाला स्वर 'वादी' है। देशकार राग का वादी स्वर धैवत है, अतएव देशकार एक उत्तरांगवादी राग है जिसका गायन समय प्रातः काल है, दूसरी और भूपाली राग का वादी स्वर गंधार है अतः भूपाली एक पूर्वांगवादी राग है जिसका गायन समय रात्रि है। सभी स्वरों में समानता होने पर भी वादी स्वर से दोनों रागों की समय सीमा का ज्ञान होता है ।

मध्यम स्वर द्वारा रागों का समय जानना

रागों के गायन वादन समय का संकेत देने वाला 'मध्यम' स्वर भी है। अधिकांश शुद्ध ''मध्यम'' दिन गेयता का द्योतक हैं, तो तीव्र मध्यम रात्रिगेयता की ओर इशारा करता है क्योंकि अधिकतर प्रातःकाल और दिन या दोपहर में जिन रागों का गायन वादन होता है, उन सभी में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया जाता है, । इसी प्रकार सांयगेय जितने भी राग हैं उनमें तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार मध्यम स्वर से रागों के गायन समय पर प्रकाश डाला जा सकता है। मध्यम को **अध्वदर्शक** स्वर कहा गया है।

रागों का समय–सिद्धांत (time key theory of Rages) पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है। प्राचीन ग्रंथों मं भी उल्लेख है, और यह अनुभव सिद्ध भी है, क्योंकि प्रत्येक स्वर का अपना मन मिजाज होता है, उसका अपना रस होता है, और स्वरों के संयोग से बने हुए रागों का हमारे आन्तरिक तंत्र से रागात्मक सम्बंध रहता है। इसीलिए अलग–अलग समय पर गाये जाने वाले राग हमारी भावनाओं को प्रभावित करते है। यही कारण है सातवीं शती के मतंगमुनि ने रागों के सम्बंध में लिखा है–**''रंजको जनचित्तानां सः रागः कथितो बुधैः''**। राग–गायन का यह समय सिद्धांत कभी टूटता नहीं है। प्रातः से लेकर रात्रि तक हमारे mood के अनुरूप रागों का गायन एक चक्र के अनुरूप चलता रहता है जिसे विद्वानों ने निम्न प्रकार से व्यक्त किया है–

मुख्य बिन्दु

- भारतीय संगीत के दो सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भरत–कृत नाट्य शास्त्र तथा शारंगदेव–कृत संगीत रत्नाकर है।
- नाट्यशास्त्र ग्रंथ में कुल 36 अध्याय है परन्तु संगीत से संबंधित अध्याय 28वें से 33वें तक ही है, जो पूर्णतः संगीत से संबंधित है। इनके अतिरिक्त चौथा, छठा, सातवां अध्याय भी नृत्य तथा रस से संबंधित है।
- संगीत रत्नाकर में कुल सात अध्याय हैं।
- भरत ने सात शुद्ध तथा दो विकृत कुल **'नौ'** स्वर बताए हैं जबकि शारंगदेव ने 'सात' शुद्ध और 'बारह' विकृत स्वर बताए हैं।
- **'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्'** संस्कृत में लिखा गया आधुनिक उत्तर भारतीय संगीत का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके रचयिता पं0 विष्णु नारायण भातखंडे है। यह ग्रंथ 1909 में लिखा गया था। इसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, मेल, राग, वर्ण, अलंकार, तान आदि विषयों का निरूपण शास्त्रीय परम्परा के अनुसार एवं महत्त्वपूर्ण संगीत ग्रंथों से प्रमाण देते हुए किया है।

- रागों में लगने वाले शुद्ध और विकृत स्वरों के प्रयोग की दृष्टि से विद्वानों ने स्वरों के तीन वर्ग बनाए हैं, जिनके आधार पर दिन और रात के 24 घंटो में रागों के गायन का समय एक चक्र (circle) की भांति चलता रहता है– (i) कोमल रे–ध वाला वर्ग (ii) रे–ध शुद्ध स्वरों का वर्ग (iii) ग नी कोमल स्वरों का वर्ग।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. नाट्यशास्त्र के अनुसार विकृत–गंधार कौन सा है?
   (अ) गंधार (ब) कोमल गंधार (स) अंतर गंधार (द) काकली गंधार
2. संगीत रत्नाकर में कितने अध्याय हैं–
   (अ) 5 (ब) 36 (स) 7 (द) 9
3. अध्व दर्शक स्वर कौन सा हैं?
   (अ) षड्ज (ब) मध्यम (स) गंधार (द) पंचम

उत्तरमाला– (1) स (2) स (3) ब

प्रश्न–

1. नाट्यशास्त्र के रचयिता कौन थे?
2. संगीतरत्नाकर नामक ग्रंथ किसने लिखा था?
3. चतुर पंडित कौन थे ?
4. नाट्य शास्त्र में कुल कितने अध्याय हैं?इनमें से संगीत से संबंधित अध्याय कौन – से है?
5. 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम' नामक ग्रथ के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. संधिप्रकाश राग क्या हैं?समझाइये।
7. रागों के गायन समय का निर्धारण करने में मध्यम स्वर एवं राग के वादी स्वर की क्या भूमिका है?
8. नाट्यशास्त्र के विषय में बताइये।
9. भारतीय संगीत के समय–सिद्धान्त को समझाइये।

अभ्यास कार्य

- भारतीय संगीत के प्रमुख प्राचीन तथा आधुनिक ग्रंथों के नाम एवं उनके लेखकों के बारे में जानकारी प्राप्त करना
- भातखंडे के संगीत के क्षेत्र में दिये गए योगदान के विषय में जानकारी प्राप्त करना
- राग–समयचक्र का चार्ट बनाकर अपनी कक्षा में लगाना।

अध्याय 9

अ. घराना/बाज
ब. वाद्य वर्णन

परंपरा–उ.हाफिज अली, उ.अमजद अली, उ.अमान अयान अली

अ. घराना/बाज

मैहर बाज

मैहर बाज के प्रवर्त्तक बाबा **'अलाउद्दीन खान'** हैं। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का जन्म बांग्लादेश में 1862 में हुआ था। वे मुख्यतः एक सरोद वादक थे परन्तु ऐसा कोई भी वाद्य नहीं था जो वे नहीं बजा सकते हों, उन्होनें अपने जीवन काल में बहुत से गुरुओं से संगीत सीखा, परन्तु वे अंत में रामपुर के उस्ताद वज़ीर खाँ के शिष्य बने। वजीर खाँ बीनकार (वीणा वादक) थे अलाउद्दीन खान ने अपनी एक नई शैली विकसित की, जिसमें ध्रुपद शैली में आलाप जोड़ के साथ–साथ ख्याल शैली में विलम्बित गत के विस्तार का समावेश रहा चूंकि उस्ताद अलाउद्दीन खान मैहर के महाराजा के दरबारी संगीतज्ञ थे और मैहर में ही निवास करते थे। अतः उनके द्वारा प्रतिपादित शैली को मैहर घराना या मैहर बाज कहा जाता है।

बांए से–पं.रवि शंकर, बाबा अलाउद्दीन खां, अली अकबर खाँ

उपर्यक्त विशेषताओं के अतिरिक्त मैहर घराने के वादन में अन्य कई विशेषताएँ हैं। इस घराने की वादन शैली में स्वर विस्तार में आध्यात्म और श्रृंगार दोनों का समावेश है। इस शैली की एक अनूठी विशेषता यह भी है कि इसमें शुरूआत विलम्बित आलाप के साथ होती है तथा अंत अति द्रुत झाला के साथ। मैहर शैली को उनके सुयोग्य शिष्यों पुत्र उस्ताद अली अकबर खाँ पुत्री अन्नपूर्णा देवी और शिष्य पं. रवि शंकर ने परिष्कृत और परिवर्द्धित किया।

बाबा अलाउद्दीन खां

उ. अली अकबर खाँ

उ.आशीष खां

पं. रवि शंकर ने आवश्यकतानुसार सितार की बनावट एंव वादन शैली में परिवर्तन किया उन्होनें विलम्बित गत की लय को उस समय तक प्रचलित लय से और भी कम कर दिया तथा आलाप को विस्तार देने के लिए अतिमंद्र सप्तक का प्रयोग भी आरंभ किया। इसके लिए उन्होनें अति खरज तथा खरज पंचम के तार अपने सितार में जोड़े।

इस बाज (घराने) की विशेषताएँ–

- राग की शुद्धता पर विशेष ध्यान
- ध्रुपद शैली में आलाप जोड़
- गत वादन की अनूठी शैली
- तिहाइयों का समावेश

इस घराने के प्रमुख कलाकार–उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद अली अकबर खाँ (सरोद), पं. रवि शंकर, पं. निखिल बनर्जी, पं. शशि मोहन भट्ट (सितार), अन्नपूर्णा देवी (सुरबहार), पं. पन्नालाल घोष (बांसुरी), हरि प्रसाद चौरसिया (बांसुरी), वी. जी. जोग (वायलिन)

इमदाद खानी बाज

बाज का अर्थ बजाने की रीति या शैली या Style होता है बाज एक प्रकार से शैली को ही प्रदर्शित करता है। इस प्रकार तंत्री वाद्यों के संदर्भ मे घराना, शैली और बाज एक दूसरे से पर्याय ही है।

इस शैली के प्रवर्तक उ. इमदाद खाँ थे इनका जन्म लगभग 1846 में हुआ, इनके पिता साहबदाद खाँ इटावा (उ.प्र.) के रहने वाले थे। इमदाद खाँ ने सितार वादन की अपनी अनोखी शैली विकसित की जिसे इमदाद खानी बाज कहा गया। इमदाद खान के सितार वादन में सपाट तानों का प्रयोग नहीं के बराबर है, परन्तु दाहिने हाथ से मिज़राब के बोलों से अद्भुत तैयारी के साथ चमत्कारी काम किया था। इनके द्वारा झाले को भी विभिन्न प्रकार से आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जाता था।

उ.इमदाद खां

उ.इनायत खां

उ.विलायत खां

उ.शुजाअत खां

इमदाद खानी बाज की अन्य विशेषताएँ निम्न है–

1. पाँच या छः स्वर की मींड का प्रयोग।
2. स्थाई अन्तरे का स्पष्ट प्रयोग।
3. दा रा दिर दिर, या दादारा दादारा दारा इत्यादि मिज़राब के बोलों को अत्यंत कुशलता और तैयारी के साथ बजाना।
4. तिहाई का प्रयोग अल्प, आलाप को सिलसिलेवार प्रस्तुत करना।
5. झाला में विशेष छंदो का प्रयोग

उस्ताद इमदाद खां के पुत्र इनायत खां भी बहुत बड़े सितार वादक हुए है। इनायत खां ने ही सबसे पहले सितार में तरब के तारों का प्रयोग शुरू किया था। इनायत खां के पुत्र उस्ताद विलायत खां इस सदी के महानत्तम सितार वादकों मे से एक है। इनायत खां के दूसरे पुत्र उस्ताद इमरत खां भी उत्कृष्ट सितार वादक है। विलायत खां के पुत्र शुजाअत खां इमरत खां के पुत्र इरशाद खां एव निशात खां भी बेजोड़ सितार वादक हैं। उस्ताद शाहिद परवेज खान जो कि इमादाद खां के छोटे बेटे वहीद खां के पौत्र है वर्तमान में इस घराने का नाम रोशन कर रहे हैं। विलायत खां के शिष्य विमलेन्दु मुखर्जी व उनके पुत्र बुद्धादित्य मुखर्जी भी इस बाज के प्रतिनिधि कलाकार है।

उ.अब्दुल हलीम जाफर खां

जाफ़रख़ानी बाज

वर्तमान सितार वादको में उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खां का एक विशिष्ट स्थान है। इनका संबंध बीनकारों के घराने से रहा है। जाफ़रख़ानी बाज की कुछ विशेषताएँ निम्न हैं –

1. आलाप में स्थाई और अंतरा ही बजाने की परम्परा है। संचारी और आभोग की नहीं।
2. जोड़ आलाप के बाद झाला नहीं बजाया जाता है। झाला द्रुतगत के बाद अन्त में ही बजाया जाता है।

3. गत का भराव मिजराब के बोलों के द्वारा किया जाता है। आधी चौथाई या पूरी गत का भराव मिज़राव के बोलो के द्वारा किया जाता है जो अत्यंत आकर्षक लगता है।
4. झाला बजाने के दौरान ठोक झाला भी बजाया जाता है।
5. वादन में कृन्तन, खटका, जमजमा, गिटकरी आदि का प्रचुर–मात्रा में प्रयोग।

ब. वाद्य वर्णन

तंत्रवाद्य–सितार : उद्‌भव एवं विकास

आधुनिक प्रचलित समस्त तंत्रवाद्यों में सितार अत्यन्त लोकप्रिय (Popular) वाद्य है। एक विषय के रूप में विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक तथा अधिकांश संगीत समारोह में इस वाद्य का प्रचार तथा प्रसार है। यही नहीं फिल्मी संगीत में तो इस वाद्य का भिन्न भिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

विद्वानों के मतानुसार सितार का आकार प्रकार ईरानी तम्बूर और ''ऊँद'' के समान है। ऊँद एक पर्शियिन वाद्य है। सितार की उत्पत्ति के संबंध में अनेक भ्रान्त धारणाएँ हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार सितार ईरानी अथवा पर्शियन वाद्य है और मुसलमानों के भारत आगमन पर यह वाद्य भारत में आया। 13वीं शताब्दी में अल्लाउद्‌दीन खिलजी के समय के प्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ अमीर खुसरो ने इस वाद्य का निर्माण किया और इसका पर्शियन नाम सेहतार रखा।

लेकिन आधुनिक तंत्रवाद्य के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ स्व. डॉ. लालमणी मिश्र के मतानुसार 'सितार' अमीर खुसरों द्वारा बनाया गया वाद्य नहीं है। इस सम्बंध में इन्होंने निम्न तथ्य दिए हैं–

1. इनके मत से अमीर खुसरो निःसंदेह एक अच्छा संगीतज्ञ कवि और राजनीतिज्ञ था किन्तु तत्कालीन किसी भी ग्रंथ में ''सितार का आविष्कर्त्ता'' के रूप में उनका उल्लेख नहीं मिलता है।
2. सितार को जो लोग ईरानी वाद्य मानकर इसे सेहतार के नाम से पुकराते है तो ईरान में एकतार, दुतार, सेहतार आदि वाद्यों का प्रचार रहा है, लेकिन इन वाद्यों की बनावट भारतीय वाद्य सितार की बनावट से बिल्कुल भिन्न है। भारतीय वाद्य की अपनी विशेषता है जैसे घुड़च का चपटा होना तथा गूंजदार जवारी आदि का होना जो ईरानी वाद्यों में नहीं होता। अतः सितार अमीर खुसरों द्वारा आविष्कृत वाद्य नहीं है।

सितार का आकार–प्रकार व बनावट

1. सितार का तुम्बा जिसे घट भी कहा जाता है अधिकतर पनस की लकड़ी से बनाया जाता है। बहुत अच्छे किस्म के सितार का तुम्बा बड़े–बड़े कद्‌दू से बनाया जाता है। इस गोल व चपटे तुम्बे पर लकड़ी की लम्बी डाड लगी रहती है जो अंदर से पोली होती है।
2. सितार के तुम्बे के ऊपर एक पतला सा ढक्कन होता है उसे तबली कहा जाता है। इसी तबली पर घुड़च लगी होती है जिस पर सितार के तार खींचे जाते हैं।
3. सितार में सात खूटियों पर सात तार बाँधे जाते हैं, जो तार गहन के द्वारा, घुड़च पर होते हुए तुम्बे के नीचे जिस स्थान पर बाँधे जाते हैं उसे लंगोट या कील कहा जाता है।
4. तारों के नीचे परदे बँधे रहते है जिन्हें सारिका या सुंदरी भी कहा जाता है। ये परदे पीतल या गिलट अथवा लोहे के होते हैं। इन परदों की संख्या लगभग 18 से 20 तक होती है।

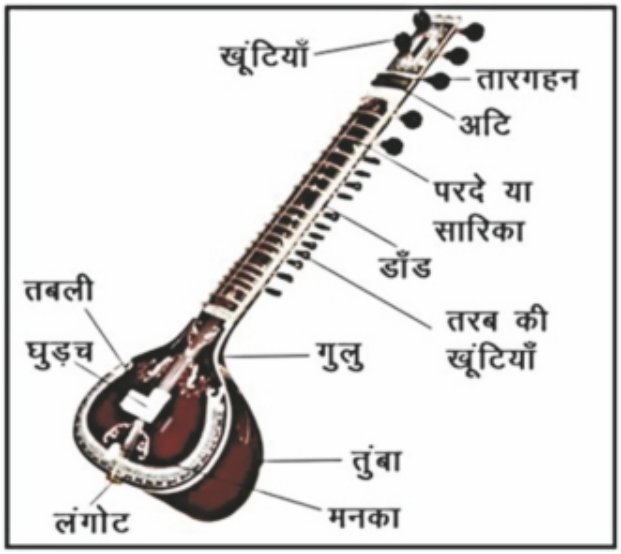

5. मुख्य सात परदों के नीचे कुछ और भी तार बाँधे जाते हैं जिन्हें **'तरब'** कहा जाता है। ये **'तरब'** राग के स्वरों के अनुसार मिलाई

जाती है, जिससे सितार की आवाज और मीठी मधुर तथा गुंजन से युक्त हो जाती है। इन तरबों की संख्या लगभग 11 से 13 तक होती है।

6. इसके अतिरिक्त सितार की घुड़च पर झनकार पैदा करने के लिए धागे लगाये जाते हैं तथा सितार के प्रथम तार जिसे बाज का तार कहा जाता है उसमें नीचे की ओर मनका, या हाथीदाँत की चिड़िया तार में पिरोई जाती है जिसे ऊपर नीचे करके स्वरों का मिलान किया जाता है।

मिजराब

मिजराब–सितार को बजाने के लिए एक प्रकार की पक्के लोहे के तार की अंगूठी होती है जिसे दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली में पहना जाता है। इसी मिजराव से सितार की तंत्रियों पर प्रहार करके वादन किया जाता है।

सितार के तार या तंत्रियाँ एवं उनके स्वर

सितार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–

1. साधारण सितार
2. तरबदार सितार

दोनों ही प्रकार के सितारों में मुख्य रूप से सात तार होते हैं, लेकिन साधारण सितार और तरबदार सितार में अंतर यह होता है कि साधारण सितार में केवल मुख्य सात तार होते हैं। जबकि तरबदार सितार में मुख्य सात तारों के अलावा, तरब के तार भी लगे होते हैं।

साधारण सितार, प्रारंम्भिक विद्यार्थियों के लिए होता है जबकि तरबदार सितार आगे के ऊँचे वादन के लिए होता है।

सितार का प्रथम तार लोहे (स्टील) के नम्बर दो या तीन का तार होता है। इसे बाज का तार कहा जाता है।

सितार का दूसरा एवं तीसरा तार 'जोड़ी के तार' के रूप में जाना जाता है। ये दोनों तार चूंकि एक ही स्वर में मिलाए जाते हैं इसीलिए इन्हें जोड़ी के तार के नाम से जाना जाता है। ये दोनों तार 28 नं. के होते हैं और पीतल एवं तांबे की धातु से बने होते हैं। वर्तमान में दो जोड़ी के तारों के स्थान पर एक ही तार का प्रयोग किया जाने लगा है।

चौथा तार स्टील का एक नम्बर का तार होता है जिसें पंचम का तार कहा जाता है।

पांचवा तार पीतल का होता है 26 या 22 नं. का तार होता है और इसे खरज व लरज पंचम का तार कहा जाता है।

छठा तार स्टील का जीरो नम्बर का होता है जिसे छोटी चिकारी कहा जाता है। सातवाँ तार भी स्टील का होता है जिसे जीरो या दो नम्बर का तार कहा जाता है याचिकारी का तार कहलाता है।

सितार मिलाने की विधि

सुरो की दृष्टि से सितार दो प्रकार के होते हैं– (1) चल ठाठ वाला (2) अचल ठाठ वाला सितार विद्वानों के मतानुसार चल ठाठ वाले सितार में 17 परदे या सारिकाएँ होती हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार खिसका कर ऊपर नीचे के स्वर बना दिए जाते है।

अचल ठाठ वाले सितार में प्रायः 19 परदे होते है जो खिसकाएं नहीं जाते। इसी कारण इसे अचल ठाठ वाला सितार कहा जाता है इसके परदे क्रमशः निम्न स्वरों में होते है–म॑ प़ ध़ ध़ नी़ नी़ स रे रे ग ग म॑ म प ध ध नी नी सं रें गं। किसी–किसी सितार में 22 या 24 परदे होते है किन्तु बजाने की दृष्टि से 19 परदे वाला अचल ठाठ का सितार ठीक रहता है।

सर्वप्रथम सितार की जोड़ी के तार यानी दूसरे एवं तीसरे नं. के तारों को षडज स्वर (मन्द्र) में मिलाया जाता है।

इन दोनों तारों के पश्चात् सितार का पहला तार मिलाया जाता है जिसे बाज का तार कहते हैं। इस तार को जोड़ी के तारों के आधार पर मन्द्र मध्यम से मिलाया जाता है। अर्थात् प्रथम तार को मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर से मिलाया जाता है। चौथा तार पंचम स्वर से मिलाया जाता है। पाँचवा तार सबसे अधिक मोटा होता है और पीतल का बना होता है जो अति मन्द्र सप्तक के पंचम सुर में मिलाया जाता है इसलिए इसे खरज–लरज का तार भी कहा जाता है।

छठे तार को छोटी चिकारी कहा जाता है यह तार बाज के तार के मध्य सप्तक के सा से मिलाया जाता है।

सातवें तार को चिकारी का तार कहते हैं। इस तार का तार सप्तक के सां स्वर से मिलाया जाता है।

तरबदार सितार की 'तरबें' (तार) जिस राग का वादन किया जाता है उसके स्वरों के अनुकूल मिलायी जाती है जिससे कि वादन में माधुर्य एवं गूंज पैदा होती है।

मुख्य बिन्दु

- सितार में छः अथवा सात मुख्य तार होते हैं। ग्यारह से तेरह तक तरब के तार होते हैं। परदों की संख्या 17 से 19 तक होती है।
- पहला मुख्य तार जिसे बाज का तार कहते हैं, मंद्र सप्तक के शुद्ध मध्यम में मिलाया जाता है।
- उस्ताद इमदाद खाँ, उस्ताद इनायत खॉ, पं0 रवि शंकर, उस्ताद विलायत खॉ, पं0 निखिल बनर्जी इत्यादि सितार के प्रमुख कलाकार हैं।
- मैहर घराने के प्रवर्त्तक कलाकार उस्ताद अलाउद्दीन खॉ थे। इमदादखानी बाज के प्रवर्त्तक उस्ताद इमदाद खॉ थे। ज़ाफरखानी बाज के प्रवर्त्तक उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खॉ हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. उस्ताद अलाउद्दीन खां के गुरु थे–
   (अ) उस्ताद हाफिज अली खां (ब) उस्ताद वजीर खां
   (स) रविशंकर (द) अली अकबर खां
2. सितार बजाने के लिए दाहिने हाथ की अंगुली में किस यंत्र को पहना जाता है–
   (अ) मिजराब (ब) जवा (स) चिकारी (द) मनका
3. इमदाद खां का जन्म कहाँ हुआ?
   (अ) इटावा (ब) इन्दौर (स) रामपुर (द) ग्वालियर

उत्तरमाला– (1) ब (2) अ (3) अ

प्रश्न–

1. सितार का आविष्कार किसने किया ?
2. सितार के विभिन्न अंगों के नाम लिखिए
3. पं0 रविशंकर के गुरु कौन थे?
4. उस्ताद विलायत खॉ के पिता का क्या नाम था।
5. सितार के तारों को मिलाने की विधि बताइये।
6. मैहर बाज की विशेषताएँ बताइये।
7. इमदाद खानी घराने की वादन शैली के बारे में बताइये।

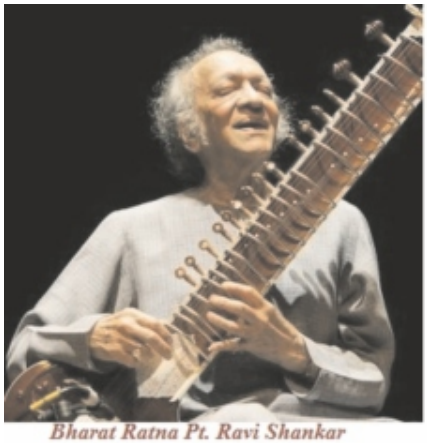
Bharat Ratna Pt. Ravi Shankar
(1920 - 2012)

अभ्यास कार्य

- सितार के विभिन्न अंगों का सचित्र चार्ट बनाकर कक्षा में लगाइये।
- विभिन्न घरानों के प्रमुख कलाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करना एवं उनके रिकार्डिंग सुनना।

अध्याय 10

रागों का शास्त्रीय वर्णन

राग भैरवी

राग भैरवी, भैरवी थाट का ही आश्रय राग है। इसके मूल स्वरूप में रे, ग, ध व नि कोमल है। इस राग की जाति संपूर्ण संपूर्ण है। राग का वादी स्वर मध्यम तथा संवादी स्वर षड़ज है। यदि संगीत के समय सिद्धांत की दृष्टि से देखे, तो चूंकि यह उत्तरांग वादी राग है अतः इसके गायन/वादन का समय प्रातः कालीन ही होना चाहिए परन्तु ऐसी परम्परा ही बन गई है कि किसी भी गोष्ठी या कार्यक्रम का समापन भैरवी राग से ही किया जाता है। भैरवी एक क्षुद्र प्रकृति का राग है। इस राग में वैसे तो ऊपर बताऐं गए स्वरों का प्रयोग होता है। परन्तु व्यवहार में भैरवी राग में समस्त बारह स्वरों का प्रयोग होता है।

थाट – भैरवी

स्वर – रे ग ध नि कोमल म शुद्ध

वर्जित स्वर – कोई नहीं

जाति – संपूर्ण–संपूर्ण

वादी – मध्यम

संवादी – षड्ज

गायन समय – किसी भी समय (कार्यक्रम की समाप्ति के समय)

आरोह – सा <u>रे</u> <u>ग</u>, म प, <u>ध</u> <u>नि</u> सां

अवरोह – सां <u>नि</u> <u>ध</u>, प, म, <u>ग</u>, <u>रे</u>, स

राग भूपाली

राग भूपाली कल्याण थाट जनित राग है। यह भी एक अंत्यत लोकप्रिय राग हैं। इस राग में मध्यम व निषाद स्वर वर्जित है। इसकी जाति औड़व–औड़व है। शेष प्रयुक्त होने वाले सभी स्वर शुद्ध हैं। वादी स्वर गंधार तथा संवादी स्वर धैवत है। मालकौंस राग की भांति यह राग भी प्रारम्भिक शिक्षार्थियों के लिए सरल और सुगम है।

राम भूपाली का समप्रकृति राग देशकार है। दोनों के स्वर समान है परन्तु देशकार में वादी स्वर धैवत तथा संवादी स्वर गांधार है। भूपाली कल्याण अंग का राग है जबकि देशकार बिलावल अंग का राग है।

राग भूपाली के न्यास के स्वर हैं– सा, रे, ग

थाट – कल्याण

वर्जित स्वर – म व नि,

जाति – औड़व–औड़व

स्वर – समस्त प्रयुक्त स्वर शुद्ध है।

वादी – गंधार

संवादी – धैवत

आरोह – सा रे ग, प ध सां

अवरोह – सां ध, प, ग, रे, सा

मुख्य स्वर समुदाय – ग रे सा, ध़ सा रे ग, प ग, ध प, ग रे सा

राग–खमाज

राग खमाज बहुत मधुर एवं लोकप्रिय राग है। यह खमाज थाट का आश्रय राग है। इस राग में दोनों निषाद् प्रयुक्त होते हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं।

आरोह में ऋषभ स्वर वर्जित है। अवरोह संपूर्ण है अतः इस राग की जाति षाड़व–संपूर्ण है। इस राग का वादी स्वर गंधार एवं संवादी स्वर धैवत है गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

खमाज एक अत्यंत लोकप्रिय राग है। शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद, खयाल, गत तथा, तराना इत्यादि के अलावा उपशास्त्रीय संगीत के ठुमरी दादरा, भजन, लोकगीत, ग़जल इत्यादि सभी विधाओं में राग खमाज का प्रचुर प्रयोग होता है।

थाट – खमाज

स्वर – दोनो निषाद शेष स्वर शुद्ध (आरोह में शुद्ध निषाद् तथा अवरोह में कोमल निषाद्)

वार्जित स्वर – आरोह में ऋषभ, अवरोह संपूर्ण

जाति – षाड़व–संपूर्ण

वादी – गंधार

संवादी – धैवत

गायन समय – रात्रि का प्रथम प्रहर

आरोह – सा ग, म प, ध नि सां

अवरोह – सां नि ध, प, म, ग, रे, सा

स्वरूप – नि़ सा, ग म प, ग म ग, रे सा

वृंदावनी सारंग

वृंदावनी सारंग सारंग अंग का एक महत्त्वपूर्ण राग है। इस राग में गंधार तथा धैवत सर्वथा वर्जित है अर्थात् इस राग की जाति औड़व–औड़व हैं।

इस राग में दोनों निषाद् का प्रयोग होता है। आरोह में शुद्ध निषाद् तथा अवरोह में कोमल निषाद। वादी स्वर ऋषभ तथा संवादी पंचम है। गायन/वादन समय दिन का द्वितीय प्रहर है।

थाट – काफी,

स्वर – दोनों निषाद (आरोह में शुद्ध निषाद व अवरोह में कोमल निषाद शेष स्वर शुद्ध)

वार्जित स्वर – गंधार व धैवत

जाति – औड़व–औड़व

वादी – ऋषभ

संवादी – पंचम

गायन/वादन समय – दिन का द्वितीय प्रहर

राग–बिहाग

''कोमल मध्यम तीख सब, चढ़ते रिध को त्याग। गनि वादी संवादि ते, जानत राग बिहाग।।''

राग बिहाग उत्तर भारतीय संगीत का एक सुप्रसिद्ध एवं सर्वप्रिय राग है। यह थाट पद्धति के अनुसार बिलावत थाट् का राग है। इसमें दोनों मध्यम प्रयुक्त होते है। शेष सभी स्वर शुद्ध हैं। इस राग का वादी स्वर गंधार है तथा संवादी निषाद है। बिहाग के आरोह में ऋषभ व धैवत–स्वर वर्जित है तथा अवरोह सम्पूर्ण है।

अतः इसकी जाति औड़व सम्पूर्ण कही जाती है। पुराने जमाने में इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता था परन्तु वर्तमान में तो यह प्रयोग लगभग आवश्यक सा हो गया है। तीव्र मध्यम का प्रयोग हमेशा पंचम के साथ ही होता है। जैसे प ग म ग या मे प ग म ग इसी प्रकार शुद्ध माध्यम का प्रयोग गंधार के साथ होता है जैसे ग म ग सा या ग म प नि सां।

थाट – बिलावल

स्वर – दोनों मध्यम, शेष स्वर शुद्ध

आरोह में रे व ध वर्जित, अवरोह संपूर्ण

जाति – औड़व–संपूर्ण

वादी – गंधार

संवादी – निषाद्

गायन/वादन समय – रात्रि का दूसर प्रहर

राग माल कौंस

''कोमल सब, पंचम ऋषभ, दोऊ बरजित कीन्हा।
स म संवादी ते, मालकंस को चीन्ह''।

राग मालकोंस भारतीय संगीत के सबसे प्रसिद्ध रागों में से है। यह भैरवी थाट से उत्पन्न राग है। इस राग में ऋषभ और पंचम दोनों स्वर वर्जित है।

अतः इसकी जाति औड़व–औड़व है। गंधार, धैवत और निषाद् कोमल हैं, मध्यम शुद्ध है। इस राग का वादी स्वर मध्यम तथा संवादी स्वर षड्ज है। गायन समय शास्त्रोक्त सिद्धांत के आधार पर रात्रि का तीसर प्रहर है, परन्तु इसकी लोकप्रियता इतनी अधिक है कि इसे रात्रि के किसी भी वक्त गाया बजाया जाता है। यह एक गंभीर प्रकृति का राग है।

थाट – भैरवी

वर्जित स्वर – रे व प

विकृत स्वर – ग, ध, नि कोमल शेष स्वर शुद्ध

जाति – औड़व–औड़व

वादी – मध्यम

संवादी – षड्ज

गायन समय – रात्रि का तृतीय प्रहर

आरोह – नि सा ग, म ध नि सां

अवरोह – सां नि ध, म, ग, सा

मुख्य बिन्दु

- भैरवी राग भैरवी थाट का आश्रय राग है। इसमें रे ग ध नी कोमल है। मध्यम वादी तथा षड्ज संवादी है। अतः गायन समय प्रातः काल शास्त्रोक्त है परन्तु ऐसी परंपरा है कि किसी भी समय कार्यक्रम के अंत में भैरवी राग गाया जा सकता है।

- राग बिहाग उत्तर भारतीय संगीत का एक सुप्रसिद्ध एवं सर्वप्रिय राग है। यह थाट् पद्धति के अनुसार बिलावत थाट् का राग है। इसमें दोनों मध्यम प्रयुक्त होते है। शेष सभी स्वर शुद्ध है। इस राग का वादी स्वर गंधार है तथा संवादी निषाद् है। बिहाग के आरोह में ऋषभ व धैवत स्वर वर्जित है तथा अवरोह सम्पूर्ण है।
- भूपाली का सम्प्रकृति राग देशकार है । भूपाली के वादी संवादी ग ध हैं एवं देशकार के वादी संवादी ध ग है। भूपाली कल्याण थाट जनित है जबकि देशकार बिलावल थाट जनित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. नि॒ प, म रे, नि॒ सां स्वर समूह किस राग का है–
   (अ) माल कौंस (ब) वृन्दावनी सारंग (स) भैरवी (द) बिहाग
2. भैरवी के वादी संवादी है
   (अ) सा, म (ब) म, सा (स) सा, प (द) प, सा
3. बिहाग कौन से थाट का राग है–
   (अ) खमाज (ब) कल्याण (स) बिलावल (द) मारवा

उत्तरमाला– (1) ब (2) ब (3) स

प्रश्न–

1. खमाज थाट् का आश्रय राग कौन सा है?
2. राग बिहाग के वादी संवादी स्वर क्या हैं?
3. ध॒ नी॒ ध॒ म ग॒ म ग॒ सा यह स्वर समुदाय किस राग का है?
4. प ध॒ प, ग॒ म गरे सा इस स्वरावली से राग को पहचानिए।
5. राग भूपाली की पकड़ लिखिए।
6. राग वृन्दावनी सारंग का परिचय लिखिए।
7. राग भैरवी का संपूर्ण विवरण दीजिए।

अभ्यास कार्य

- सभी थाटों के स्वरों का अध्ययन करना तथा उनको गाने एवं बजाने का अभ्यास करना।
- पाठ्यक्रम की रागों के प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा बजाए रिकार्ड सुनना।

रागों की चित्रात्मक अभिव्यंजना

अध्याय 11

अ. ताल परिचय
ब. स्वर लिपिबद्धगत

अ. ताल परिचय

झपताल

झपताल में मात्रा, दस भाग चार, पहले और तीसरे भाग में दो–दो मात्रा दूसरे और चौथे भाग में तीन–तीन मात्रा। एक, तीन और आठ पर ताली छः पर खाली।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ठेका	धीं	ना	धीं	धीं	ना	तीं	ना	धीं	धीं	ना
चिह्न	x		2			0		3		
दुगुन	धींना	धींधी	नातिं	नाधीं	धींना,	धींना	धींधी	नातिं	नाधीं	धींना
चिह्न	x		2			0		3		

एक ताल

एकताल में मात्रा बारह, भाग छः प्रत्येक भाग में दो दो मात्रा एक, पाँच, नौ और ग्यारह पर ताली, तीन और सात पर खाली।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
चिह्न	x		0		2		0		3		4	
दुगुन	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना,	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना
चिन्ह	x		0		2		0		3		4	

चौताल

चौताल में मात्रा बारह, भाग छः प्रत्येक भाग में दो–दो मात्रा। एक, पांच, नौ और ग्यारह पर ताली तीन और सात पर खाली है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
चिह्न	x		0		2		0		3		4	
दुगुन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिटकत	गदिगन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिटकत	गदिगन
चिह्न	x		0		2		0		3		4	

ताल–धमार

धमार ताल में मात्रा– चौदह, भाग चार, पहले भाग में पाँच मात्रा, दूसरे भाग में दो मात्रा, तीसरे भाग में तीन मात्रा और चौथे भाग में चार मात्रा। एक, छः और ग्यारह पर ताली आठ पर खाली है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
ठेका	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
चिह्न	x					2		0			3			
दुगुन	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ
चिह्न	x					2		0			3			

पंजाबी–ताल

पंजाबी ताल में मात्रा–सोलह, भाग–चार होते है। प्रत्येक भाग में चार–चार मात्रा होती है। एक, पांच तथा तेरह पर ताली और नौ पर खाली।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	ऽधी	ऽक	धा	धा	ऽधी	ऽक	धा	ता	ऽती	ऽक	ता	धा	ऽधी	ऽक	धा
x				2				0				3			

दुगन

धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	ताऽती	ऽकता	धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	ताऽती	ऽकता	धाऽधी	ऽकधा
x				2				0				3			

ताल–त्रिताल

त्रिताल में मात्रा सौलह, भाग चार होते है। प्रत्येक भाग में चार–चार मात्रा होती है। एक पांच तेरह पर ताली, नौ पर खाली है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
x				2				0				3			

दुगन

धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
x				2				0				3			

ब. स्वर–लिपिबद्धगत

राग मालकौंस

मसीतखानीगत, विलंबित त्रिताल

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											गम	ग	सासा	नि़–सासा	धनि़
											दिर	दा	दिर	दा–दिर	दारा
सा	म	म	मग	म	निनि़	ध़	म	ग़	ग़	सा	गम	ग़	सासा	नि़	सा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
X				2				0				3			
ध़	निनि़	ध़	म़	ध़	निनि़	सा	म	ग़	ग़	सा					
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0							

अंतरा

											मम	ग़	मम	ध़	नि़
											दिर	दा	दिर	दा	रा
सां	सां	सां	सांसां	नि़	सांसां	गं	सां	ध़	नि़	सां	गंमं	गं	सांसां	नि़	सां
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
X				2				0				3			
नि़	धध	म	ग़	म	धनि़	ध़	म	ग़	ग़	सा					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0							

राग–वृंदावनी–सारंग

रजारवानीगत (त्रिताल)

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								सां	निनि़	पप	मम	रे–	रेनि़	–नि़	सा
								दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा
								0				3			
रे	–	म	प	नि़	नि़	प	–	प	मम	रे	सा	नि़	सा सा	रे	सा
दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
X				2											
नि़–	नि़म़	–म़	प़	नि़	सासा	रे	सा								
दो	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा								
X				2											

अंतरा

								रे	मम	रे	म	–	पप	नि	नि
								दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा
								0				3			
सां	–	सां	सां	नि	रें	सां	–	नि	सांसां	रेंरें	मंमं	रें–	रेंनि	–नि	सां
दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा
x				2				0				3			
नि	पप	मम	पप	म–	मरे	–रे	सा								
दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	र	दा								
x				2				0				3			

राग खमाज

रजाखानीगत तीन ताल

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
						पप	धध	म–	मग	–रे	ग	नि	ससं	ग	म
						दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा
x				2				0				3			
प	–	प	म	प	–	म	ग	म	निनि	धध	निनि	प	धध	नि	सां
दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
ग				2				0				3			
नि	धध	प	म	ग	म										
दा	दिर	दा	रा	दा	रा										
x				2											

अंतरा

						म	ग	म	निनि	धध	निनि	प	धध	नि	नि
						दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
x				2				0				3			
सां	–	सां	नि	सां	–	सां	नि	सां	गंगं	रेंरें	मंमं	गं–	गंरे	–रें	सां
दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा
x				2				0				3			
नि	धध	प	म	ग	म										
दा	दिर	दा	रा	दा	रा										
x				2											

राग बिहाग

रजाखानीगत तीन ताल

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								सा	निनि	सा	ग–	–ग	ग	म	ग
								दा	दिर	दा	दो	ऽर	दा	दा	रा
x				2				0				3			
प	मम	गग	मम	ग–	गसा	–नि	सा	प़	निनि	सा	नि़	सा	गग	म	ग
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
x				2				0				3			
पम	गम	पनि	सां	पम	गम	गरे	सा								
दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दिर	दा								
x				2											

अंतरा

								प	मम	प	ग	–	मम	प	नि
								दा	दिर	दा	दा	ऽ	दिर	दा	रा
								0				3			
सां	–	सां	सां	नि	नि	सां	–	नि	सांसां	गंगं	मंमं	गं–	गंसां	–नि	सां
दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
x				2				0				3			
सांनि	धप	मप	गम	पम	गम	गरे	सा								
दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दा								
x				2											

महान् संगीतज्ञ बाबा अलाउद्दीन खां– तबला, वायलिन, सरोद, पखावज, सुरसिंगार वादन करते हुए

राग भैरवी

रजाखानीगत तीन ताल

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
						गग	मम	रे–	रेस	–स	रेरे	नि	सस	ग	म
						दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा
प	धध	प	म	ग	स	गग	मम	प	संसं	निनि	धध	प–	पग	–ग	म
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा
X				2				0				3			
प	धध	प	म	ग	स										
दा	दिर	दा	रा	दा	रा										
X				2											

अंतरा

								ग	मम	ध	नि	सं	–	सं	सं
								दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा
सं	रेंरें	गंगं	मंमं	रें–	रेंनि	–नि	सं	प	संसं	निनि	धध	प–	पग	–ग	म
दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दिर	दिर	दो	रदा	ऽर	दा
X				2				0				3			
प	धध	प	म	ग	स										
दा	दिर	दा	रा	दा	रा										
X				2											

निम्न वाद्यों के नाम बताइये।

राग भूपाली

मसीतखानीगत तीन ताल

स्थाई

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											गग	रे	सस	ध़	सरे
											दिर	दा	दिर	दा	रा
								0				3			
ग	ग	ग	रेरे	ग	पप	ध	प	ग	रे	स	गग	रे	सस	ध़	प़
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
X				2				0				3			
ध़	सस	रे	स	ग	पप	ध	प	ग	रे	स					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0							

अंतरा

											पप	ग	पप	ध	ध
											दिर	दा	दिर	दा	रा
								0				3			
सं	सं	सं	संसं	ध	संसं	रें	सं	गं	रें	सं	गंगं	रें	संसं	ध	प
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
X				2				0				3			
ध	पप	ग	रे	ग	पप	ध	प	ग	रे	स					
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0							

मुख्य बिन्दु

- मसीतखानीगत अधिकतर विलंबित त्रिताल में निबद्ध होती हैं और गत का मुखडा 12 वीं मात्रा से शुरू होता है। रजाखानी गत द्रुत त्रिताल में निबद्ध होती हैं।
- प्रत्येक ताल की पहली मात्रा सम कहलाती है। प्रत्येक ताल में विभाग की संख्या तथा ताली और खाली की संख्या निश्चित होती है।
- झपताल 10 मात्रा की ताल है। इसमें क्रमशः 2,3,2,3 मात्राओं के चार विभाग हैं। पहली तीसरी और आठवीं मात्रा में ताली तथा छठी मात्रा में खाली होता है।
- धमार 14 मात्रा की ताल है। इसमें क्रमशः 5,2,3,4 मात्राओं के चार विभाग हैं। पहली छठी और ग्यारहवीं मात्रा में ताली तथा आठवीं मात्रा में खाली होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. झपताल का मात्रा विभाजन है–

   (अ) 2, 3, 2, 3 (ब) 3, 2, 3, 2 (स) 2, 2, 3, 3 (द) 3, 3, 2, 2

2. दिरदा, दि र, दा रा दा दा रा ये बोल कौन सी गत के है–

   (अ) रज़ाखानी (ब) मसीत खानी (स) अमीर खानी (द) ज़ाफर खानी

3. 14 मात्रा की ताल है–

   (अ) झपताल (ब) पंजाबी (स) धमार (द) चौताल

उत्तरमाला– (1) अ (2) ब (3) स

प्रश्न–

1. चौताल कितनी मात्रा की ताल है ?
2. एक ताल में कितने विभाग हैं?प्रत्येक विभाग कितनी कितनी मात्रा का है ?
3. पंजाबी त्रिताल के बोल (ठेका) लिखिए।
4. धमार ताल की ठाह एवं दुगुन लिखिए
5. अपने पाठ्यक्रम की किसी एक राग में विलंबित (मसीतखानी) गत स्थाई, अंतरा व दो तोड़ों सहित लिखिए।
6. अपने पाठ्यक्रम की किसी एक राग में द्रुत (रज़ाखानी) गत स्थाई, अंतरा एवं दो तोड़ों सहित लिखिए।

अभ्यास कार्य

- पाठ्यक्रम की तालों के ठेके तबले पर बजाने का अभ्यास करना।
- त्रिताल के अतिरिक्त अन्य किसी ताल में निबद्ध कोई गत का अभ्यास करना।

अध्याय 12

संगीतज्ञों का जीवन–परिचय

उस्ताद विलायत खाँ

सुप्रसिद्ध सितार वादक उस्ताद विलायत खाँ का जन्म 28 अगस्त 1928 गौरीपुर बंगाल में हुआ था। उस्ताद विलायत खाँ की पिछली कई पुश्ते सितार वादन से जुड़ी हुई थी। उनके दादा उस्ताद इमदाद खाँ तथा पिता उस्ताद इनायत खाँ की गिनती बेजोड़ सितार वादकों में की जाती है। उस्ताद इनायत खॉ ने ही सितार को परिष्कृत करने में बड़ी भूमिका निभाई है। उन्होंने ही प्रसिद्ध सितार निर्माता कनाई लाल के साथ मिलकर सितार में तरब के तारों की शुरूआत की थी ।

उस्ताद विलायत खाँ ने अपनी सूझबूझ और कठिन परिश्रम से सितार वादन की अपनी अलग शैली विकसित की है। इस शैली में गायकी अंग का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस गायकी अंग में खयाल शैली के साथ साथ उपशास्त्रीय गायन शैलियों जैसे ठुमरी, दादरा, कजरी आदि का प्रभाव दिखाई देता है।

उस्ताद विलायत खाँ की आरंभिक शिक्षा पिता इनायत खाँ से ही हुई परन्तु जब वे 12 साल के थे तभी इनायत खाँ का निधन हो गया। बाद में इन्होंने अपने नाना उस्ताद बन्दे हसन खाँ जो नामी गायक थे तथा मामा उस्ताद मोहम्मद खाँ से तालीम ली। आरंभ में उनका झुकाव गायन की ओर होगया था। परंतु अपनी माँ के आग्रह पर उन्होंने अपनी खानदानी परंपरा को अपनाया और पुनः सितार को ही अपना माध्यम बनाया। उन्होंने सितार में कुछ परिवर्तन भी किये जैसे दो जोड़े के तारों के स्थान पर एक ही जोड़े का तार प्रयोग करना शुरू कर दिया तथा गंधार पंचम के दो तारों का प्रयोग आरंभ किया ।

उस्ताद विलायत खाँ ने कुछ फिल्मों के लिए संगीत निर्देशन का कार्य भी किया है। ये हैं सत्यजीत राय की 1958 में बनी बांगला फिल्म जलसाघर मर्चेंट आइवरी प्रॉडक्शन की 1969 में बनी फिल्म गुरू तथा 1976 मे बनी हिंदी फिल्म कादम्बरी ।

उनकी कला साधना के लिए राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने उन्हें आफताब–ए–सितार सम्मान प्रदान किया। भारत सरकार ने उन्हें 1964 मे पद्मश्री तथा 1968 में पद्म भूषण से सम्मानित किये जाने की घोषणा की परन्तु दोनों ही अवसरों पर उन्होंने यह सम्मान प्राप्त करने से इनकार कर दिया। उनका मानना था कि उन्हें ये दोनों सम्मान उनके योगदान के लिए कम तथा देर से दिये गए हैं।

उस्ताद विलायत खाँ ने दो विवाह किये । उनके दो पुत्र हैं –शुजाअत खाँ तथा हिदायत खाँ और दो पुत्रियां हैं – ज़िला खान तथा यमन खान। दोनों पुत्र उत्कृष्ट सितार वादक हैं। पुत्री ज़िला खाँ गायिका हैं। लगभग पाँच दशकों तक पूरे विश्व में अपने सितार का जादू बिखेरने वाले उस्ताद विलायत खान को फेंफडों के केंसर ने अपनी चपेट में ले लिया। इलाज के लिए उन्हें मुम्बई के जसलोक अस्पताल में भर्ती करवाया गया यही पर 13 मार्च 2004 के दिन उन्होंने अन्तिम सांस ली।

उस्ताद अली अकबर खान

प्रख्यात सरोद वादक उस्ताद अली अकबर खान का जन्म 14 अप्रेल 1922 को बांग्लादेश के शिवपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम अलाउद्दीन खान तथा माता का नाम मदीना बेगम था। इनके पिता उस्ताद अलाउद्दीन खान एक विख्यात संगीतज्ञ एवं संगीत गुरु थे। उस्ताद अलाउद्दीन खान प्रमुख रूप से एक सरोद वादक थे परन्तु ऐसा कोई भी वाद्य नहीं जो वे न बजा सकते हो।

उस्ताद अली अकबर खाँ ने अल्पायु से ही संगीत की शिक्षा अपने पिता की देखरेख में आरंभ कर दी थी। उन्होंने अपने चाचा

उस्ताद आफताबुद्दीन खान से तबला भी सीखा। 13 वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी पहली प्रस्तुति दी। 22 वर्ष की उम्र में वे जोधपुर राजदरबार में संगीतकार नियुक्त हुए। महाराजा हनुमन्त सिंह इनसे इतने प्रभावित थे कि प्रसिद्ध उम्मेद भवन पैलेस में बने ऑडिटोरियम का नाम ही Ali Akbar Hall रख दिया।इन्होंने पूरे भारत में अपने कार्यक्रम दिये। 1955 में अमेरिकी टेलीविजन पर एलिएस्टर कुक के ओमनीबस कार्यक्रम में प्रस्तुति देने वाले वे प्रथम भारतीय बने। भारतीय संगीत के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से उन्होंने 1956 कलकत्ता में अली अकबर कॉलेज ऑफ म्यूजिक की स्थापना की।

दो साल बाद ही बर्कले केलिफॉर्निया में भी इसी की एक शाखा भी स्थापित हुई। 1968 में यह अपने वर्तमान स्थान सेन राफेल केलिफॉर्निया में स्थानांतरित हो गया । तब से ही खाँ साहब अमेरिका ही बस गए। 1985 में अली अकबर कॉलेज ऑफ म्यूजिक की एक शाखा बेसिल, स्विटजरलैण्ड में भी स्थापित की जो उनके स्विस शिष्य केन जुकरमैन देखते है। वे अल्प समय में ही एक राग के स्वरूप को प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे, जिसके कारण इनके 78 आरपीएम के छोटे रिकार्ड खूब सफल हुए। उनकी लंबी मंचीय प्रस्तुतियां सामान्यतया शान्त एवं गंभीर आलाप और जोड़ के साथ शुरू होकर द्रुत गत और झाले की ओर बढ़ती हैं जो सेनिया बीनकार शैली की विशेषता है। साथ ही दो वाद्यों (सरोद एवं तबला या सरोद व सितार) के बीच होने वाले सवाल जवाब को प्रस्तुत करना उनकी वादन की मुख्य विशेषता है।

खान साहब ने कई जुगलबंदियों मे भाग लिया और प्रसिद्धि पाई । उसमें सबसे प्रसिद्ध जुगलबंदी उनके बहनोई और विश्वविख्यात सितार वादक पं0 रविशंकर एवं प्रसिद्ध सितार वादक पं0 निखिल बनर्जी प्रमुख हैं। वॉयलिन वादक एल सुब्रमण्यम और सितार वादक उस्ताद विलायत खान के साथ भी इनके कई कार्यक्रम हुए हैं।

खान साहब ने कुछ फिल्मो में संगीत निर्देशन का कार्य भी किया। चेतन आनंद की आंधियां, मर्चेंट आइवरी की हाउस होल्डर और क्षुधित पाषाण (Hungry Stones) सत्यजीत राय की देवी, बर्नार्डो बर्तोलूची की लिटिल बुद्धा प्रमुख हैं।

उस्ताद अली अकबर खाँ साहब को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं। 1988 में भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण, 1991 में मैक आर्थर जीनियस ग्रांट से 1997 में कला के क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे बड़ा सम्मान नेशनल हेरिटेज फैलोशिप भी दी गई। एकाधिक बार वे ग्रेमी पुरस्कार के लिए नामित भी हुए है।

किडनी की लंबी बीमारी से जूझते हुए 9 जून 2009 के दिन सेन फ्रांसिस्को कैलिफोर्निया में उनका निधन हुआ।

उ.अल्लारक्खा उ.अली अकबर खॉ जॉर्ज हैरिसन पं.रविशंकर उ.बिस्मिल्लाह खॉ

डॉ0 एन0 राजम

हिन्दुस्तानी संगीत मे वाद्य वादन के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है– वॉयलिन वादिका पद्म विभूषण डॉ0 (श्रीमती) एन0 राजम। डॉ0 (श्रीमती) एन0 राजम का जन्म 1938 में एर्नाकुलम केरल के एक प्रतिष्ठित संगीतज्ञ परिवार मे हुआ। उनके पिता विद्वान ए0 नारायण अइयर कर्नाटक संगीत के एक प्रतिष्ठित कलाकार थे। उनके भाई टी0 एन0 कृष्णन भी कर्नाटक शैली के एक अत्यंत प्रतिष्ठित वॉयलिन वादक हैं।

डॉ0 एन0 राजम की संगीत की आरंभिक शिक्षा कर्नाटक शैली में अपने पिता के सान्निध्य में ही हुई। इनकी शिक्षा एम0 सुब्रमण्यम अइयर से भी हुई। ख्यातनाम संगीतज्ञ पं0 महादेव मिश्रा से भी इन्होंने संगीत की शिक्षा ली।

एन0 राजम ने तीन वर्ष की आयु से ही वॉयलिन बजाना आरंभ कर दिया था। नौ वर्ष की आयु तक ये एक प्रदर्शक कलाकार के रूप में अपने पिता के साथ अपनी मंचीय प्रस्तुतियां देना आरंभ कर चुकी थी। तत्पश्चात् संगीत की उत्तर भारतीय परंपरा के अनुसार राग विस्तार एवं राग चलन की गहान शिक्षा पं0 ओमकारनाथ ठाकुर की देखरेख मे हुई। इन्होंने बी0ए0 तथा एम0 ए0 (संस्कृत) की परीक्षाएं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक के साथ उत्तीर्ण की। इन्होंने अपनी बी0म्यूज की परीक्षा गंधर्व महाविद्यालय मण्डल इलाहाबाद से तथा एम0म्यूज0 की परीक्षा प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद से उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् अपनी पीएच0डी0 बनारस हिन्दू विश्वविद्याल से की। ठसके बाद डॉ0 एन0 राजम ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में संगीत विभाग में प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवाएं देना आरंभ की। लगभग 40 वर्षो तक वे इस विश्वविद्यालय में रही। इस दौरान वे संगीत विभाग की विभागाध्यक्ष और डीन भी रहीं।

उनके प्रमुख शिष्यों में उनकी पुत्री संगीता शंकर एवं संगीता शंकर की दोनों पुत्रियां रागिनी और नन्दिनी, उनकी भतीजी कला रामनाथ आदि प्रमुख हैं। इन्हें राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं।

- पद्म श्री –1984
- संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार –1990
- पद्म भूषण –2004
- संगीत नाटक अकादमी रत्न सदस्यता (फैलोशिप) –2012

पंडित हरिप्रसाद चौरसिया

प्रसिद्ध बांसुरी वादक पद्म विभूषण पंडित हरि प्रसाद चौरसिया का जन्म 1 जुलाई 1938 को इलाहाबाद में हुआ। इनके पिता पहलवान थे। जब हरि जी 5 वर्ष के थे तो इनकी माता का देहान्त हो गया। इनका बचपन बनारस में बीता। उनकी शुरूआत एक तबला वादक के रूप में हुई । पं0 हरि प्रसाद चौरसिया ने अपने पिता की मर्जी के बिना अपने पड़ौसी पं0 राजाराम से संगीत सीखना आरंभ कर दिया था। बाद में बनारस के पं0 भोलानाथ प्रसन्ना से इन्होने बांसुरी की शिक्षा ली।

तत्पश्चात् कुछ बरसों तक इन्होंने आकाशवाणी के कटक केन्द्र में बांसुरी वादक के रूप में कार्य किया। बाद में ये कटक से मुम्बई आ गए और फिल्म संगीत से जुड़ गए। इन्होंने शंकर जयकिशन, एस0 डी0 बर्मन, आर0 डी0 बर्मन, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल आदि प्रसिद्ध संगीतकारों के गीतों में बांसुरी वादन किया है। बंबई में ही ये बाबा अलाउद्दीन खाँ की सुयोग्य पुत्री सुरबहार वादिका अन्नपूर्णा देवी की शरण में गए, जो उस समय एकान्तवास कर रहीं थी और सार्वजनिक रूप से मंच प्रदर्शन करना छोड़ चुकी थी। अन्नपूर्णा देवी के शिष्यत्व से हरि जी की प्रतिभा मे निखार आया और उनके संगीत को जादुई स्पर्श मिला।

पंडित हरिप्रसाद चौरसिया ने बांसुरी के ज़रिये शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने का काम तो किया ही है साथ ही संतूर वादक पं0 शिव कुमार शर्मा के साथ मिलकर शिव–हरि नाम से कुछ हिन्दी फिल्मों में मधुर संगीत दिया। इस जोड़ी की फिल्में हैं– सिलसिला, विजय, फासले, चांदनी, साहिबां, डर, लम्हें ।

पंडित हरिप्रसाद चौरसिया को कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त हुए हैं। कुछ प्रमुख हैं–

- फ्रांस सरकार द्वारा उन्हें नाइट आफ दि ऑर्डर ऑफ आर्ट्स एंड लैटर्स सम्मान
- संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार 1984
- कोणार्क सम्मान 1992
- पद्म भूषण 1992
- पद्म विभूषण
- हाफिज अली खान पुरस्कार

पंडित विश्वमोहन भट्ट

मोहन वीणा के जनक ग्रेमी पुरस्कार से सम्मानित पंडित विश्व मोहन भट्ट का जन्म सन् 1952 में जयपुर के एक प्रतिष्ठित संगीत परिवार में हुआ था। इनके पिता पं0 मनमोहन भट्ट एवं माता श्रीमती चंद्रकला भट्ट जाने माने संगीतज्ञ थे। इनके बड़े भाई पं0 शशि मोहन भट्ट सितार के एवं महेन्द्र भट्ट वॉयलिन के जाने माने कलाकार रहे हैं।

यथा नाम तथा गुण की कहावत को चरितार्थ करते हुए पं0 विश्वमोहन भट्ट ने अपनी कला से पूरे विश्व को मोह लिया है और अपनी मेहनत लगन और प्रतिभा के बल पर अपना नाम देश के अग्रणी कलाकारों में शुमार करने में सफलता पाई है।

संगीत की आरंभिक शिक्षा इन्होंने अपने माता–पिता तथा बड़े भाई पं0 शशि मोहन भट्ट से प्राप्त की। तत्पश्चात् ये अग्रणी संगीतज्ञ भारत रत्न पं0 रवि शंकर के शिष्य बने। विश्व मोहन भट्ट ने बरसों के शोध और परिश्रम से पश्चिमी वाद्य हवाइयन गिटार को भारतीय संगीत के अनुकूल बनाने में सफलता हासिल की है। इन्होंने गिटार में अतिरिक्त 14 तार और लगाकर इस पश्चिमी वाद्य को पूर्णरूप से भारतीय शास्त्रीय संगीत के अनुरूप ढाल दिया। अपने इस वाद्य को इन्होंने मोहन वीणा नाम दिया और वर्तमान में विश्व मोहन भट्ट और मोहनवीणा एक दूसरे के पर्याय बन गए है।

विश्व मोहन भट्ट ने अपने अथक परिश्रम से अपनी अनूठी वादन शैली विकसित की है। इसमें गायकी अंग और तंत्रकारी अंग का अत्यंत कुशल समावेश है। राग की शुद्धता, चमत्कारी तिहाइयाँ, लय के विभिन्न प्रकार और अत्यंत द्रुत लय में झाला इत्यादि इनके वादन की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

एक सफल मोहन वीणा वादक होने के साथ–साथ उन्होंने विश्व के कई प्रख्यात कलाकारों के साथ फ्यूजन के अत्यंत सफल प्रयोग भी किये हैं। उन्होंने चीनी, अरबी, जापानी अमेरिकी कलाकारों के साथ जुगलबंदी के कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये हैं तथा इनके इस प्रकार के संगीत के कई रिकॉर्ड भी जारी किये गए हैं। अमेरिकी गिटार वादक राइ कूडर के साथ उनका एलबम "ए मीटिंग बाई द रिवर" इतना प्रसिद्ध हुआ कि 1994 में इस एलबम को विश्व का सबसे प्रतिष्ठित ग्रेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

इसके अलावा वे एक अत्यंत कुशल संगीत रचनाकार भी हैं। इनके संगीत निर्देशन में प्रतिष्ठित **रिकॉर्ड कंपनी म्यूजिक टुडे** ने एक एलबम "म्यूजिक फॉर रिलेक्सेशन" भी जारी किया था जो अत्यंत सफल रहा था। इसके अतिरिक्त कविता कृष्णमूर्ति और ए0 हरिहरन द्वारा गाए एलबम "मेघदूत" का संगीत निर्देशन भी इन्हीं के द्वारा किया गया था। मणिरत्नम द्वारा निर्मित तमिल एवं हिन्दी में बनाई गई द्विभाषी फिल्म में ए आर रहमान के साथ भी इन्होंने काम किया है।

पं0 विश्व मोहन भट्ट को उनके द्वारा संगीत के क्षेत्र में किए गए कार्यों के लिए बहुत से सम्मान और पुरस्कार भी प्रदान किये गए हैं। कुछ प्रमुख निम्न हैं–

- 1992 महाराणा मेवाड़ पुरस्कार
- 1994 ग्रेमी पुरस्कार
- 1994 राजस्थान सरकार द्वारा 100000 रुपये का विशेष पुरस्कार
- 1999 केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार
- 2002 पद्म श्री

मुख्य बिन्दु

- उस्ताद विलायत खाँ इमदाद खानी घराने के प्रमुख सितार वादक थे। उनके पिता का नाम उस्ताद इनायत खाँ था। उनका जन्म 28 अगस्त 1928 को गौरीपुर, बंगाल में हुआ था। उनकी मृत्यु 13 मार्च 2004 को मुम्बई में हुई।
- मैहर घराने के प्रमुख सरोद वादक पद्मविभूषण उस्ताद अली अकबर खाँ, बाबा अलाउद्दीन खाँ के पुत्र थे। इनका जन्म 14 अप्रेल 1922 को बांग्लादेश में तथा मृत्यु 9 जून 2009 को सेन फ्रांसिस्को में हुई।
- प्रसिद्ध बांसुरी वादक पद्म विभूषण पं0 हरिप्रसाद चौरसिया का जन्म 1 जुलाई 1938 को इलाहाबाद में हुआ था।
- विश्व मोहन भट्ट ने पश्चिमी वाद्य हवाइयन गिटार को भारतीय संगीत के अनुकूल बनाने में सफलता हासिल की है। इन्होंने गिटार में अतिरिक्त 14 तार और लगाकर इस पश्चिमी वाद्य को पूर्णरूप से भारतीय शास्त्रीय संगीत के अनुरूप ढाल दिया। अपने इस वाद्य को इन्होंने मोहन वीणा नाम दिया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. उस्ताद अली अकबर खाँ का जन्म कब हुआ–

   (अ) 14 अप्रेल 1922 (ब) 28 दिसम्बर 1915

   (स) 9 अगस्त 1920 (द) 3 जनवरी 1928

2. पं. हरिप्रसाद चौरसिया किन के शिष्य थे–

   (अ) पन्नालाल घोष (ब) उस्ताद अलाउद्दीन खाँ

   (स) अन्नपूर्णा देवी (द) रविशंकर

3. एन. राजम के गुरु कौन थे?

   (अ) पं. वी. जी. जोग (ब) डी. के. दातार

   (स) डी.वी. पलुस्कर (द) ओमकारनाथ ठाकुर

उत्तरमाला– (1) अ (2) स (3) द

भारत रत्न उ. बिस्मिल्लाह खां

प्रश्न–

1. उस्ताद विलायत खाँ के गुरू कौन थे ?
2. उस्ताद विलायत खाँ की मृत्यु कब हुई?
3. उस्ताद अली अकबर खाँ द्वारा स्थापित संगीत शिक्षण संस्थान का नाम क्या है ?
4. डॉ0 एन0 राजम कौन से विश्व विद्यालय में प्रोफेसर रहीं हैं ?
5. पं0 विश्व मोहन भट्ट को किस एलबम के लिए ग्रेमी पुरस्कार प्रदान किया गया था?
6. पं0 हरि प्रसाद चौरसिया ने किन किन फिल्मों के लिए संगीत निर्देशन का काम किया है?

अभ्यास कार्य

- विभिन्न वाद्यों के वर्तमान में प्रसिद्ध कलाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करना तथा उनके चित्र अपनी कक्षा में लगाना सरोद बांसुरी मोहन वीणा व वॉयलिन की बनावट वादन विधि के बारे में जानकारी प्राप्त करना

(खण्ड–इ)

तालवाद्य : तबला/पखावज

अध्याय 13

अ. परिभाषाएँ
ब. लय एवं लयकारी

अ. परिभाषाएं

जरब

जरब या जुब का अर्थ बोल ही होता है इसके अन्तर्गत किसी कायदा या बाँट में प्रयुक्त वर्णों पर अलग–अलग जोर देकर उसमें लयात्मक, वर्णात्मक, भेद उत्पन्न किया जाता है। एक ही बोल में बिना किसी परिवर्तन के केवल आघात (वजन) द्वारा उसे नया रंग देकर गुणी कलाकार लोग श्रोताओं को आनन्दित, चमत्कृत करते हैं। संक्षेप में ताल के सम के अलावा किसी भी बोल पर सम की तरह ही जोर देकर वादन किया जाता है तो अवनद्ध वाद्यों में यह क्रिया 'जरब' की क्रिया कहलाती है। उदाहरण स्वरूप यदि हम त्रिताल का वादन कर रहे हैं–

(1) धा धीं धीं धा धा धीं धीं धा धातिं तिं ता ता धीं धीं धा

इसमें हर विभाग की पहली मात्रा पर बल दिया गया है – फिर बाद में –

(2) धा धीं धीं धाधाधीं धीं धा धा तिं तिं ता ता धीं धीं धा

इसमें विभाग की दूसरी मात्रा पर बल देने के कारण इसका स्वरूप बदल गया।

जरब की क्रिया में सम के समान अधिक समय तक ठहराव नहीं किया जाता है। यह क्रिया क्षण भर के लिए कभी–कभी आवर्तन में वैचित्र्य पैदा करने के लिए की जाती है।

क्रिया

काल के गिनने के क्रम को क्रिया कहते है। ताल की आनन्दजनक शक्ति क्रिया में है दोनों हाथ के संयोग से शब्द पैदा करना, अँगुलियों को गिनना आदि क्रिया कहलाती है, संक्षेप में हाथ से ताल प्रदर्शन की रीति क्रिया कहलाती है। क्रिया प्रधानतः मार्गी तथा देशी दो प्रकार की होती है। इन दोनों के दो दो भाग– (1) निःशब्द (2) सशब्द और हो जाते है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

(क) मार्ग सशब्द क्रियाएँ :

(1) ध्रुवा – चुटकी बजाना

(2) सम्यक् या शपा–दाएँ हाथ पर बाएँ हाथ से आघात करना

(3) ताल – बाएँ हाथ पर दाएँ से आघात करना

(4) सन्निपात – दोनों हाथों से परस्पर आघात करना।

(ख) मार्ग निःशब्द क्रियाएँ

(1) आवाप – हाथ को ऊपर उठाकर अंगुलियों को बंद करना

(2) निष्क्राम – अंगुलियों को खोलना

(3) विक्षेप–दाहिनी ओर अंगुलियों को हिलाना।

(4) प्रवेश – हाथ को नीचे की ओर लाकर बाईं ओर हिलाना।

(ग) देशी सशब्द क्रिया

(1) ध्रुव क्रिया कोई भी सशब्द क्रिया करना।

(घ) देशी निःशब्द क्रियाएँ

(1) सर्पिणी – हाथ को दाहिनी ओर ले जाना।

(2) कृष्य – हाथ को बाई ओर ले जाना।

(3) पद्मिनी– हाथ को ऊपर से नीचे की ओर ले जाना।

(4) विसर्जित – हाथ को बाहर की ओर ले जाना।

(5) विक्षिप्त – अँगुलियों को बंद करना।

(6) पताक – हाथ को ऊपर उठाना।

(7) पतित – जो हाथ ऊपर जा चुका है उसे नीचे लाना

पेशकार

"पेश" फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ उपस्थित, हाजिर या सम्मुख है। इसी से पेशकार या पेशकारा शब्द की व्युत्पत्ति हुई है।

जब हम कोई ताल बजाना चाहते हैं तो उसी के ठेके के रूप के बोलों के अनुसार एक कठिन कायदे की रचना की जाती है, यह रचना बढ़ी हुई लय में नहीं बजाई जाती। इसकी चाल प्रायः डगमगाती हुये रखते है, इसीलिए मध्य लय में ही इस चाल को विशेष आनंद है इस कायदे के पलटे भी बनाए जाते हैं। इस प्रकार ठेके के विभागों का ध्यान रखते हुये जब यह प्रदर्शित किया जाता है कि हम अमुक ताल बजा रहे है और हाथ की सफाई, लयकारी, तैयारी दिखाना चाहते हैं तो इस क्रिया को 'पेशकार' कहते है, संक्षेप में जिस प्रकार गायक गीत से पूर्व राग का आलाप करते है उसी प्रकार तबला वादन में यह क्रम सर्वप्रथम आता है इसे बजाने के उपरांत ही कायदे, रेले, गतें, परने आदि बजाए जाते है। पेशकार में धीडकड, धिंता, त्रक, धिंता, आदि बोलों की बाहुल्यता है। दिल्ली घराने का प्रसिद्ध पेशकार जो तीन ताल में निबद्ध है – उदाहरणार्थ

धाऽक्ड	धाऽतिर	किटधाऽ	तिऽधाऽ	तिरकिट	धाति	धाधा	तिन्ना
किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	किटधाऽ	तिधा	धाति	धाधा	तिन्ना
ताऽक्ड	ताऽतिर	किटताऽ	तिऽत्ता ऽ	तिरकिट	ताति	ताता	तिन्ना
किटधाऽ	तिरकिट	धाऽतिर	किटधाऽ	तिधा	धाति	धाधा	तिन्ना

रेला

रेला मूलतः कायदा की तरह का ही बोल होता है, लेकिन इसके वर्ण अपेक्षाकृत छोटे, अधिक कर्णप्रिय, मधुर और तेज लय में बजने वाले होते है। रेला की शुरूआत ही चौगुन लय से होती है और यह अठगुन या उससे भी तेज लय में बजता है। तिरकिट, धेनगिन, धेन आदि बोलों का इसमें मुख्य रूप से प्रयोग होता है इसमें चॉटी और लव के बोलो का अधिक प्रयोग होता है।

रेला शब्द जैसा नाम से ही विदित है वह समूह है जो रेल के समान दौडता हो। बीन, विचित्र वीणा, सरोद तथा सितार के झाले के साथ उसी तेज लय में रेला बजाने की प्रथा है। द्रुत लय में होने के कारण तबलियों की तैयारी मालूम पड़ती है। रेला मुख्यतः दो प्रकार का होता है – (1) स्वतंत्र रेला (2) कायदे से निर्मित रेला।

स्वतंत्र रेला :– जिस रेले की रचना का सम्बन्ध किसी कायदा आदि से न हो अर्थात् किसी रचना का आधार स्वतंत्र हो उसे स्वतंत्र रेला कहते हैं।

कायदे से निर्मित रेला :– किसी कायदे के पलटों में से कोई ऐसा पलटा चुन लिया जाता है जो द्रुत लय में सरलता से कायम

हो सके और इस तरह उसके वादन में धारा प्रवाहिता निरंतर बना सके उसे "कायदे से निर्मित रेला" कहते है।

बनारस घराने का एक रेला तीनताल में –

धातेटे धिड़नग दिनतक धातेटे धिड़नक दिनतक धातिर किटितक

तातेटे किड़नक तेनतक तातेटे धिड़नक दिनतक धातिर किटितक

मोहरा

मुखड़ा या मोहरा समानार्थी और एक ही उद्देश्य से जुड़े बोल होने के बावजूद आपस में कुछ भिन्नता रखते है। आशय दोनों का एक ही है सम या ठेके का मुँह दिखाना। जहाँ से बंदिश शुरू होती है – संगीत की भाषा में मुखड़ा कहते है लेकिन तबला वादक के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सम होता है। उस सम को स्पष्ट करने के लिए तबला वादक प्रायः दो तीन या चार मात्राओं के कुछ अनिश्चित बोलों का वादन करके सम पर कुछ इस प्रकार आते हैं कि वह स्थान शेष स्थानों से बिलकुल अलग प्रतीत होता है – इसे ही कोई मुखड़ा कहता है तो कोई मोहरा। मोहरा शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है – पहले अर्थ में छोटे–छोटे बोलों को मोहरा कहते है जिन्हें बजाकर गायक या वादक सम से आकर मिलता है जैसे तीन ताल में 13 वीं मात्रा से –

किड़नक तिरकिट तगताऽ तिरकिट। धा

दूसरे अर्थ में 'मोहरा' उन बोलों को कहते है जो तीहे का चक्कर लगाते हुये सम पर आते है, जैसे तीनताल में सम से सम तक का मोहरा निम्नलिखित है।

तागे तीना किडनग ताऽतिर। किड़नग तिरकिट तगताऽ तिरकिट

धा तिरकिट तगताऽ तिरकिट। धा तिरकिट तगताऽ तिरकिट

उठान

उठान परन का ही एक विशिष्ट प्रकार है जो नृत्य या तबला सोलो में सर्वप्रथम बजता है। पूरब घराने के तबला वादक अपने वादन का आरंभ उठान से ही करते है और इस उठान वादन से ही इसका अनुमान लग जाता है कि कलाकार में कितनी योग्यता, कितनी क्षमता है। उठान की सबसे बढ़ी विशेषता यह है कि यह निबद्ध अर्थात् बंधा हुआ नहीं होता और स्थान, कलाकार, संगीत विधा तथा परिवेश को देखते हुये अपनी रचनात्मक कल्पनाशीलता का परिचय देते हुये कलाकार उपज के आधार पर इसे बनाता और बजाता है।

उठान में कई प्रकार के लयों ओर लयकारियों का समावेश होता है। प्रायः विलम्बित लय से शुरू कर के चौगुन, अठगुन तक इसका वादन किया जाता है। इसके बोल खुले और जोरदार होते है और अन्त में एक अच्छी और बड़ी तिहाई भी होती है।

उठान का एक छोटा रूप प्रस्तुत है–ताल त्रिताल

चक्करदार तिहाई

चक्रदार अथवा चक्करदार वस्तुतः तिहाई का ही एक बड़ा ओर विकसित रूप है। जब किसी तिहाई युक्त टुकड़ा, परन या गत की रचना को बिना किसी परिवर्तन किये तीन बार बजाकर सम पर आते है तो उसे चक्करदार टुकड़ा, परन या गत कहते है। चक्करदार बंदिश का ताल के प्रथम मात्रा से प्रारम्भ होने और सम पर ही समाप्त होना आवश्यक है जबकि तिहाई में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसका प्रयोग तबला, पखावज के अतिरिक्त कत्थक नृत्य में और कभी–कभी तंत्र वाद्यों में भी होता है। वर्तमान में चक्करदार के अनेक प्रकार प्रचार में है –

(1) साधारण (2) फरमाइशी (3) कमाली

चक्रदार का उदाहरण– ग्यारह मात्रा का एक टुकड़ा दिया जा रहा है। यह तीन बार बजने पर तीन ताल की दो आवृतियों की चक्रदार कहलायेगी।

धाधातिरकिट धिंतिरकिटतक धिरकिटतकत्तिरकिरतकधेऽत्त तिरकिटधिरकिट

तिरकिटधेऽत्ततक्कडान धातक कडानधा तक्कडान धा

ब. लयकारियाँ–आड़ कुआड़ बिआड़

लय–

गायन, वादन और नृत्य के निश्चित ओर नियमित गति को लय कहते है। लय अपने व्यापक अर्थों में सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। लय के सही प्रयोगों के कारण ही अगर कोई ताल अपना आवर्त्तन निश्चित समय में पूरा करता है। पृथ्वी की अपनी धुरी पर एक निश्चित लय, सही घड़ी के सुई की चाल, स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी, ओर हृदय की घड़कन, ये सभी लय के जीवन्त उदाहरण है। लय शब्द जी धातु से बना है जिसका अर्थ है विलीन होना। संगीत के विभिन्न ग्रंथों में लय की विभिन्न परिभाषाएँ उपलब्ध है।

(1) शारंगदेव के अनुसार– "क्रियानान्तरं विश्रांतिलयः सत्रिविधो मतः।"

अर्थात् क्रिया के अन्त में जो विश्रान्ति होती है उसको लय कहते है।

(2) भरत मुनि के अनुसार– क्रियाओं को कला रूप में कहकर कला और काल से स्थापित ति को लय कहा है।

(3) आचार्य वृहस्पति के अनुसार– किसी भी ताल के विभिन्न भागों को पृथक करने वाली क्रियाओं के मध्य में आने वाले विश्रांति काल 'लय' है।

लय के भेद : यूं तो लय के कई भेद है तीन भेद माने गये है – द्रुत, मध्य, विलम्बित यह तीनों लय प्रकार परस्पर संबध रखते हुये एक दूसरे पर आश्रित है। इन लयों का प्रयोग संगीत में विभिन्न रस एवं भावों के सर्जन हेतु किया जाता रहा है, जैसे विलम्बित में करुण, विरह, मध्य लय में शान्त हास्य एवं श्रृंगार और द्रुत लय में रौद्र, वीभत्स, भयानक, वीर एवं अद्‌भुत।

लय के परस्पर सबंधों को इस प्रकार समझा जा सकता है द्रुत लय मध्य लय से और मध्य लय विलंबित लय से दुगुनी होती है

विलम्बित लय :– विलम्बित का अर्थ है धीरे चलने वाली, जिसे हम ठाह की लय भी कहते हैं। जब एक मात्रा से दूसरी मात्रा पर जाने से विलम्ब होता है अर्थात् लय की गति धीमी हो तो उसे विलम्बित लय कहते है। झूमरा, तिलवाड़ा, धमार, चौताल, आदि तालों का प्रयोग विलम्बित लय हेतु होता है।

मध्य लय :– मध्य का अर्थ है विलम्बित से तेज और द्रुत से धीमी अर्थात् बीच की लय। छोटा ख्याल, मसीतखानी गते और तबले में रेला आदि का वादन प्रायः इसी लय में होता है।

द्रुत लय :– तेज लय को द्रुत लय कहा गया है। वह लय जो सामान्य से दो गुनी और विलम्बित से चार गुनी तेज हो द्रुत लय कहलाती है। गायन में तराना, वादन में झाला एवं तबला स्वतन्त्र वादन में इस लय में गत, फदे, टुकड़े, परणों का वादन होता है।

लयकारी :–

लय के यूं तो अनेक प्रकार हो सकते है किन्तु विलम्बित, मध्य और द्रुत लय से हटकर लय के आडे तिरछे प्रयोग किये जाते है तो उसे लयकारी कहते हैं।

(1) ठाह लय – एक मात्रा में एक मात्रा को गाना बजाना ही ठाह लय कहलाता है।
(2) आधी गुन – 2 मात्राओं में बोली गई एक मात्रा को आधी गुन की लयकारी कहेगें।
(3) दुगुन – एक मात्रा में दो मात्राओं को बोलना।
(4) तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्राएँ बोलना।
(5) चौगुन – एक मात्रा में चार मात्राएँ बोलना।
(6) पंचगुन – एक मात्रा में पाँच मात्राएँ बोलना।
(7) छगुन – एक मात्रा में छः मात्राएँ बोलना।

आड़

आड़ का अर्थ होता हे टेढ़ा। इसे आडी लय भी कहते है। इसके अन्तर्गत डेढ़ ( ) की लयकारियों का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् जब एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, 2 मात्रा में 3 मात्रा एवं 4 मात्रा में 6 मात्राओं का प्रयोग किया जाता है, तो उसे आड़ की लयकारी कहते हैं। जैसे 6 मात्रा के दादरा ताल का समावेश 4 मात्राओं में हुआ है

धाऽधी ऽनाऽ धाऽती ऽनाऽ

कुआड़

कुआड़ की लयकारी में सवाई की लय का प्रयोग किया जाता हैं। इस प्रकार इसमें चार मात्राओं में 5 मात्राओं का समावेश होता है और एक मात्रा में एक चौथाई भाग का जैसे–

धाऽऽऽधी ऽऽऽनाऽ ऽऽधाऽऽ ऽतीऽऽऽ नाऽऽऽ–

बिआड़

बिआड़ की लयकारी के विषय में भी 2 मत प्रचलित है प्रथम मत –जो अधिक प्रचलित है के अनुसार पौने दो गुन अर्थात् एक सही तीन बटे चार की लयकारी बिआड़ है इसके अन्तर्गत चार मात्राओं में सात मात्राओं का समावेश होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

जरब :– सम के अलावा किसी भी बोल पर सम की तरह जोर दे कर वादन करना।

क्रिया :– काल के गिनने का क्रम

पेशकार :– ठेके के रूप के बोलों के अनुसार एक कठिन कायदे की रचना।

रेला :– कायदे की तरह छोटे, कर्णप्रिय, मधुर एवं तेज लय में बजने वाले वर्ण।

मोहरा :– तबले पर दो तीन या चार मात्राओं के कुछ अनिश्चित बोलों का वादन कर सम पर आना।

उठान :– परन का एक विशिष्ट प्रकार

तिहाई :– जब कोई बोल तीन बार बजता है, तो तिहाई कहलाता है।

लय :– संगीत में प्रत्येक क्रिया के बाद के समान विश्रान्ति को लय कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(1) काल के गिनने के क्रम को कहते है

(अ) पेशकार (ब) क्रिया (स) लय (द) तिहाई

(2) मोहरा शब्द का समानार्थी

(अ) ज़रब (ब) रेला (स) मुखड़ा (द) कुआड़

(3) सम के अलावा अन्य बोल पर जोर देकर सम का वादन कहलाता है।

(अ) उठान (ब) परन (स) श्लोक (द) जरब

(4) आड़ एक प्रकार है।

(अ) वाद्य का (ब) नृत्य का (स) लय (द) तिहाई का

(5) एक मात्रा में तीन मात्राओं का बोलना कहलाता है।

(अ) दुगुन (ब) तिगुन (स) चौगुन (द) तिहाई

(6) सबसे धीमी लय कहलाती है।

(अ) मध्य–लय (ब) द्रुत–लय (स) आड़ (द) विलंबित लय

उत्तरमाला– 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 4 (स) 5 (ब) 6 (द)

लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. जरब की परिभाषा लिखते हुये वर्णन कीजिये।
2. रेला से आप क्या समझते है ?
3. चक्करदार तिहाई को विस्तार से समझाईये।

विस्तृत प्रश्न

1. लय किसे कहते है? एवं लय का जीवन में क्या स्थान है वर्णन कीजिये।
2. लय के विभिन्न प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

पद्म विभूषण से सम्मानित संगीतज्ञ

1971–अलाउद्दीन खान(सरोद)	2000–केलुचरण महापात्र (ओडिसी)
1971–उदय शंकर(नृत्य)	2000–जसराज (हिन्दुस्तानी गायन)
1975– एम एस सुब्बुलक्ष्मी (कर्नाटक गायन)	2001–अमजद अली खान (सरोद)
1977–बाल सरस्वती (भरतनाट्यम्)	2001–जुबिन मेहता (ऑर्केस्ट्रा संगीत)
1980–बिस्मिल्लाह खान(शहनाई)	2001–शिवकुमार शर्मा (संतूर)
1981–रविशंकर (सितार)	2002–किशोरी अमोनकर (हिन्दुस्तानी गायन)
1986–बिरजू महाराज (कथक)	2002–गंगूबाई हंगल (हिन्दुस्तानी गायन)
1989–अली अकबर खान(सरोद)	2002–किशन महाराज (तबला)
1990–कुमार गंधर्व (हिन्दुस्तानी गायन)	2003–सोनल मानसिंह(शास्त्रीय नृत्य)
1990–सेमनगुडीश्रीनिवास(कर्नाटकगायन)	2005–रामनारायण (सारंगी)
1991– एम बालमुरलीकृष्ण (कर्नाटकगायन)	2008–आशा भोसले (फिल्म गीत)
1992–मल्लिकार्जुन मंसूर(हिन्दुस्तानी गायन)	2010–उमायलपुरम शिवरामन (मृदंगम्)
1999–भीमसेन जोशी (हिन्दुस्तानी गायन)	2011–कपिला वात्स्यायन (संगीत शास्त्री)
1999–लता मंगेशकर (फिल्म गीत)	2012–भूपेन हजारिका (लोकगीत)
1999–डी.के. पट्टामल(कर्नाटकगायन)	2016–गिरिजा देवी (हिन्दुस्तानी गायन)
2000–हरिप्रसाद चौरसिया (बांसुरी)	2016– यामिनी कृष्णमूर्ति(भरतनाट्यम)

अध्याय 14

अ. ताल–परिचय
ब. तालों का तुलनात्मक अध्ययन

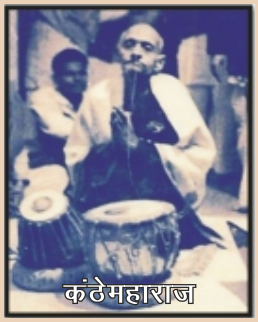

अ. ताल परिचय

'ताल' शब्द की व्युत्पति संस्कृत भाषा की तल धातु में 'घञ्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। जहाँ तल का अर्थ प्रतिष्ठायंक है। **आचार्य शारंगदेव** ने ताल की व्युत्पत्ति के बारें में संगीत रत्नाकर में लिखा है :–

तलस्तालः प्रतिष्ठायामिति धातोर्धञि स्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्त यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।

(सं. रत्नाकर 5/2)

अर्थात् प्रतिष्ठा अर्थ वाली 'तल्' धातु से घञ् प्रत्यय लगाने से 'ताल' शब्द की उत्पत्ति मानी है। गीत, वाद्य, नृत्य को परिमित करने वाले तथा सशब्द तथा निःशब्द क्रियाओं द्वारा लघु, गुरु, प्लुत आदि में परिछिन्न होकर परिमाप किये जाने वाले काल को ताल बताया है।

आचार्य भरतमुनि ने ताल की उत्पत्ति के विषय में नाट्यशास्त्र में लिखा है– काल का आवृत्त होने वाला क्रियात्मक खंड जो गीत वाद्य, नृत्य को अपने ऊपर धारण करता है वह ताल है।

ताल संगीत का प्राण है, संगीत शास्त्र में लय ताल की जननी कहलाती है। जिस प्रकार व्याकरण के बिना भाषा, बिना पतवार के नाव, नमक रहित भोजन होता है उसी प्रकार ताल विहीन संगीत रसहीन, प्रभावहीन है। ताल संगीत की संजीवनी शक्ति है जो संगीत में स्फूर्ति उत्पन्न कर श्रोताओं के मन को प्रफुल्लित करता है।

गायन वादन एवं नृत्य तीनों ही ताल एवं लय पर अवलम्बित है। संगीत में कई तालें है जिनकी भिन्न–भिन्न मात्रा, खाली, भरी, विभाग, बोल आदि है। शास्त्रीय संगीत में–त्रिताल, एकताल, झूमरा, तिलवाडा आदि उपशास्त्रीय में दीपंचदी, चॉचर, कहरवा, दादरा आदि तालों का प्रयोग होता है।

तालों का वर्णन

रूपक

रूपक तबले का अत्यन्त लोकप्रिय ताल है जिसका प्रयोग शास्त्रीय और उपशास्त्रीय दोनों ही प्रकार की रचनाओं में समान रूप से होता है। मध्य लय के ख्याल, गीत, भजन, ग़ज़ल तथा तन्त्र तथा सुषिर वाद्यों के गतों की संगति में इस ताल का प्रयोग होता है। स्वतंत्र वादन में पेशकार, कायदे, रेले, टुकड़े, मुखड़े, गतें जैसी रचनाओं भी इसमें मिलती है। सात मात्राओं के इस ताल को विभाग 3/2/2 का होने के कारण यह विषम पद ताल हुआ। कुछ लोग इसके सम पर खाली मानते हैं जबकि कुछ ताली क्योंकि अन्य किसी भी ताल में सम पर खाली नहीं है किन्तु अपवाद स्वरूप इस ताल के सम पर खाली माना जा सकता है।

ताल रूपक

मात्रा – 7 विभाग– 3 ताली– 1, 4, 6 मात्रा पर

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7
ठेका	तीं	तीं	ना	धीं	ना	धीं	ना
चिह्न	X			2		3	
दुगुन	तींतीं	नाधीं	नाधीं	नातीं	तींना	धींना	धींना
चिह्न	X			2		3	
तिगुन	तींतींना	धींनाधीं	नातींतीं	नाधींना	धींनातीं	तींनाधीं	नाधींना
चिह्न	X			2		3	
चौगुन	तींतींनाधि	नाधिनाती	तींनाधिना	धिनातींतीं	नाधिनाधि	नातींतींना	धिनाधिना
चिह्न	X			2		3	

ताल तीवरा

तीवरा तीव्रा या तेवरा एक ही ताल के भिन्न–भिन्न नाम है। कुछ लोग इसे गीतांगी नाम से भी सम्बोधित करते है। तबले पर प्रमुखता से बजने वाला यह पखावज का प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ताल है। पखावज पर स्वतंत्र वादन और ध्रुवपद गायकी के साथ इसका वादन होता है अतः छन्द, परण, टुकड़े तिहाइंया आदि इसमें खूब बजते है इसका वादन मुख्यतः मध्य व द्रुत लय में होता है।

उत्तर भारतीय संगीत का रूपक ताल व दक्षिण भारतीय संगीत के मिश्र जाति का त्रिपुट तालतीवरा के सदृश है।

ताल तीवरा

मात्रा – 7 विभाग– 3 ताली– 1, 4, 6 मात्रा पर खाली– कोई नहीं।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7
ठेका	धा	दीं	ता	तिट	कत	गदि	गन

चिह्न	X			2		3		
दुगुन	धादीं	तातिट	कतगदि	गनधा	दींता	तिटकत	गदिगन	
चिह्न	X			2		3		
तिगुन	धादींता	तिटकतगदि	गनधादीं	तातिटकत	गदिगनधा	दींतातिट	कतगदिगन	
चिह्न	X			2		3		
चौगुन	धादींतातिट	कतगदिगनधा	दींतातिटकत	गदिगनधादीं	तातिटकतगदि	गनधादींता	तिटकतगदिगन	
चिह्न	X			2		3		

तालदीपचंदी

दीपचंदी और चाचर ये दोनों नाम वस्तुतः एक ही ताल के हैं। यह उपशास्त्रीय संगीत का ताल है अतः तबले के साथ–साथ ढोलक और नक्कारे आदि पर भी इसका वादन होता है। ठुमरी और होली गायन की संगति हेतु इसका मुख्य रूप से प्रयोग होता है। यह स्वतंत्र वादन का ताल नहीं है। विलम्बित, मध्य और द्रुत लय में इसका वादन होता है। इसमें लग्गी–लड़ी का सुंदर प्रयोग होता है।

तालदीपचंदी

मात्रा – 14 विभाग– 4 ताली– 1, 4, 11 पर खाली– 8 पर

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
ठेका	धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ
चिह्न	X			2				0			3			
दुगुन	धाधिं	ऽधा	धातिं	ऽता	तिंऽ	धाधा	धिंऽ	धाधिं	ऽधा	धातिं	ऽता	तिंऽ	धाधा	धिंऽ
चिह्न	X			2				0			3			
तिगुन	धाधिंऽ	धाधातिं	ऽतातिं	ऽधाधा	धिंऽधा	धिंऽधा	धातिऽ	तातिंऽ	धाधाधि	ऽधाधिं	ऽधाधा	तिंऽता	तिंऽधा	धाधिंऽ
चिह्न	X			2				0			3			
चौगुन	धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	तिं	ऽ	ऽऽधाधिं	ऽधाधातिं	ऽतातिंऽ	धाधाधिंऽ
चिह्न	X			2				0			3			

ताल झूमरा

झूमरा या झूमा तबले का ताल है। विलम्बित लय के ख्याल गायन की संगति में इसका विशेष रूप से प्रयोग होता है। यह मिश्र जाति का अर्द्ध समपद ताल है, क्योंकि इसका विभाग क्रमशः 3/ 4/ 3/ 4 का है। कुछ पुराने तबला वादक इसमें स्वतंत्र वादन भी प्रस्तुत करते है अतः उस समय इसमें पेशकार, कायदा, बाँट, गत आदि का भी प्रस्तुतीकरण होता है।

ताल झूमरा

मात्रा – 14 विभाग– 4 ताली– 1, 4, 11 मात्रा पर खाली– 8 पर

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
ठेका	धि	ऽधा	तिरकिट	धि	धि	धागे	तिरकिट	ति	ऽता	तिरकिट	धि	धि	धागे	तिरकिट

चिह्न	X			2				0			3					
दुगुन	धि	ऽधा	तिरकिट	धि	धि	धागे	तिरकिट	धिऽधा	तिरकिटधि	धिधागे	तिरकिटति	ऽतातिरकिट	धिधि	धागेतिरकिट		
चिह्न	X			2				0			3					
तिगुन	धि	ऽधा	तिरकिट	धि	धि	धागे	तिरकिट	ति	ऽता	ऽधिऽधा						
चिह्न	X			2				0								
	तिरकिटधिधि 3			धागेतिरकिटति				तातिरकिटधि			धिधागेतिरकिट					
चौगुन	धि	ऽधा	तिरकिट	धि	धि	धागे	तिरकिट	ति	ऽता	तिरकिट	?		?	?	?	
चिह्न	X			2				0			3					

दुगुन और तिगुन के आधार पर विद्यार्थी स्वयं चौगुन बनाने का प्रयास करें।

ताल पंजाबी

अद्धा, सितारखानी और पंजाबी एक ही ताल के तीन नाम है। यह भी तीन ताल का ही एक प्रकार है। सोलह मात्रा में उन रचनाओं जिनमें एक विशेष प्रकार की कमनीयता और लचक होती है– की संगति इस ताल के द्वारा की जाती है। ठुमरी, टप्पा, भजन और गीत आदि की संगति इस ताल के द्वारा की जाती है। इसकी गति में एक विशेष प्रकार की वक्रता दृष्टिगत होती है यही इसका गुण व विशेषता है।

ताल पंजाबी

मात्रा – 16 विभाग– 4 ताली– 1, 5, 13 पर खाली– 9 पर

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ठेका	धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽति	ऽक	ता	ता	ऽधि	ऽक	धा
चिह्न	X				2				0				3			
दुगुन	धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽधि	ऽक	धा	धाऽधि	ऽकधा	धाऽधिऽकधा		धाऽति	ऽकता	ताऽधि	ऽकधा
चिह्न	X				2				0				3			

तिगुन

धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽधि	ऽक	धा
X				2			
धा	ऽति	ऽऽधा	ऽधिऽकधा	धाऽधिऽक	धाधाऽति	ऽकताता	ऽधिऽकधा
0				3			

चौगुन

धा	ऽधि	ऽक	धा	धा	ऽधि	ऽक	धा
X				2			
धा	ऽति	ऽक	ता	धाऽधिऽकधा	धाऽधिऽकधा	धाऽतिऽकता	ताऽधिऽकधा
0				3			

ताल तिलवाड़ा

तिलवाड़ा ताल मूलतः तीनताल का विलम्बित रूप है। 16 मात्रा में निबद्ध विलम्बित ख्याल गायन की संगति इसी ताल द्वारा की जाती है। यही कारण है कि इस ताल की मात्रा अवधि 32, 64 मात्राओं तक बढ़ायी जा सकती है। इस ताल में एक गाम्भीर्य होता है।

ताल तिलवाड़ा

मात्रा – 16 विभाग– 4 ताली– 1, 5, 13 मात्रा पर खाली– 9 पर

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ठेका	धा	तिरकिट	धि	धि	धा	धा	ति	ति	ता	तिरकिट	धि	धि	धा	धा	धि	धि
चिह्न	X				2				0				3			

दुगुन

धातिरकिट	धिधि	धाधा	तिति	तातिरकिट	धिधि	धाधा	धिधि
X				2			
धातिरकिट	धिधि	धाधा	तिति	तातिरकिट	धिधि	धाधा	धिधि
0				3			

चौगुन

धातिरकिटधिधि	धाधातिति	तातिरकिटधिधि	धाधाधिधि	धातिरकिटधिधि	धाधातिति	तातिरकिटधिधि	धाधाधिधि
X				2			
धातिरकिटधिधि	धाधातिति	तातिरकिटधिधि	धाधाधिधि	धातिरकिटधिधि	धाधातिति	तातिरकिटधिधि	धाधाधिधि
0				3			

ब. तालों का तुलनात्मक अध्ययन

(1) एकताल–चौताल (2) झप ताल–सूलताल

(3) दीपचंदी–झूमरा (4) रूपक–तीव्रा

एकताल–चौताल का तुलनात्मक अध्ययन

समानता

एकताल	चौताल
1. इस ताल में 12 मात्रायें होती है	1 चौताल में भी 12 मात्रायें होती है
2. इसमें 6 विभाग 2–2 मात्रा के होते हैं	2 इसमें भी 6 विभाग 2–2 मात्रा के होते हैं
3. 1,5,9,11 पर ताली है	3 चौताल में भी 1,5,9,11 पर ताली है
4 एकताल में 3,7 मात्रा पर खाली है	4 चौताल में भी 3,7मात्रा पर खाली है
5 इस ताल में स्वतंत्र वादन एवं संगति की जाती है	5 इस ताल में स्वतंत्र वादन व संगति की जाती है

भिन्नता

1. एकताल तबले की ताल अर्थात् बन्द बोल की ताल है	1. चौताल पखावज मृदंग की अर्थात् खुले बोल की ताल है
2. यह ताल द्रुतख्याल एवं विलंबित ख्याल की संगति में प्रयुक्त होती है	2. चौताल ध्रुपद गायन के साथ बजाई जाती है

झप ताल–सूलताल का तुलनात्मक अध्ययन

समानता

झपताल	सूलताल
1. इस ताल में 10 मात्रायें होती है ।	1. सूलताल में भी 10 मात्राएँ होती है ।
2. इसमें 3 ताली एवं एक खाली है।	2. इसमें भी 3 ताली एवं एक खाली है ।
3. इसमें स्वतंत्र वादन किया जाता है।	3. इसमें भी स्वतंत्र वादन किया जाता है।

तुलना

झपताल	सूलताल
1. इस ताल के विभाग 2–3–2–3 भाग होते हैं ।	1. इस ताल के विभाग 2–2 मात्रा के होते हैं ।
2. इसमें 4 विभाग होते हैं।	2. इसमें 5 विभाग होते हैं ।
3. झपताल में ताली 1,3,8 मात्रा पर होती है।	3. इस ताल में ताली 2, 5, 7 मात्रा पर होती हैं ।
4. इसमें खाली 6 मात्रा पर होती है।	4. इस ताल में खाली 3, 9 मात्रा पर होती हैं ।
5. यह तबले की ताल है अर्थात् बन्द बोल की ताल है।	5. यह पखावज की ताल है अर्थात् खुले बोल की ताल है ।
6. झपताल द्रुत ख्याल गीत गज़ल आदि की संगति में प्रयुक्त की जाती है ।	6. सूलताल ध्रुपद गायकी के साथ बजाई जाती है ।

दीपचंदी झूमरा का तुलनात्मक अध्ययन

समानता

दीपचंदी

1. इस ताल में 14 मात्रायें होती हैं।
2. इसमें 4 विभाग 3–4–3–4 मात्रा के होते हैं।
3. इस ताल में 1, 4, 11 मात्रा पर ताली खाली है ।

झूमरा

1. झूमराताल में भी 14 मात्रायें होती है ।
2. इस ताल में भी 4 विभाग 3–4–3–4 मात्रा के होते है ।
3. इस ताल में भी 1, 4, 11 मात्रा पर ताली एवं 8 मात्रा पर एवं 8 मात्रा पर खाली है ।

तुलना

दीपचंदी

1. दीपचंदी स्वतंत्र वादन का ताल नहीं है।
2. ठुमरी एवं होली गायन की संगति हेतु यह ताल है।

झूमरा

1. इस ताल में स्वतंत्र वादन एवं संगति की जाती है ।
2. विलम्बित लय के ख्याल गायन की संगति में बजाई जाती विशेष रूप से बजाई जाती है ।

रूपक तीव्रा का तुलनात्मक अध्ययन

समानता

रूपक

1. रूपक में 7 मात्रायें होती है
2. इस ताल में तीन विभाग 3–2–2 के होते हैं

तीव्रा

1. तीव्रा में भी 7 मात्रायें होती है
2. इस ताल में भी तीन विभाग 3–2–2 के होते है

भिन्नता

रूपक

1. रूपक तबले की लोकप्रिय ताल है
2. मध्य लय के गीत प्रकारों, गतों की संगति में इस ताल का प्रयोग होता है

तीव्रा

1. तीव्रा पखावज का प्राचीन व महत्तवपूर्ण ताल है
2. ध्रुपद गायकी के साथ इस ताल की संगति होती है

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

तब्ल	–	तबला
ठेका	–	ताल के बोल
दुगुन	–	एक मात्रा में दो मात्रा
त्रिगुन	–	एक भाग में तीन मात्रा
चौगुन	–	एक मात्रा में चार मात्रा
सम	–	ताल की पहली मात्रा चिह्न X (सम)
खाली	–	ताली लगाये बिना हाथ को एक तरफ उठाकर गिनने की क्रिया चिह्न O
ताली	–	ताल के ठेके में लगने वाली ताली की संख्या चिन्ह 2, 3, 4 आदि
मुखड़ा	–	कुछ बोल बजाकर सम पर आने कि क्रिया।
कायदा	–	ठेके की रचना के अनुसार रचे गये बोल।

लय – दो क्रियाओं के बीच का समान अन्तराल

मध्य लय – वह लय जो न ज्यादा तेज हो न ज्यादा धीमी

विलंबित लय – मध्य लय के ठीक दुगनी धीमी गति

द्रुत लय – मध्य लय की ठीक दुगनी तेज गति

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. दीपचंदी में मात्राएँ है

   (क) 10 (ख) 12 (ग) 14 (घ) 16

2. पंजाबी ताल में विभाग है

   (क) 3 (ख) 6 (ग) 5 (घ) 4

3. झपताल ताल में खाली है

   (क) दूसरी मात्रा पर (ख) छठी मात्रा पर (ग) आठवीं मात्रा पर (घ) दसवीं मात्रा पर

4. चौताल बजाई जाती है

   (क) पखावज पर (ख) ढोलक पर (ग) ठुमरी के साथ (घ) भजन के साथ

5. ताल की गति में वक्रता दृष्टिगत होती है।

   (क) दादरा (ख) कहरवा (ग) पंजाबी (घ) त्रिताल

6. एक मात्रा में दो मात्रा के बोल कहलाते हैं।

   (क) तिगुन (ख) दुगुन (ग) चौगुन (घ) मुखड़ा

उत्तरमाला– 1 (ग) 2 (घ) 3 (ख) 4 (क) 5 (ग) 6 (ख)

लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. पाठ्यक्रम की 16 मात्रा की ताल लिखो।
2. पाठ्यक्रम की छः विभाग की ताल लिखिये।
3. ताल की संक्षिप्त में व्याख्या कीजिये।

निम्न प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिये

1. झपताल एवं सूलताल में तुलनात्मक अन्तर स्पष्ट कीजिये
2. रूपक एवं तीव्रा तालों का ठेका, दुगुन एवं चौगुन लिखिये।

उ. जाकिर हुसैन

अध्याय 15

अ. अवनद्ध वाद्यों का संक्षिप्त इतिहास
ब. तबले के प्रमुख बाज़

अ. अवनद्ध–वाद्यों का संक्षिप्त इतिहास
राजस्थानी लोक अवनद्ध–वाद्यों के विशेष संदर्भ में

उर्दू शब्द कोष के अनुसार'वाद्य' को उर्दू में साज करते हैं। प्राचीन संगीत ग्रंथों में वाद्यों की व्युत्पत्ति का वर्णन किसी न किसी देवी देवताओं के सम्बंध से प्राप्त होता है। विभिन्न पदार्थों से ध्वनि उत्पादन और वाद्यों के कई भेद किये गये हैं। नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय में चार प्रकार के प्रसिद्ध वाद्य है।

(1) तत् (2) अवनद्ध या आवद्ध (3) धन (4) सुषिर

(1) तत् : तत् वाद्य धातु के तार या ताँत से युक्त होते है जिनके तारों पर नख, नखी, मिज़राव या गज के घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होती है जैसे–एकतंत्री, विपंची, बीन, रबाब, सारंगी, सितार, सरोद, इसराज आदि।

(2) सुषिर वाद्य : सुषिर वाद्य छेदों वाले वाद्य है जिन्हें फूँककर या अन्य किसी भाँति वायु के दबाव से ध्वनि उत्पन्न करके बजाया जाता है जैसे–बंशी, अलगोजा, बाँसुरी, शहनाई, हारमोनियम।

(3) अवनद्ध वाद्य : इस श्रेणी के वाद्यों के मुँह खाल या झिल्ली से मढ़े हुये होते है जिस पर हाथ या डंडी के प्रहार से ध्वनि उत्पन्न करते हुए बजाया जाता है जैसे मृदंग, पखावज, तबला, ढोलक, नगाड़ा, खंजरी, नाल, डफ आदि।

(4) धन वाद्य : ये वाद्य किसी धातु के ठोस टुकड़ों से बने होते है जिन्हें परस्पर टकराकर या अन्य किसी ठोस पदार्थ से प्रहार करके या हिला–डुला कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है जैसे झाँझ, मंजीरा, करताल आदि।

तत् वाद्य

अवनद्ध वाद्य

सुषिर वाद्य

धन वाद्य

अवनद्ध वाद्य : भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। हमारे संगीत में मृदंग प्राचीन ताल वाद्य है। ऐसी धारणा आजतक संगीत जगत में चली आ रही है। कहा जाता है कि मृदंग की उत्पत्ति शंकर के डमरू से हुई है। सृष्टि के प्रलय काल में ताडण्व नृत्य करते समय जब नटराज ने अपना डमरू बजाया तो उसी समय ब्रह्मा जी ने डमरू के आधार पर मिट्टी से

मृदंग की रचना की और सर्वप्रथम उसे गणपति जी ने बजाया। अनेक संगीत ग्रन्थों में ये प्रसंग मिलता है कि गणेश जी मृदंग बजाने में अत्यन्त कुशल वादक थे और नृत्य में गणेश परन होना भी इसी तथ्य को बल देता है। दूसरी कथा यह है कि देवासुर संग्राम के समय वृत्रासुर नामक असुर को मारकर ब्रह्मा जी ने उसी खेत से मिट्टी छानकर मृदंग की रचना की और उसी खाल से उसे माण्ड दिया।

अवनद्ध वाद्यों के ऐतिहासिक क्रमिक विकास पर विचार किया जाये, तो कुछ मौलिक तत्त्व हमारे सामने आते है, अवनद्ध वाद्यों को प्राचीनतम के आधार पर चार भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(1) पूर्व वैदिक (2) हिन्दू काल (3) मुसलमान काल (4) आधुनिक काल (अंग्रेजों का वर्तमान काल)

भारतीय इतिहास के आधार पर हम कह सकते हैं कि सिन्धु घाटी की सभ्यता ईसा सदी से कई हजार वर्ष पुरानी है। मोहन जोदड़ों की खुदाई से भली प्रकार सिद्ध हो चुका है कि उस समय भी हमारे यहाँ मिट्टी और पत्थर के वाद्य प्रयोग में आते थे। खुदाई से प्राप्त नृत्य संबंधित मूर्तियां इसी तथ्य को प्रमाणित करती है। मिट्टी के पात्र जो अन्य आवश्यकताओं के लिए बनाये जाते थे, आनंद और उल्लास के समय वहीं वाद्य यन्त्रों का काम देने लगते थे। आज की जंगली जाति के या पहाड़ी क्षेत्रों के ग्रामीणों की संगीत गोष्ठियों में मिट्टी क्षेत्र के घड़े, चिमटे और कटोरियाँ आदि पात्र ताल वाद्यों के रूप में प्रयोग किये जाते थे।

अतः इस काल में तत् वाद्य बहुत कम मिलते थे। यदि होते भी थे तो वह मिट्टी और पत्थर के थे। ताल वाद्यों की परम्परा को समझने के लिए निम्न आधार हो सकते हैं–

1. वैदिक साहित्य
2. रामायण और महाभारत
3. जैन और बोद्ध धर्म की पुस्तकें
4. प्राचीन शिलालेख
5. स्तूप या अन्य वस्तु कला संबंधी सामग्री प्राचीन मूर्तियाँ आदि
6. मंदिर या राज दरबारों में सभी की रीति
7. आधुनिक इतिहास की पुस्तकें
8. संगीतकारों में प्रचलित किवदन्तियाँ।

वैदिक काल में अनेक वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता था जैसे आडम्बर दुन्दुभि तथा अघाती इसका प्रयोग किसी मंगल कार्य में अथवा युद्ध के विजय अवसर पर या समूह नृत्य गायन आदि में होता था।

हंसोपनिषद् में वाद्यों के भेदों के प्रसंग में मृदंग वाद्य का उल्लेख है जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पुराणों से पूर्व ही अर्थात् ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व मृदंग वाद्य बन चुका था। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मृदंग की उत्पत्ति का संबंध भूमि दुन्दुभि से है। भूमि के स्थान पर मिट्टी से मृदंग के शरीर की रचना करके उसे चमड़े से मढ़ दिया गया इस वाद्य को सुविधा पूर्वक कहीं भी ले जाया जा सकता है। अतः इस आधार पर यह धारण है कि वैदिक कालीन भूमि दुन्दुभि से ही मृदंग की रचना हुई है।

रावण के अन्तःपुर में संगीत की सामग्रियों का वर्णन करते हुए वाल्मिकी ने अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत मृदंग वरद, हडम् डिम डिम आदि वाद्यों का वर्णन किया है।

पाणिनी की अष्टाध्यायी से पूर्व शताब्दी में भी कुछ वाद्यों का वर्णन है जिसमें पुर–पुर प्रावण आदि प्रमुख है। बौद्ध कालीन साहित्य में तत् वितत् धन और सुषिर वाद्यों का उल्लेख अनेक बार हुआ है। जैन ग्रन्थों में प्रणवपरह, मुरण मृदंग, भेरी, दुन्दुभि आदि ताल वाद्यों का उल्लेख है। चर्म वाद्यों के अन्तर्गत मुकुन्द तातिया आदि का वर्णन है।

पुराणों में हरिवंश पुराण, ताल पुराण, मार्कण्डेय पुराण में संगीत विषयक सामग्री प्राप्त होती है इस काल में दुरदुर, प्रणव, पुष्कर, पनह, आनह आदि का प्रचार था। नाट्य शास्त्र में अवनद्ध वाद्यों का प्रमुख स्थान है। मृदंग, प्रणव दर्दुर आदि वाद्यों की ध्वनि एक साथ की जाती थी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से अवनद्ध वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। दुंदुभी, आदम्बर, मेरी, डिमडिम, मृदंग का वर्णन वेदों में भी प्राप्त है इन्हीं ताल वाद्यों का एक परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप तबला है। कुछ प्रमुख अवनद्ध

वाद्य इस प्रकार हैं–मृदंग, डमरू, घटम्,झल्लरी, तुम्बकी, पखावज, तबला, ढोलक खंजरी, ढोल, नगाड़ा आदि।

राजस्थान के लोक अवनद्ध वाद्य

लोक कला की समस्त विधाओं में लोकनृत्यों, लोकनाट्यों, लोक वाद्यों, लोक संगीत इत्यादि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, युग युगान्तर से पनपी ये कलाएँ राजस्थान की संस्कृति का प्राण बनी हुई है परन्तु बिना वाद्य यंत्रों के राजस्थानी लोक संगीत अधूरा है।

प्राचीन काल से ही वाद्य यंत्रों का संबंध देवी देवताओं के साथ स्थापित किया जाता रहा है। राजस्थान के लोक संगीत में अलगोजा, इकतारा, कामायवा, खड़ताल, चंग, जंतर, झांझ, ढोल, तदूंरा, पूंगी, भपंग, मंजीरा, रावणहत्था, शहनाई, सारंगी आदि लोक वाद्य सुदीर्घ काल से अपनी लहरियों से प्रसिद्ध है। कुछ प्रमुख अवनद्ध वाद्य निम्न है–

1. **डमरू :** श्री कृष्ण की बंशी, सरस्वती की वीणा, तथा शंकर के डमरू को हिन्दू धर्मग्रन्थों में आध्यात्मिक महत्त्व प्रदान किया गया है। कहते हैं ताण्डव नृत्य के समय शिवजी डमरू बजाते हैं। सूर ने अपने पदों में शिव के रूप में बाल कृष्ण का वर्णन करते हुये तथा शंकर के आगमन की सूचना देते हुये डमरू का उल्लेख किया है।एक दो बालिश्त तक लम्बा डमरू दोनों सिरों पर चमड़े से मढा होता है। इसके दोनों मुख रस्सी से कसे रहते हैं, इसके बीच का हिस्सा एक दम पतला होता है जिसमें एक रस्सी अलग से लटकी रहती है और रस्सी के मुख पर घुण्डी बनी होती है। हाथ को इधर उधर घुमाने से घुण्डीदार रस्सी डमरू के दोनों मुखों पर चोट करती है तो डिम डिम की ध्वनि निकलती है।

वर्तमान में शिव मन्दिरों में इस सामान्य आकार से लगभग तिगुना, चौगुना बडा डमरू होता है जो आरती के समय दोनों हाथों से मध्य स्थान पर पकड कर बजाया जाता है। राजस्थान में डमरू का विशेष प्रयोग बन्दर, भालु आदि का नाच दिखाने के लिए भी किया जाता है।

2. **डिमडिमी :** डिंमडिमी से बच्चों को खेलने वाला डमरू कहना चाहिए। वस्तुतः डिंमडिमी डमरू से छोटे आकार की होती है। इसका ढांचा मिट्टी का होता है जिसके दोनों मुखों पर पतली झिल्ली मढी रहती है। झिल्ली को किसी डोरे से न नहीं कस कर सरेस आदि से चिपका देते हैं। डोरे की गाठें झिल्ली से टकरा कर ध्वनि उत्पन्न करती है।

3. **ढोलक :** ढोलक आम, बीजा, शीशम सामौन, नीम, जामुन की लकड़ी से बनती है। इच्छानुसार आकार बनाने के लिए लकडी को अन्दर से पोला कर दिया जाता है। इसके दोनों मुख पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है। यह खाल डोरियों द्वारा कसी जाती है। डोरियों में छल्ले रहते हैं जो खाल और डोरियों को कसते हैं। ढोलक का दाहिना मुख ऊंचे स्वर में तथा बाँया मुख मन्द स्वर में बोलता है। ढोलक का बाँया मुख मोटी खाल से मढ़ा जाता है तथा इस खाल में भीतर से एक विशेष प्रकार का लेप किया जाता है।

ढोलक दोनों हाथों से बजाया जाता है, लोक गीतों, लोक नृत्यों के साथ ही, मांगलिक पर्वों पर स्त्रियाँ ढोलक की ताल पर गीत गाती हैं।

4. **डफ :** डफ का प्रयोग भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न रूपों में होता है किन्तु राजस्थान तथा ब्रज आदि में डफ होली का प्रतीक माना जाता है। डफ की ध्वनि सुनाई देते ही फाग की याद आने लगती है। डफ बजाते हुये रात–रात भर फाग गाये जाते हैं।

चार अंगुल चौडे लकड़ी के घेरे पर चमड़े से मढ़ा हुआ यह चक्राकार वाद्य 16 से 20 अंगुल व्यास तक होता है। इसे बाएँ हाथ से पकड़कर हृदय के समीप स्थित कर दाहिने हाथ की थाप द्वारा बजाते हैं। इसके छोटे स्वरूप को डफली या डपली कहते हैं। वास्तव में डफ,

ढफ, डफला चंग आदि एक ही जाति के वाद्य है जो अपने सामान्य रूप तथा वादन–विधि के अन्तर सहित देश के सभी भागों में प्रचलित है। कहरवा, तथा दादरा ताल के विभिन्न रूपों का इन में बड़म आकर्षक वादन होता है। मध्यकालीन कवियों ने इस का होली की धमाल के साथ प्रचुर वर्णन किया है।

5. **चंग :** लोक गीत के स्तर का ख्याल गाने वालों का यह प्रसिद्ध वाद्य चक्राकार स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। इसका व्यास 18 से 22 अंगुल तक का होता है। घेरा चार अंगुल चौड़ी लकड़ी से बनाया जाता है जिस में एक ओर खाल मढी होती है। खंजरी से इसका घेरा दुगने से तिगुना बडा होता है फलतः इस में मढी हुई खाल चाहे जितनी भी कसी हो कुछ समय बाद ढीली पडने लगती है। इस कारण आजकल इसका घेरा पीतल का बनने लगा है जिसमें खाल को कसने के लिए चाबियाँ लगी रहती है।

डफली तथा चंग के बजाने की विधि और बोलों में कई भेद देखे जाते हैं। कुछ लोग छल्ला पहन कर घेरे पर प्रहार करते हैं, कुछ लोग बांस की खपच्ची से चमड़े पर प्रहार करते हैं, कुछ दाहिने हाथ से वादन करते हैं।

6. **ढोल :** एक बड़े बेलन के आकार का वाद्य, जिसे लोहे की सीधी और चपटी परतों को आपस में जोड़ कर बजाया जाता है। इन परतों को जोड़ने के लिए लोहे और तांबे की कीलें बारी–बारी से प्रयोग की जाती है। इस वाद्य पर बकरे की खाल मढी जाती है। वाद्य को कसने मढने के लिए कुण्डल अथवा नज़रे का प्रयोग किया जाता है। इसे कसने के लिए डोरी का प्रयोग किया जाता है जिस में पीतल के छल्ले पड़े होते हैं।

इसका नर भाग डण्डी के द्वारा तथा मादा भाग हाथ से बजाया जाता है इसमें विभिन्न लयकारियाँ दिखाई जाती है, इस पर कुछ विशिष्ट वस्तुएँ विशिष्ट नाम से बजायी जाती है जैसे– चिरामी, गजरा, घूमर, सती और कटक आदि। ढोल मुख्य रूप से त्यौहारों के अवसर पर बयाजा जाता है। यह नृत्य मण्डलियों में भी संगति करने के प्रयोग में लाया जाता है। इसके साथ थाली बजायी जाती है। कभी–कभी ऊंचे स्वर में दो पतली डण्डियों से दूसरा व्यक्ति ताशा नामक वाद्य बजाता है। ढोल लगभग 30 इंच लम्बा तथा इस का मुख 18 इंच से 24 इंच तक का होता है।

7. **नगाडा :** इस वाद्य का आकार दो कटोरों के समान होता है जिन में एक छोटा तथा दूसरा बड़ा होता है। बड़ा कटोरा ताँबे का तथा छोटा लोहे का बना होता है। बड़े कटोरे पर भैंस की तथा छोटे पर ऊँट की खाल मढ़ी जाती है। यह खाल चमड़े की बंदियों की सहायता से कसी जाती है।

यह एक व्यक्ति के द्वारा दो डंडियों से बजाया जाता है। बड़ा नगाड़ा नीचे स्वर में तथा छोटा नगाड़ा बहुत ऊँचे स्वर में मिलाया जाता है। इसके स्वर की ऊँचाई के लिए प्रायः इसे आग में सेकते हैं। बड़े नगाडे की सतह मे एक छेद होता है जिस से पानी डाल कर ऊपर मढ़ी खाल तक पहुँचाया जाता है जिस के कारण इस का स्वर नीचा हो जाता है।

कहरवा, दादरा के अतिरिक्त विभिन्न कठिन तालें तथा लयकारियां भी इस वाद्य पर बजायी जाती है। राजस्थान के शेखावटी तथा अलवर क्षेत्र में नगाड़ा वादन की प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती है। नगाड़ा युद्धके वाद्यों के साथ बहुत प्रयोग किया जाता है, किन्तु आजकल राजस्थान के उत्सवों में इस का प्रचार अधिक है। नृत्य मण्डलियों में इस का

प्रयोग संगति के लिए भी होता है।

8. **तासा :** तासा चपटे कटोरों से बनता है, जो लोहे अथवा मिटटी के बने होते हैं। इस पर बकरे की खाल मढ़ी जाती है जो चमड़े की पटिटयों से कसी रहती है। यह गले से लटका कर दो पतली लकड़ियों से बजाया जाता है। मुख्य रूप से यह संगति के प्रयोग में आता है इसके साथ ढोल और झांझ बजाये जाते हैं।

9. **डेरू या ढाक :** यह डमरू के आकार का वाद्य है। इसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा रहता है इसके घेरे पर डोरी को इस प्रकार बांधा जाता है, जिससे मढी हुई खाल को इच्छानुसार कसा जा सके। यह एक पतली और मुड़ी हुई डंडी से बजाया जाता है। इस पर एक हाथ से आघात किया जाता है और दूसरे हाथ से डोरी को दबा कर खाल को कसा या ढीला किया जाता है।

राजस्थान में यह सपेरों द्वारा और दूसरे घूमने वाले समुदायों द्वारा बजाया जाता है। इसमे खेमटा ताल के भिन्न–भिन्न प्रकार बडी कुशलता से बजाये जाते हैं।

10. **खंजरी :** यह लकड़ी का छोटा, मोटा लगभग 6 इंच के वृत्त का घेरा होता है। जिसके एक ओर खाल मढ़ी रहती है। इस के लिए बकरी की खाल प्रयोग में लाते हैं। इसे केवल एक हाथ से बजाते हैं। कभी कभी इस के घेरे में पीतल की छोटी झांझें भी लगायी जाती है।

यह राजस्थान में कालबेलियों और जोगियों की मण्डली द्वारा बजाया जाता है।

11. **मादल :** यह एक जातीय वाद्य है जो भील और गरासिया जाति द्वारा बजाया जाता है। इसका ढांचा मिट्टी के बेलन के आकार का होता है जो कुम्हार द्वारा बनाया जाता है। इस पर हिरण या बकरे की खाल मढी जाती है। इसकी खाल सीधी डोरियों द्वारा कसी जाती है। मादल में छल्ले नहीं लगाये जाते हैं। स्वर को ऊँचा और नीचा करने के लिए इसके दोनों मुखों पर आटा लगाया जाता है।

12. **कुण्डी :** यह मिटटी का बना हुआ छोटा बरतन है इस पर बकरे की खाल मढी रहती है जो चमड़े की बद्धियों से कसी रहती है। इसे दो छोटी डंडियों से बजाया जाता है। मेवाड़ क्षेत्र के जोगियों में इस वाद्य का अत्यधिक प्रचार है। जोगियों के पंचपद नृत्य में इसका प्रयोग होता है।

13. **कमट :** कमट नगाड़ा जाति का वाद्य है जो लोहे की परत से बनता है। इस पर भैंस की खाल मढ़ी जाती है। खाल चमड़े की पटिटयों की सहायता से खींची जाती है। चार या पांच अथवा इस से भी अधिक व्यक्ति इस के चारों ओर खड़े हो कर तथा हाथ में दो दो डंडियां लेकर इस को लय के साथ बजाते हैं। मुख्य रूप से यह राजस्थान के अलवर क्षेत्र में पाया जाता है।

14. **पाबू जी के माटे :** यह वाद्य मिट्टी के दो बरतनों से बनता है। इन बरतनों के मुख पर खाल मढ़ी रहती है। यह खाल चमड़े की लटरदार बद्धियों में छोटी लकड़ियों के टुकडे डाल कर कसी जाती है। इन दोनों वाद्यों को अलग–अलग दो व्यक्ति बजाते हैं किन्तु उनकी लय या ताल समान रहती है। ये दोनों व्यक्ति अपने दोनों हाथों से उसको बजाते हैं। एक वाद्य जो नीचे के स्वर में मिला रहता है तथा दूसरा जो ऊँचे स्वर में मिला रहता है मादा कहलाता है। मुख्य रूप से यह पश्चिमी राजस्थान की थोरी या नायक (भील) जातियों द्वारा बजाया जाता है।

ब. तबले के प्रमुख बाज

बाज का तात्पर्य वादन शैली से है जितनी वादन शैलियां होती है, उतने बाज होते है। बाज से घरानों की रचना हुई है। प्राप्त जानकारी के अनुसार दिल्ली के उ. सिधार खाँ प्रथम तबला वादक थे, उनके बजाने की शैली ने एक बाज का निर्माण किया जो दिल्ली बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिधार खाँ के शिल्पों में से कुछ उसी स्थान पर रहे तथा कुछ भारत के अन्य भागों में फैले। ये लोग अपने साथ–साथ तबला बजाने की कला भी लेते गये, जिसका प्रचार विभिन्न स्थानों पर किया। धीरे–धीरे उस स्थान का प्रभाव पड़ा और कुछ समय बाद उनकी वादन शैली अथवा बाज दिल्ली बाज से अलग हो गई इस प्रकार तबले के विभिन्न बाजों का जन्म हुआ। तबले के मुख्य बाज है पूर्व और पश्चिमी।

(1) फर्रूखाबाद बाज :

"विविध साजों के बोलों से तबले का विस्तार तो होता है, किन्तु इससे उसकी शुद्धता भी खत्म हो जाती है। इस दृष्टि से फर्रूखाबाद घराने का तबला शुद्ध तबला है, क्योंकि इस में ताशा, नक्कारा, ढोल और खंजरी आदि के बोल नहीं प्रयुक्त होते हैं।

फर्रूखाबाद घराने के प्रवर्त्तक हाजी विलायत अली लखनऊ के उस्ताद बख्शू खाँ के शिष्य और दामाद थे और इन्होनें ही इस घराने की नींव रखी। वर्तमान काल के संगीत जगत् में हाजी साहब की गतों का बड़ा ऊँचा स्थान है और इनकी पत्नी जो बख्शूँ खाँ साहब की पुत्री थी, उसकी भी गतें हाजी जी की गतों के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी कहावत है कि उन्होनें प्रार्थना में यही मांगा कि मुझे तबला बजाना आ जाए और हर बार उन्हें नई गत मिली।

उ.अमीर हुसैन

खाँउ.करामतुल्लाह खाँ

पं.ज्ञान प्रकाश घोष

पं. विक्रम घोष

इस घराने की के प्रणेता हाजी विलायत अली ने चाँटी और लव के मिश्रण से फर्रूखाबाद घराने की स्थापना की थी। इस घराने का वास्तविक विकास लखनऊ, रामपुर, कोलकता में हुआ, परन्तु हाजी विलायत अली मूलतः फर्रूखाबाद के निवासी थे अतः इस घराने और बाज का नामकरण फर्रूखाबाद के नाम पर ही हुआ। फर्रूखाबाद घराना हाजी साहब की गतों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उस्ताद अमीर हुसैन खाँ के शब्दों में–जिस महफिल में हाजी साहब की एक भी गत बज जाती है उसमें रौनक आ जाती है।

हाजी विलायत अली के चार पुत्रों और शिष्यों द्वारा इस परम्परा का काफी प्रचार–प्रसार हुआ। इनके ज्येष्ठ पुत्र उस्ताद निसार अली वर्षों तक रामपुर, दरबार में रहे। इनके शिष्यों में मुनीर खाँ ने विशेष ख्याति अर्जित की। हाजी साहब के दूसरे पुत्र उ. अमान अली भी योग्य ताबलिक थे। उनकी परम्परा में जयपुर घराने के प्रसिद्ध कथक नर्त्तक पं. जयलाल व उनके पौत्र पं. राम गोपाल के पुत्र राजकुमार मिश्र ने तबला व पखावज के कलाकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की।

हाजी साहब के तीसरे पुत्र हुसैन अली भी तबला के विद्वान थे। इन्होनें अपने पिता और बड़े भाई निसार अली से तबले की शिक्षा प्राप्त की। इनकी शिष्य परम्परा में मुनीर खाँ, अमीर हुसैन खाँ, अहमदजान थिरकवा, नासिर खाँ, निखिल ज्योति घोष जैसे प्रसिद्ध कलाकार हुए। इन कलाकारों के अलावा हाजी साहब के शिष्यों में इमाम बख्श, मुबारक अली, सलारी मियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में इस घराने की जो विशेषताएँ है उनके जन्मदाता सलारी मियाँ ही थे।

फर्रूखाबाद घराने की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें दिल्ली के किनार और लखनऊ के लव का सूझबूझ युक्त मणिकांचन प्रयोग होता है। इस बाज में दिल्ली की मिठास और लखनऊ की गंभीरता दोनों पाई जाती है। इस बाज में रेलों का विस्तार रौ के रूप में हुआ है। धिरकिट, तिरकिट, दिगनग, दिनतक, दींग, दींगड, क्डान, ध्डान, त्रक जैसे वर्णों का प्रयोग इस परम्परा के कलाकार खुल कर करते है और इन्हीं वर्णों का प्रयोग इस घराने का मौलिक आधार और मौलिक विशेषता है।

इस घराने के प्रसिद्ध कलाकार उ. नन्हें खाँ, उ. करामतुल्लाह खाँ, पं. ज्ञान प्रकाश घोष, उस्ताद हुसैन बख्श, पं. विक्रम घोष, शेख, दाऊद, स्व. पं. प्रेम वल्लभ आदि कलाकार है।

(2) बनारस घराना और बाज :

भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस शुरू से ही संगीत और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। यद्यपि यहाँ के तबले का इतिहास सन् 1797 में जन्में पं. रामसहाय मिश्र के काल से ही आरम्भ होता है अपने पिता पं. प्रकाश मिश्र व चाचा से तबला वादन की शिक्षा के पश्चात् उ. मोदू खाँ जो समस्त विद्वता के बावजूद तबलें में तैयारी न होने के कारण मुस्लिम संगीत समाज में 'परकटे कबूतर' के नाम से उपहास के पात्र बने हुये थे से बालक रामसहाय ने सन् 1807 से 10 वर्ष की उम्र से ही मोदू खाँ से तबला सीखना आरंभ किया, यह क्रम 12 वर्षों तक चला इसी समय उनकी पत्नी ने 500 पंजाबी गतें पं. रामसहाय को सिखायी थी। 1819 में गाजीउद्दीन हैदर की ताजपोशी के जलसे में 7 दिनों के भव्य समारोह में सिर्फ पं. रामसहाय का तबला वादन हुआ एवं सभी घराने के कलाकारों ने आपको सर्वश्रेष्ठ एवं अद्वितीय ताबलिक स्वीकार कर उनकी भुजाओं की पूजा की।

पं.अनोखेलाल

पं.कंठे महाराज

पं.किशन महाराज

पं. रामसहाय के अद्भुत तबला वादन से प्रभावित, सम्मोहित एवं चमत्कृत यूं तो लगभग पूरा बनारस ही उनसे सीखने को इच्छुक था, किन्तु उनके 5 कालजयी शिष्यों के नाम इस प्रकार है– मस्तराम, पं. रामशरण जी मिश्र, पं. प्रताप महाराज, पं. बैजूजी, पं. भगत जी और पं. यदुनंदन जी इन शिष्यों के अलावा पं. जानकी सहाय जो इनके अनुज थे, उन्होनें भी तबला वादन की शिक्षा इन से प्राप्त की। जानकी सहाय की शिष्य परंपरा में परतप्पू जी का नाम उल्लेखनीय है और इन्हीं शिष्य परम्परा में हरिसुंदर मिश्र (वाचा मिश्र) सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज, पं. विक्रमादित्य मिश्र, कुमार लाल मिश्र, पं. ननकू महाराज आदि विख्यात तबला वादक हुये।

बनारस बाज का सर्जन करते हुए इसके सर्जक पं. रामसहाय ने घोषणा की थी कि ''इस शैली का वादन करने वाला कलाकार गायन, तंत्र, सुषिर वाद्य तथा नृत्य की कुशल संगति करने के साथ–साथ स्वतंत्र तबला वादन में भी निपुण होगा। यहाँ यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बनारस बाज के निर्माण के पीछे लखनऊ, पंजाब और बनारस इन तीनों वादन शैलियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, यही कारण रहा कि पं. रामसहाय के पास लगभग सभी घरानों की अनुपम बंदिशों का अनूठा संग्रह था।

लखनऊ बाज में चाँटी के साथ लव और स्याही का जो आंशिक प्रयोग ता ना और धा जैसे वर्णों के निकास के लिए होता था, उसे यथावत रखते हुये पं. रामसहाय ने स्याही पर भी था और ता जैसे वर्णों का वादन आरंभ किया। बोलों के निकास, वादन शैली में परिवर्तन करके पं. रामसहाय ने तबले पर लगने वाली स्याही के महत्त्व को रेखांकित किया। परिणामस्वरूप बनारस का तबला शेष घरानों की

अपेक्षा अधिक खुला व जोरदार हो गया।स्तुति परणों का वादन बनारस बाज की एक उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण विशेषता मानी गयी। विभिन्न देवी देवताओं के चारित्रिक गुणों विशेषताओं का वर्णन तबला पखावज के बोलो के साथ गुंथा होता है।

लोक संस्कृति के संदर्भ में ठुमरी, दादरा, होली, कजरी जैसी विधाओं की संगति हेतु बनारस के ताबलिकों ने दादरा, कहरवा, जत, दीपचंदी, अद्धा, पंजाबी जैसे लोक एवं सुगम संगीत की तालों को भी गंभीरता से अपनाया, गत के जवाब में फ़र्द का आविष्कार किया। जहां अन्य घरानों का तबला उठान से। बनारस के कलाकार पेशकार की तरह का भी एक बजाते हैं जिसे ठेके का बाँट या विस्तार कहते हैं। बनारस के कलाकार चांटी, लव और स्याही सहित पूरे तबले का प्रयोग करते हैं। इसमें खुलापना, जोरदारी और गम्भीरता है, तो माधुर्य भी, दाहिने–बाँये का प्यार–मनुहार है, तो घात प्रतिघात भी। संचार माध्यमों की आधुनिक क्रांति ने आज बनारस बाज की विशेषताओं को बनारस तक ही सीमित नहीं रहने दिया है, जो कि एक शुभ संकेत हैं।

(3) अजराडा बाज :

उ. हबीबुद्दीन खां

दिल्ली के पास ही उत्तरप्रदेश में एक स्थान है मेरठ। मेरठ जनपद के अजराड़ा नामक ग्राम से कल्लू खाँ और मीरू खाँ नामक दिल्ली जाकर सिताब खाँ से तबला सीखा। चटक, टनक और तैयारी ने शुरू में तो लोगों को आकर्षित किया, परन्तु 60–70 वर्ष बीत जाने के बाद लोगों ने एक रसता महसूस की, यहीं दोनों भाइयों के मन में प्रश्न कौंधा कि जब तबले के साथ बाँया बजता है, भराव पैदा करता है, सहारा देता है तो बाएँ का अपना कोई अस्तिव, महत्त्व क्यों नहीं है। तत्पश्चात् दोनों भाई बाएं को विकसित करने प्राण प्रण से जुट गये और पूरा तबला दिल्ली का होते हुए भी तबला के आकाश में अजराड़ा एक अलग बाज.....वादन शैली के रूप में चमका..... घराने के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

अजराड़ा के कलाकार धातेटे या धतेटे जैसे बोलों की जगह धेतक बोल का बड़ा ही आकर्षक प्रयोग करते है। बायां को और अधिक उभारने के लिए मींड युक्त बाँया का प्रयोग भी यहाँ होता है एवं अन्य घरानों के 'ग' की जगह अजराड़ा ने 'घ' के प्रयोग पर बल दिया।

अजराड़ा घराने की नींव सन् 1780 के आसपास हुई। इस परम्परा के श्रेष्ठ कलाकारों में–मोहम्मदी बख्श, चाँद खाँ, काले खाँ, कुतुब बख्श, तुल्लन खाँ, घीसा खाँ, रमजान खाँ, गुलाम साबिर, एस.आर.चिश्ती आदि प्रमुख है। उस्ताद शम्भू खाँ इस घराने के श्रेष्ठतम कलाकार हुये एवं उनके शिष्यों में मंजू खाँ, हजारी लाल कत्थक, सुधीर सक्सेना, अमीर मोहम्मद खाँ आदि ने इस घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया। इन कलाकारों के अलावा पं. अर्जुन पाण्डेय ने अजराड़ा के तबले का बिहार में खूब प्रचार–प्रसार किया।

अजराडा बाज : दिल्ली घराने की मूल विशेषताओं के साथ उस्ताद कल्लू खाँ और भीरू खाँ ने अपनी सर्जनात्मक शक्ति का परिचय देते हुए इस वादन शैली को नयी दिशा देने का अथक प्रयास किया। अजराड़ा के कायदों में आड़ी लय को प्रधानता मिली। दाएं तबले के समान ही बांये के बोलों की प्रधानता, बांये का गमक युक्त सुन्दर प्रयोग और दाहिने तथा बांये का गमक युक्त सुंदर प्रयोग और दाहिने तथा बाँये के लड़गुथाव ने इस वादन शैली को एक नयी रंगत दी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. बाज – बाज का तात्पर्य वादन शैली
2. तत् वाद्य – तार वाद्य
3. सुषिर वाद्य – फूँक वाद्य
4. अवनद्ध वाद्य – खाल या चमड़े से मढे वाद्य
5. धन वाद्य – धातु के ठोस टुकड़ों से बने वाद्य

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अवनद्ध वाद्य है।
   (क) सारंगी (ख) बांसुरी (ग) मंजीरा (घ) डमरू
2. वाद्य कितने प्रकार के होते है।
   (क) चार (ख) पाँच (ग) दो (घ) तीन
3. सबसे प्राचीन वाद्य है।
   (क) मृदंग (ख) हारमोनियम (ग) ढोलक (घ) तबला
4. पं. रामसहाय मिश्र किस घराने से है।
   (क) बनारस (ख) अजराड़ा (ग) दिल्ली (घ) लखनऊ
5. फर्रूखाबाद घराने के प्रवर्तक है।
   (क) पं राजकुमार मिश्र (ख) पं जयलाल (ग) हुसैन अली (घ) हाजी विलायत अली
6. निम्न में से कौनसा वाद्य भिन्न श्रेणी का है।
   (क) नगाड़ा (ख) ढोल (ग) तानपूरा (घ) चंग

उत्तरमाला– 1 (घ) 2 (क) 3 (क) 4 (क) 5 (घ) 6 (ग)

लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. तबले के बाज का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
2. बनारस घराने की विशेषताऐं बताइये।
3. फर्रूखाबाद घराने के प्रमुख कलाकारों के नाम लिखिये।

विस्तृत प्रश्न–

1. अवनद्ध वाद्यों का इतिहास लिखते हुये राजस्थान के लोक संगीत के अवनद्ध वाद्यों का वर्णन कीजिये।
2. फर्रूखाबाद घराना की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. अजराड़ा घराने का विस्तृत वर्णन कीजिये।

डमरू वादन करते शिव

अध्याय 16

जीवन परिचय एवं सांगीतिक योगदान

पुरुषोत्तम दास पखावजी

आपका जन्म मार्ग शीर्ष कृष्ण 6, सम्वत् 1946 (1907) को नाथद्वारा (मेवाड़) में हुआ। आपके पिता घनश्यामजी एक प्रसिद्ध पखावजी और 'मृदंग सागर' नामक पुस्तक के लेखक थे, जब पुरूषोत्तम दास जी मात्र 12 वर्ष के थे तो पिता की छत्रछाया उठ गई अतः आप उनसे अधिक समय तक न सीख सके ऐसे समय में गोस्वामी री गोवर्धन लाल जी महाराज ने आपके भरण पोषण एवं शिक्षा सम्बंधी भार ग्रहण कर लिया एवं श्रीनाथ द्वारा मंदिर में नियुक्ति मिली। आप कुछ समय तक श्रीनाथद्वारा मंदिर मण्डल द्वारा संचालित ''श्री नाथ संगीत शिक्षण केन्द्र'' के प्रधानाचार्य भी रहे।

दुर्लभ चित्र– पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग के साथ संगति

श्री पुरुषोत्तम जी ने 1965 में भारतीय कला केन्द्र, दिल्ली में कार्यभार ग्रहण किया। आपने 1961 से 1986 तक अखिल भारतीय हवेली संगीत समारोह का आयोजन भी किया। श्री पुरुषोत्तम जी को भारत सरकार ने सन् 1964 में 'पद्मश्री' के सम्मान से अलंकृत किया एवं राजस्थान संगीत नाटक अकादमी ने सन् 1989 में सम्मानित किया। दिल्ली से सेवानिवृत्ति के पश्चात् आप श्रीनाथ संगीत शिक्षण केन्द्र श्री नाथद्वारा में प्रधानाचार्य के पद पर रहे और वही आपका 1 जनवरी 1991 को शरीरांत हुआ।

स्वामी राम शंकरदास (पागलदास)

15 अगस्त 1920 को उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में स्थित ग्राम (मझोली) में आपका जन्म हुआ था। संगीत कला के प्रति प्रबल अभिरूचि होने से तेरह वर्ष की किशोरावस्था में ही घर से निकल पड़े जिस प्रकार भी जीवनयापन हो सका, अयोध्या में रहकर संगीत की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। बिहार की रामलीला नाटक मण्डलियों में काम किया। पटना के नेपाल सिंह (अब स्वर्गीय) का प्रथम ताल गुरू के रूप में शिष्यत्व ग्रहण किया। तत्पश्चात् अयोध्या लौटकर स्वामी भगवानदास, फिर बाबा ठाकुरदास एवं श्री राममोहिनी शरण के निर्देशन में बीस वर्षों तक सतत् मृदंग साधना की साथ ही कई वर्ष तक पं. सन्तशरण मस्त से तबला और गायन की शिक्षा भी प्राप्त की। शिक्षा के सीढ़ियाँ समाप्त करके पागलदास पखावज के गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए संगीत यात्रा पर निकल पड़े। देशभर में घूम–घूम कर पखावज़ के स्वर को बुलंद किया। मृदंग तबला प्रभाकर, तबला कौमुदी आदि पुस्तकों का प्रणयन किया। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में ताल–सम्बंधी बहुत से लेख छपवाए सारा संगीत जगत इनकी साधना का लोहा मान गया। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत हुए।

अपनी संस्था 'हनुमंत विश्व कला संगीताश्रम' अयोध्या में रह कर संगीत के अध्ययन–अध्यापन का कार्य किया मृदंग–वादन कला को पुनरुज्जीवित करने में स्वामी रामशंकर पागलदास का असाधारण योगदान है। इसमें संदेह नहीं।

पं चतुरलाल

पं चतुरलाल का मानना था कि बोलों का निकास सफाई से हो और मुश्किल गतों के प्रस्तुतीकरण में खुबसुरती रहे। वादन का उनका ढंग निराला था। सदा प्रसन्न एवं मस्त रहने वाले पं चतुरलाल की अंगुलियां सदैव तालमय नर्तन करती रहती थी। वे जैसे ताल लय के सागर में डूबे रहते थे।

पं चतुरलाल का जन्म उदयपुर में हुआ। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने उस्ताद हाफिज मियां साहब से प्रशिक्षण लेना शुरू किया जो अर्से तक जारी रहा। उस्ताद थिरकवा खां से भी उन्होंने बहुत कुछ सीखा और पं रविशंकर जी से उन्होंने तबला संगति का तरीका सीखा। दक्षिण भारत के विद्वानों से भी उन्होंने बहुत कुछ ग्रहण किया। सन् 1948 में वे आकाशवाणी दिल्ली में कलाकार के रूप में कार्य करने लगे।

पं चतुरलाल एवं पं रामनारायण

सन् 1952 में पं ओंकार नाथ ठाकुर के साथ काबुल, 1955 में उस्ताद अली अकबर खां के साथ अमरीका, 1957 में पं रविशंकर के साथ अमरीका, कनाडा एवं यूरोप 1960 में शिष्ट मंडल के साथ मंगोलिया एवं रूस, 1962 में श्रीमती शरन रानी के साथ आस्ट्रेलिया एवं यूरोप तथा 1964 में अपने भ्राता विख्यात सारंगी वादक पं रामनारायण के साथ यूरोप की यात्रा की। आपके स्वतंत्र वादन एवं संगति के कई रिकार्ड निकल चुके हैं। पं चतुरलाल जी ने देश विदेश में काफी ख्याति अर्जित की।

गुणी वादक पं चतुरलाल 40 वर्ष की आयु में ही 14 अक्टूबर 1965 को दिवंगत हो गये।

पं. अनोखेलाल मिश्र

नाधिधिना के जादूगर नाम से संगीत जगत् में विख्यात पं. अनोखेलाल मिश्र का जन्म 1914 में ताजपुर (वाराणसी) में हुआ था। इनके पिता पं. बुद्धू प्रसाद मिश्र एक अच्छे सारंगी वादक थे। संगीत और संघर्ष का चोली दामन का रिश्ता होता है और ये दोनों अनोखेलाल जी को जैसे विरासत में मिले थे। बाल्यकाल में ही इनके माता–पिता का देहावसान हो गया था, इन अभावग्रस्त हालातों में आपकी दादी जानकी देवी ने भरण पोषण कर लालन पालन किया व तबला वादन की शिक्षा के लिए बनारस घराने के प्रतिष्ठित ताबलिक पं. भैरव प्रसाद मिश्र के चरणों में सौंप दिया। दोनों ही जल्द एक दूसरे से ऐसे जुड़ गये जैसे पुत्र और पिता।

उन दिनों अनोखे लाल जी 18–18 घंटा प्रतिदिन रियाज़ करते थे। लगभग 15 वर्षों के अनवरत् तबला अभ्यास व प्रशिक्षण ने आपको योग्य व गुणी कलाकार बना दिया। उनकी दृष्टि में यह कलाकार पर निर्भर करता है कि कैसे वह साधारण सी रचना को असाधारण बना देता है।नाधिंधिंना और धेरधेर किटितक जैसे सर्व साधारण द्वारा बजाए जाने वाले बोलों को उन्होनें जो लोकप्रियता और ऊँचाई प्रदान की वह किसी से छिपी नहीं है। 1953 में इलाहाबाद में आप उस्ताद विलायत खाँ के साथ संगति के लिए बैठें लगभग डेढ़ घंटे बाद दोनों ध्यानस्थ योगी की तरह संगीत समाधिक की अवस्था में पहुंच गये थे, दोनों कलाकारों का यह विकट रूप देखकर श्रोताओं में बैठें पं. ओकार नाथ ठाकुर एवं पं. विनायक राव पटवर्धन सीधे मंच पर पहुंचे और तबले तथा सितार पर हाथ रखते हुए बोले कि– "अब तुम लोग बंद करो, नहीं तो कलेजा फट जायेगा।"

इसी प्रकार उस्ताद अहमद जान थिरकवा ने एक बार उनका तबला वादन सुनकर कहा था कि– "अनोखेलाल तुम्हारा जवाब नहीं है।" वस्तुतः वह चहुमुंखी ताबलिक थे। एक बार उस्ताद नसीर मोइनुद्धीन और अमीनुद्धीन डागर के ध्रुवपद गायन के साथ खुले अंग का तबला वादन करके लागों को चकित कर दिया था।

पं. जी को 1939 में अखिल बंगाल संगीत सम्मेलन में सर्वश्रेष्ठ तबला वादक घोषित किया गया था। 1950 में कोलकता में संगीत रत्न, 1952 में काठमाण्डू में तबला सम्राट, एवं काबुल में मौसिकी तबला नवाज़ से नवाज़ा गया था। 1954 में सुर–सिंगार संसद (मुम्बई) ने संगीत रत्न, एवं 1955 में मद्रास म्यूजिक अकादमी ने सर्वश्रेष्ठ कलाकार का सम्मान प्रदान किया था। गैगरीन रोग से पीड़ित पण्डित जी ने मात्र 44 वर्ष की उम्र में 10 मार्च 1958 को इस संसार को अलविदा कह दिया। वह एक धूमकेतु की भाँति आए, अपनी तेजस्विता से सबको चकाचौंध किया और अपनी छटा दिखाकर चल दिए। उनके दोनों पुत्रों पं. रामजी मिश्र और काशीनाथ मिश्र सहित अनेक शिष्यों ने उनकी परम्परा का विकास किया।

अहमद जान थिरकवा

उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नामक स्थान पर पारम्परिक संगीतज्ञों के परिवार में सन् 1891 में जन्में अहमद जान को संगीत के संस्कार घर में ही मिले। पिता हुसैन बख्श, चाचा शेर खाँ गुणी कलाकार थे, और अहमद जान ने इन सब से सीखा, लेकिन संगीत शिक्षा की प्यास तब बुझी जब उन्होनें उस्ताद मुनीर खाँ की शागिर्दी कबूल की। तबले पर अपनी थिरकती ऊँगलियों के कारण ''थिरकवा'' नाम से प्रसिद्धि के शिखर को स्पर्श करने वाले अहमद जान को लोकप्रियता तब मिली जब उन्होनें बाल गंधर्व के प्रसिद्ध ''महाराष्ट्र नाटक कम्पनी'' में तबला वादन शुरू किया बाद में वह लखनऊ स्थित भातखंडे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक (विभागाध्यक्ष भी) पद पर आसीन हुये।

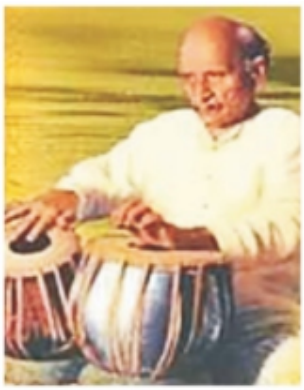

थिरकवा खाँ साहब चारों पद के तबलिये थे। स्वतंत्र वादन और संगति दोनों में ही वह दक्ष थे। दिल्ली और फर्रूखाबाद बाज उन्हें विशेष प्रिय था और इन दोनों ही वादन शैलियों में उन्हें पूर्ण दक्षता प्राप्त थी। 1953–54 में उन्हें राष्ट्रपति सम्मान मिला था। वह प्रथम ताबलिक थे जिन्हें पद्मभूषण का अलंकरण प्राप्त हुआ था।

थिरकवा साहब के वादन के कई रिकॉर्ड आकाशवाणी के पास सुरक्षित हैं। बड़े मुख के तबले पर उस्ताद की थिरकती ऊँगलियों का जादू किसी को भी इस तरह मग्न कर सकता था, इनके ढेरों शिष्यों में से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार है– पद्मभूषण, निखिल घोष, लालजी गोखले, नारायण राव जोशी, अहमद मियाँ आदि।13 जनवरी 1976 को लखनऊ से मुंबई जाने हेतु वह घर से निकले और सबसे खुदा हाफिज कहकर इस नश्वर संसार से विदा हो गए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. स्वामी रामशंकर जी वादक है

   (क) पखावज वादक (ख) सितार वादक (ग) वायलिन वादक (घ) सरोद वादक

2. पखावज वादक है।

   (क) अहमद जान थिरकवा (ख) पं अनोखे लाल (ग) पुरुषोत्तम दास (घ) निखिल घोष

3. पं अनोखेलाल मिश्र किस घराने के वादक है।

   (क) दिल्ली घराना (ख) बनारस घराना (ग) अजराडा घराना (घ) फर्रूखाबाद घराना

4. प्रथम तबला वादक जिन्हें पद्म भूषण अलंकरण प्राप्त हुआ।

   (क) रामशंकरपागलदास (ख) पं अनोखे लाल (ग) अहमद जान थिरकवा (घ) पं चतुरलाल

5. पं चतुरलाल जी का जन्म स्थान है।

(क) उदयपुर (ख) बनारस (ग) दिल्ली (घ) मुंबई

उत्तरमाला– 1 (क) 2 (ग) 3 (ख) 4 (ग) 5 (क)

विस्तृत प्रश्न

1. उस्ताद अहमद जान शिरकवा का जीवन परिचय लिखते हुये संगीत जगत में उनके योगदान का वर्णन कीजियें।
2. निम्नलिखित संगीतज्ञों का जीवन परिचय एवं उनके सांगीतिक योगदान पर प्रकाश डालियें।

(अ) पुरुषोत्तम दास पखावजी (ब) पं. अनोखे लाल

अध्याय 17

वाद्य का सचित्र वर्णन

तबला

उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त ताल वाद्य 'तबला' वर्तमान समय का सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य है। आज से लगभग 700 वर्ष पूर्व पखावज के ही आधार पर दो हिस्सों में बनाया गया, एवं प्रथम तबला वादक दिल्ली के उस्ताद सिद्धार खाँ ने पखावज के बोलों को बंद करके तबले पर नये ढंग से बजाने का प्रचलन किया, ऐसी मान्यता प्राप्त है।

तबले के दो खण्ड होते हैं जो सामने ज़मीन पर रखकर बजाये जाते है उनमें से जो दायें हाथ से बजाया जाता है उसे दायाँ तबला या 'मादी' 'नरघा' 'धुक्कड' कहते हैं और जो बायें हाथ से बजाया जाता है उसे बाँया 'डग्गा' तथा 'भांडिया' कहते हैं।

दाहिना या तबला : तबला जोड़ी का वह भाग बजाया जाता है उसे दाहिना या केवल तबला कहते हैं यह लकड़ी का बना होता है, आम, खैर, शीशम, चंदन, बबूल, कटहल तथा विजय सार की लकड़ी का बनता है इसके नीचे का भाग प्रायः आठ इंच और ऊपर का सात इंच गोलाई का होता है इसकी ऊँचाई लगभग एक फुट की होती है जिस तबले का मुख चौड़ा होता है उसे नीचे स्वर में तथा जिसका मुख कम चौड़ा होता है उसे ऊपर के स्वर में मिलाया जाता है। तबले का काठ वजनी होना चाहिए, इससे तबले पर थाप मारने से गूँज अच्छी निकलती है।

तबले के अंग

डग्गा या बाँया : तबला जोड़ी का यह भाग दाहिने की अपेक्षा कम ऊँचा, बीच का भाग अधिक आकार (व्यास) का और मुँह दाहिने की तुलना में काफी अधिक होता है। डग्गा प्रायः मिट्टी का होता था किन्तु वर्तमान में पीतल या ताँबे का बनता है। कुछ लोग बाये पेंदी में रांगा या सीसा डालकर उसे भारी करते है। फलस्वरूप उसमें गूँज अधिक निकलती है और वह इधर उधर हिलता नहीं है।

पुडी या पूड : तबले के मुख पर चमड़े से मढ़े हुये सम्पूर्ण भागों को, जिसके अन्तर्गत गजरा या चोटी, लव, स्याही आदि सम्मिलित है उसे 'पुड़ी' या 'पूड' कहते हैं। दायें तबले की पुडी पतली और बाँये की कुछ मोटे चमड़े की बनी होती है। खाल को चूने के पानी में भिगोया जाता है, उसके बाद ही पूड़ी बनाई जाती है। कोलकत्ता और बनारस की पूडी हिन्दुस्तान में बहुत मशहूर है क्योंकि इसमें थाप मारने से कुछ देर बाद गूंज टिकी रहती है।

स्याही : पुड़ी के बीचों बीच और चाँटी के करीब एक या पौन इंच की दूरी पर गोल आकृति में काले रंग का मसाला लगा रहता है उसे ही स्याही कहते है, जो लोहे के बुरादा या राख, नीला थोथा, लेई और सरेस आदि मिलाकार तैयार की जाती है। स्याही लगाने के बाद उसे कसौटी पत्थर से उसकी परत दर परत घुटाई अधिक से अधिक सुर के हिसाब से की जाती है जिसमें दरार पड़कर दाना या रखा या रेज़ा न उखड़ जाए इसी से वाद्य में गूँज (आस) पैदा होती है। गजरा : जिस प्रकार दाहिने तबले की पुडी के चारों और चमड़े की

गुथी हुई चोटी होती है उसी प्रकार बाँये में भी गुथी हुई चोटी रहती है जिसे 'गजरा' कहते हैं। इस गजरे में 16 घर होते इन घरों में चमड़े की बद्दी डाल देते हैं कुछ लोग चमड़े के स्थान पर सूत की डोरी भी डाल देते हैं।

गट्टे : दाहिने तबले में लकड़ी के लम्बे और गोल टुकड़े बद्धी के नीचे कसे होते है, उसे गट्टा कहते हैं, गट्टे प्रायः 3 इंच लम्बे और एक इंच मोटे होते हैं जो तबले को ऊँचे अथवा नीचे स्वरों में मिलाने के काम आते हैं। इनकी संख्या 8 होती है इन्हें स्वर में मिलाने के लिए गट्टों पर हथौड़ी से प्रहार किया जाता है।

चाँटी : पुड़ी के किनारे–किनारे तथा गजरे के बाद करीब आधा या पौन इंच चमड़े की एक गोट सी लगी रहती है जिस पर 'न' 'त' तबले के बोल निकलते है जिसे चाँटी या किनार कहते हैं।

लव या मैदान : दाहिने तबले के दाहिने मुख में स्याही और चाँटी के मध्य भाग को लव कहते हैं इस भाग पर तिं ता आदि वर्ण निकलते हैं। इसमें निकलने वाली सभी ध्वनियां आसदार होती है अतः उनमें देर तक गूंज बनी रहती है, वादन की दृष्टि से 'लव' तबले का बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। अच्छी पुडी की पहचान लव पर बजने पर ही पता चलती है।

बद्धी या द्वाल : मोटे, चमड़े की लगभग एक सेमी. चौड़ाई और लम्बी पट्टी को बद्धी, द्वाल या तस्मा कहते है। जो गजरे के छिद्रों के बीच से चमड़े की बद्धी डाल देते है, इसका प्रयोग तबले की पूड़ी को मुख्य शरीर से कसने के काम आता है।

कूडी : जिस प्रकार दाहिने तबले में लकड़ी होती है, उसी प्रकार बाँये में कूड़ी होती है, इसी पर चमड़ा मढ़ा जाता है यह अधिकतर मिट्टी, पीतल या ताँबे का बनता है।

गुडरी : तबले की पेंदी मे चमडे का छोटा गोल सा पहिया जैसा लगा रहता है जिनके बीच से बद्दी या डोरी पहनाई जाती है यह तबले का प्रमुख हिस्सा है इसके टूटने पर तबला बिखर जाता है।

ईडुरी : कुछ लोग इसे 'गिण्डली' भी कहते है जो रिंग नुमा होता है। ईडुरी को मूँज या कपड़े को गोल करके बनाया जाता है। इस पर रखकर तबला वादक बजाते है, ऐसा करने से गूँज बढ़ जाती है।

पखावज

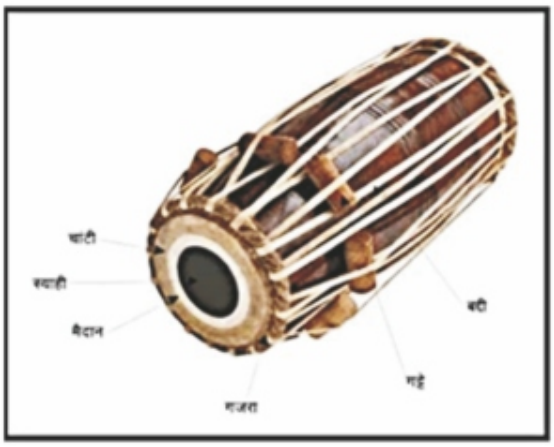

पखावज भारतीय संगीत का प्राचीनतम वाद्य है, जिसका पूर्व नाम मृदंग और आंकिक था। अनेक प्राचीन, पौराणिक ग्रंथों में इसका प्रमुखता से उल्लेख हुआ।

पखावज काष्ठ निर्मित बेलनाकार वाद्य है, जिसके दोनों मुखों पर चर्म मढ़ा होता है। दाहिने मुख पर स्याही लगी होती है तबले की तरह, जबकि बाएँ मुख पर जो अपेक्षाकृत कुछ बढ़ा होता है–आटे का लेपन किया जाता है जब स्वर नीचा करना होता है, तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं ऊँचा स्वर करने के लिए आटा कम कर देते हैं।

दायाँ तबला और बायाँ डग्गा दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिये जाएं, तो पखावज का ही रूप बन जाता है। पखावज में दायाँ बायाँ अलग–अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है यही कारण पखावज में गूँज अधिक पाई जाती है क्योंकि एक तरफ थाप देने से दूसरी और गूँज स्वयं उत्पन्न होती है।

पखावज की दायीं पूडी में चाँटी लव, स्याही, गजरा आदि अंग दायें तबले के समान ही होते हैं पखावज में ईडरी के स्थान पर बाँयी पूडी गूंथी रहती है पखावज में चाँटी का काम नहीं के बराबर होता है।

प्राचीन संगीत में पखावज का प्रयोग प्रमुखता से होता था। आज भी विभिनन प्रकार की वीणाओं की संगति, ध्रुवपद, धमार, जैसी गायकी तथा नृत्य की संगति में इसका प्रयोग किया जाता है। पं. पुरूषोत्तम दास पागल दास, रामकिशोर दास, रमाकांत पाठक, अखिलेश गुंदेचा आदि का पखावज वादन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

अपने वाद्य को मिलाने का ज्ञान

तबला मिलाने से अभिप्राय है कि तबले को किसी एक ऐसे स्वर में कर लेना, जिससे तबला सुन्दरता पूर्वक बोल सके इसके लिए स्वर का ज्ञान होना आवश्यक है।

आवश्यकता– गायन वादन आदि कार्य केवल तभी भले लगते है जब गायक का गला या वाद्यों के तार उचित रूप से स्वर में हों । इसी प्रकार तबला भी अपना वादन कार्य तभी भली–भांति कर सकता है जब वह ठीक स्वर में मिलता हो इसलिए तबले की कला में उसे स्वर में मिला लेना एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है।

तबले को स्वर में मिलाने की कला

तबला मिलाने का तात्पर्य तबले की बनावट के अनुसार तबले की ध्वनि को किसी निश्चित स्वर में स्थापित करना होता है । बाएं के मुख पूड़ी पर लगे स्याही के घेरा एवं मोटाई के अनुसार दायें अलग–अलग स्वरों में स्थापित करने से पूर्व दायें मुख का व्यास, चमड़े को मोटाई और स्याही की बनावट का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक होता है। कम समय में तबले की ध्वनि को सारंगी, हारमोनियम, तानपुरा, सितार, शहनाई आदि के स्वर के अनुसार स्थापित करना या मिलाना एक कला है ।

मौलवी मो. इसहाक खां ने करीब 105 साल पहले रिसालाए तबला नवाजी पुस्तक उर्दू में लिखा था । उसमें उन्होंने तबला मिलाने की विधि को संक्षेप में लिखा है–कि जिस स्वर में गाना या कोई साज बजाना मंजूर होता है उसी सुर में तबला, जिसे दायां भी कहते हैं मिला लेते हैं और सब तरफ से एक ही स्वर में मिलाया जाता है, और इसको मिलाने का कायदा यह है कि हथौड़ी से अड्डों (गट्टों) को नीचे की तरफ ठोकते है जब थोड़ी सी कसर सब तरफ से हम आवाज होने में रह जाती है तो गजरे को ठोंक–ठोंक का हम आवाज करते है और ऊँगली से बजा–बजा कर देखते जाते हैं। चढाना मंजूर होता है तो नीचे की तरफ जर्ब (चोट) लगाते हैं। उतारना मकसूद होता है तो उलटी जर्ब नीचे की तरफ से ऊपर को लगाते है और जब मिल जाता है तो थाप देकर देखते है कि अच्छी तरह से मिल गया या नहीं । थाप लगाने का कायदा है कि पट हाथ को किसी कदर तिरछा करके सब उँगलियाँ सीधी रखते हैं और पांचवी ऊँगली यानी छुंगली से टेबल के मैदान में निस्फ (आधा) स्याही दबाकर जर्ब लगाते ही हाथ उठा लेते है चौथी ऊँगली हाथ की झोंक से अपने आप लग जाती है ताकि खूब बड़ी आवाज सुरीली निकले और हर तरफ से हम आवाज होने यानी मिल जाने का हाल मालूम हो जाये ।बाएं का सुर हमेशा तबले से नीचा रहता है और इसके लिए कोई खास सुर मिलाने का मुकर्रर नहीं है । सिर्फ इतना खींच लेते है कि उतरा हुआ मालुम पड़े और गूँजदार आवाज बेतकल्लुफ निकलती रहे । जब यह ढीला हो जाता है तो इसका बाध (बद्धी) खींच देते हैं। तबले की तरह ठोंक कर सब तरफ से एक ही सुर में नहीं मिलाया जाता है और चूँकि इसको बाएं हाथ से बजाते है इस वास्ते इसको बायाँ कहते है । तबले का सुर हमेशा बायें के मुकाबिल में टीप में रहना चाहिए ताकि हर वक्त दोनों के सुरों की आस मिलती रहे और ज्यादा लुत्फ आये ।

मूल सिद्धान्त

- चौड़े मुहं का तबला नीचे स्वर में तथा छोटे मुहं का ऊँचे स्वर में अच्छा बोलता है।
- तबला, गायक वादक के स्वर तथा राग के अनुसार सा. प, सां अथवा म में मिलाया जाता है।
- सितार आदि वादन में तथा स्त्रियों के गायन में तबला तार सां में मिलाया जाता है।
- तबला अधिक ऊँचा नीचा होने पर गट्टों को तथा थोडा ऊँचा– नीचा होने पर गजरे को ठोंकते हैं।
- स्वर ऊँचा करने के लिए गट्टे या गजरे पर उपर से तथा नीचा करने के लिए नीचे से प्रहार करते हैं।

विधि– तबला मिलाने की दो विधियाँ प्रचलित है–प्रथम कुछ लोग आमने–सामने के घरों को मिलाते हुए 16 घरों को मिला लेते है। जैसे प्रथम में तबले के किसी एक घर को मिलाकर फिर उसके उलटे अर्थात नवें घर को मिला लेते हैं। इसके बाद पाँचवा घर मिलकर फिर उसके ठीक सामने वाला यानि तेरहवां घर मिला लेते हैं। इसके बाद तीसरा, ग्यारहवां तथा सातवाँ, पन्द्रहवां घर मिलाते हैं। इस प्रकार आमने–सामने के घरों को मिला लेते हैं।

दूसरी पद्धति में किसी एक घर में प्रारंभ कर क्रमशः एक के बाद दूसरा, तीसरा, चौथा आदि सभी घर मिला लेता है। दोनों ही विधियाँ ठीक है । मिलाते समय एक हाथ से तबले को बजाते हुए ऊंचाई–निचाई का अंदाजा लगाते है। दूसरे हाथ से हथौड़ी द्वारा गट्टों पर अथवा गजरे पर आवश्यकतानुसार ऊपर नीचे आघात करते है।

बायाँ या डग्गा किसी विशेष स्वर में नहीं मिलाया जाता है। आवश्यकतानुसार हथौड़ी से गजरे पर आघात करके उतारा या चढ़ाया जाता है। कुछ लोग बाएं में बद्धी के स्थान पर डोरी का प्रयोग करते है और इसमें गोल छल्ले पहना देते हैं, इसका प्रयोग बायाँ उतारने और चढाने में किया जाता है।

हथौड़ी– तबला या पखावज मिलाने के लिए एक विशेष तरह की पीतल या लोहे की हथौड़ी होती है, जिसका एक सिरा पतला और चपटा होता है उसी भाग की उपयोगिता पख़ावज के बाएं पर लगा आँटा खुड़चकर निकालने के लिए होता है ।

म्हत्वपूर्ण बिन्दु

कायदा	–	तबला वादन की विशेष सामग्री
पलटा	–	कायदे के बोलों को उलट पुलट कर बजाना
वर्ण	–	तबले के बोल
ध्रुवपद	–	एक गीत प्रकार
गत	–	किसी भी राग में सितार के बोलों की तालबद्ध रचना
शास्त्रीय रचना	–	शास्त्रों पर आधारित रचना
विलम्बित ख्याल	–	गायन का एक प्रकार
मसीतखानी गत	–	विलम्बित लय में सितार की गत
रजाखानी गत	–	द्रुत लय में सितार की गत
नौटंकी	–	नाटक का अभिनय करना।
नाट्यशास्त्र	–	भरतमुनि द्वारा रचित ग्रंथ
लोक नृत्य	–	प्रसंगानुसार जनमानस द्वारा रचे गये नृत्य
मिजराब	–	सितार बजाने की लोहे के तार की अंगुठी
गज	–	वाद्य बजाने की छड़ी
लोकनाट्य	–	लोक जीवन के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. तबले के मुख पर चमड़े से मढ़ा भाग कहलाता है–

   (क) पूड़ी (ख) स्थाई (ग) गट्टे (घ) गजरा

2. तबले के पेंदी में चमड़े का छोटा गोल पहिये जैसा भाग कहलाता है–

   (क) गजरा (ख) गुडरी (ग) डग्गा (घ) मैदान

3. तबले में गट्टे की संख्या कितनी होती है–

   (क) 6 (ख) 8 (ग) 4 (घ) 9

4. आटे का लेपन किस वाद्य में किया जाता है–

   (क) तबला (ख) ढोल (ग) पख़ावज (घ) नगाड़ा

5. पख़ावज की संगति की जाती है–

(क) ध्रुपद गायकी में (ख) ग़जल में (ग) लोकगीत में (घ) ठुमरी में

6. तबला है–

(क) अवनद्व वाद्य (ख) सुषिर वाद्य (ग) तत् वाद्य (घ) घन वाद्य

उत्तरमाला– 1 (क) 2 (ख) 3 (ख) 4 (ग) 5 (क) 6 (क)

लघुउत्तर प्रश्न–

1. दाहिने एवं बाँये तबले का काठ किस का बना होता है ?
2. स्याही किस की बनती है ?
3. तबले में गट्टे क्यों लगाये जाते है ?

विस्तृत प्रश्न–

1. तबला का पूर्ण अंग वर्णन कीजिये।
2. पखावज का अंग वर्णन कीजिये।

भारतीय संगीतकारों पर जारी डाक–टिकिट

अध्याय 18

क्रियात्मक कार्य हेतु संदर्भ–सामग्री

तालरूपक

मुखड़े

	X			2		3	
1	तीं	तीं	ना	धीं	ना	धीं	ना
2	तींतीं	नात्रक	तिंना	धींधीं	नात्रक	धींधीं	नाना
3	तींतीं	नातीं	नातीं	धाधा	ऽधा	धातीं	नाना
4	तीकृ	तींतीं	नात्रक	धीं	नाना	धींधीं	ना

राजा छत्रपति सिंह जूदेव

पेशकार

	X			2		3	
1	तिन	ताता	त्रक	धिन	धिन	धागे	त्रक
2	तिन	त्रक	धिन	धिन	नाना	त्रक	धिन
3	तिरकिट	धिन	नाना	तिरकिट	नाना	धिं	धिं
4	तिंन	ताता	तिंतिं	धागे	न	धा	तिरकिट
5	तिरकिट	नधा	तिरकिट	धागे	नधा	त्रक	धिंन

कायदा

	X			2		3	
1	धींना	ऽधा	तिरकिट	धींना	ऽधा	तिरकिट	धींना
	तींना	ऽता	तिरकिट	तींना	ऽता	तिरकिट	धींना
2	धाधा	धींना	ऽधा	तिरकिट	धींना	ऽधा	तिरकिट
	ताता	तींना	ऽता	तिरकिट	तींना	ऽधा	तिरकिट
3	धींना	ऽधा	तिरकिट	धाधा	धींना	ऽधा	तिरकिट
	तींना	ऽता	तिरकिट	ताता	तींना	ऽधा	तिरकिट

4	धाधा	ऽधा	तिरकिट	धींना	ऽधा	तिरकिट	धींना
	ताता	ऽता	तिरकिट	तींना	ऽता	तिरकिट	धींना
5	धाते	ऽधा	धिरकिट	धातीं	धाऽ	धातिर	किटतक
	ताते	ऽता	तिरकिट	धातीं	धाऽ	धातिर	किटतक

गतें

	X			2		3	
1	धीं	धींना	कता	धींधीं	नाधीं	धींना	तिरकिट
	तीं	तींना	कता	तींतीं	नाधीं	धींना	तिरकिट
2	धिंना	कृधान	धिंना	कृधान	धगनधा	किटतक	गिनतक
	तिंना	कृतान	तिंना	कृतान	धनगधा	किटतक	गिनतक

रेलें

	X			2		3	
1	तगतिर	किटतक	तगतिर	किटतक	तगतिर	किटतक	तिरकिट
2	तिरकिट	तिन्ना	तिरकिट	तातिर	किटतक	तातिर	किटतक
3	तातिर	किटता	तिरकिट	धिङनग	तिरकिट	नगतिर	किटतक
4	धातिर	किटधा	तिरकिट	धाधा	तिरकिट	धातिर	किटतक
5	धातिर	किटतक	तिन्ना	तिरकिट	धातिर	किटतक	तिरकिट

झपताल

मुखड़ा

	X		2			0		3		
1	धीं	ना	धीं	धीं	ना	तीं	धातीं	धाधा	तींधा	धातीं
2	धीं	ना	धीं	धीं	ना	तिटतिट	धाऽ	तिटतिट	धाऽ	तिटतिट
3	धीं	ना	धीं	धीं	ना	तीं	धागे	तिट	धातीधागे	धिनगिन

तिहाई दमदार

1	धागेतिट	तागेतिट	धाऽ	ऽऽ	धागेतिट	तागेतिट	धाऽ	ऽऽ	धागेतिट	तागेतिट

बेदम तिहाई

2	धातीधागे	धिनाधिन	धाती	धा,धाती	धागेधिन	गिनधा	तींधा	धातींधागे	धिनगीन	धाती
	X		2			0		3		

पेशकार

	X		2			0		3		
पेशकार	धीक	धिंता	धातीं	धाधा	धिंता	ऽधा	धिंत	धातीं	धाधा	तिंता
	तीक	तिंता	तातीं	ताता	तिंता	ऽता	थ्तंता	धातीं	धाधा	धिंता
	X		2			0	.	3		
पल्टा 1	धीक	धिंता	धीक	धिंता	धाती	धाधा	धिंता	धाती	धाधा	तिंता
	तीक	तिंता	तीक	तिंता	ताती	ताता	तिंता	धाती	धाधा	धिंता
पल्टा 2	धीक	धीक	धिंता	धीक	धिंता	ऽधा	धिंता	धातीं	धाधा	तिंता
	तीक	तीक	तिंता	तीक	तिंता	ऽता	तिंता	धातीं	धाधा	धिंता
पल्टा 3	धिंता	धाधा	धिंता	धाधा	धिंता	ऽधा	धिंता	धातीं	धाधा	तिंता
	तिंता	ताता	तिंता	ताता	तिंता	ऽता	तिंता	धातीं	धाधा	धिंता
पल्टा 4	धातीं	धाधा	धिंता	धातीं	धाधा	धिंता	ऽधा	धिंता	धाधा	तिंता
	तातीं	ताता	तिंता	तातीं	ताता	तिंता	ऽता	तिंता	धाधा	धिंता
तिहाई	धातीं	धाधा	तातीं	ताता	तिंता	ऽता	तिंता	धातीं	धाधा	धिंता
	धाधा	धिंता	धाऽ	ऽऽ	धाधा	धिंता	धाऽ	ऽऽ	धाधा	धिंता

दिल्ली–घराना

	X		2			0		3		
कायदा1	धागे	तिरकिट	धिन	गिन	धागे	नाधा	तिरकिट	धागे	तिन	गिन
	तागे	तिरकिट	तिन	गिन	तागे	नाता	तिरकिट	धागे	तिन	गिन
पल्टा 1	धागे	तिरकिट	धिन	गिन	धिन	गिन	धागे	तिरकिट	तिन	गिन
	तागे	तिरकिट	तिन	गिन	तिन	गिन	धागे	तिरकिट	धिन	गिन
पल्टा 2	धागे	तिरकिट	धागे	तिरकिट	धिन	गिन	धागे	तिरकिट	तिन	गिन
	तागे	तिरकिट	तागे	तिरकिट	तिन	गिन	धागे	तिरकिट	धिन	गिन
पल्टा 3	तिरकिट	धिन	गिन	धिन	गिन	धागे	नाधा	तिरकिट	तिन	गिन
	तिरकिट	तिन	गिन	तिन	गिन	तागे	नाता	तिरकिट	धिन	गिन
पल्टा 4	धिन	गिन	तिरकिट	धिन	गिन	धागे	नाधा	तिरकिट	तिन	गिन
	तिन	गिन	तिरकिट	तिन	गिन	तागे	नाता	तिरकिट	धिन	गिन
तिहाई	धागे	तिरकिट	धिन	गिन	धाऽ	धिन	गिन	धाऽ	धिन	गिन

कायदा (2)

कायदा2	धागे	तिट	धागे	तिट	धिना	धागे	तिट	धागे	तिन	गिन
	तागे	तिट	तागे	तिट	केना	तागे	तिट	धागे	धिन	गिन
	X		2			0		3		
पल्टा 1	धागे	तिट	तिट	धागे	तिर	तिट	धेना	धागे	तिन	गिन
	तागे	तिट	तागे	तिट	केना	तागे	तिट	धागे	धिन	गिन
पल्टा 2	तिट	तिट	धागे	तिट	तिट	धागे	धेना	धागे	तिट	गिन
	तिट	तिट	तागे	तिट	तिट	तागे	धेना	धागे	धिन	गिन
पल्टा 3	धाति	टधा	तिट	धाऽ	तिट	धाऽ	धेना	धागे	तिन	गिन
	ताति	तटा	तिट	ताऽ	तिट	ताऽ	धेना	धागे	धिन	गिन
पल्टा 4	तिट	धेना	धिन	गिन	धिन	गिन	धेना	धागे	तिन	गिन
	तिट	केना	तिन	गिन	तिन	गिन	धेना	धागे	धिन	गिन
तिहाई	धेना	धागे	धिन	गिन	धाऽ	धाऽ	धाऽ	धेना	धागे	धिन
	गिन	धाऽ	धाऽ	धाऽ	धेन	धागे	धिन	गिन	धाऽ	धाऽ

एकताल

पेशकार

	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
	X		0		2		0		3		4	
1	धीक्र	धिंधा	ऽधा	धातिंत	धाधा	धिंता	तीक्र	तिंता	ऽता	धातिंत	धाधा	धिंता
2	धातिंन	धाधा	धिंता	तकधिंडा	ऽनधा	धिंता	तातिंन	ताता	तिंता	तकधिंडा	ऽनधा	धिंता
3	किडनग	तिरकिट	धाकिट	तकधिं	धाधा	धिंता	किडनग	तिरकिट	ताकिट	तकधिं	धाधा	धिंता

अब निम्न तिहाई लगाकर इसे समाप्त करके पुनः एक बार ठेका बजाइए –

4	किडनग	तिरकिट	धाकिट	तकधिं	तिरकिट	धातीं	धा	तिरकिट	धातिं	धा	तिरकिट	धातीं

ठेका बजाने के बाद निम्न कायदों को बजाइए

	X		0		2		0		3		4	
1	धातिर	किटधा	गेना	धागे	तिन	गिन	तातिर	किटता	गेना	धागे	तिन	गिन
2	धातिर	किटतक	धिरधिर	किटतक	तींना	किटतक	धातिर	किटतक	धिरधिर	किटतक	तींना	किटतक
	तातिर	किटतक	तिरतिर	किटतक	तींना	किटतक	धातिर	किटतक	धिरधिर	किटतक	तींना	किटतक
3	धाधा	तिरकिट	धातिर	किटतक	धिरधिर	धिडनग	धागेतिट	धिरकिट	धिनधिड	नकतक	तिरतिर	किडनग
	ताता	तिरकिट	तातिर	किटतक	तिरतिर	किडनग	धागेतिट	धिरकिट	धिनधिड	गतक	तिरतिर	किडनग
4	धातिर	किटधा	गेना	धातिर	किटधा	गेना	धातिर	किटधा	गेना	धागे	तिन	तिन
	तातिर	किटता	गेना	तातिर	किटता	गेना	तातिर	किटता	गेना	धागे	धिना	गिन

तिहाई

X		0		2		0		3		4	
धातिर	किटधा	गेना	धागे	धिन	गिन	धाऽ	धागे	धिन	गिन	धाऽ	धागे
धिन	गिन	धाऽ	ऽऽ	ऽऽ	धातिर	किटधा	गेना	धागे	धिन	गिन	धाऽ
धागे	धिन	गिन	धाऽ	धागे	धिन	गिन	धाऽ	ऽऽ	ऽऽ	धातिर	किटधा
गेना	धागे	धिन	गिन	धाऽ	धागे	धिन	गिन	धाऽ	धागे	धिन	गिन

गतें

	X		0		2		0		3		4	
1	धिनकत	किटधागे	तिडधिडा	धिडनक	तिटतिट	धिडनग	किनकत	किटताके	तिटधिडा	धिडनक	तिटतिट	धिडनक
2	धाऽतिर	धिडनग	तिरकिट	तकताड	नगतक	धिरकिट	ताऽतिर	किडनग	तिरकिट	तकता	नगतक	धिरकिट

परन

1	धातिरकिटधा	तिरकिटधा	गीऽनग	तिरकिटतूना	धाधातिरकिट	नगतिरकिडनग
	X		0		2	
	तातिरकिटता	तिरकिटता	गीऽनग	तिरकिटतूना	धाधातिरकिट	नगतिरकिडनग
	0		3		4	
2	धातिरकिटधा	तिरकिटधा	गीऽनग	तिरकिटतूना	धाधातिरकिट	नगतिरकिडनग
	X		0		2	
	तातिरकिटता	तिरकिटता	गीऽनग	तिरकिटतूना	धाधातिरकिट	नगतिरकिडनग
	0		3		4	

रेला

1	धातिरकिटतक	तिद्वाऽता	धातिरकिटतक	तातिरकिटतक	धातिरकिटतक	तिद्वाऽता
	X		0		2	
	धाऽ	धातिरकिटतक	तिद्वाऽता	धाऽ	धातिरकिटतक	तिद्वाऽता
	0		3		4	

रेला बजाने के बाद वादन समाप्त करने से पूर्व तिहाई बजाकर वादन समाप्त किया जा सकता है।यह दमदार तिहाई है जो सम से सम तक बजाने पर ठीक आयेगी।

	X		0		2		0		3		4	
1	तिटकत	गदिगन	धा	ऽ	ऽ	तिटकत	गदिगन	धा	ऽ	ऽ	तिटकत	गदिगन

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ताल रूपक की गत एवं रेला लिखिये।
2. ताल एकताल का ठेका एवं पेशकार लिखिये।
3. ताल झपताल के मुखड़े लिखिये।

दक्षिणी–तालवाद्य–चेंडा

दक्षिणी–ताल वाद्य –तविल

(खण्ड—ई)

कथक-नृत्य

अध्याय 19

अ. परिभाषाएँ
ब. गीत–शैलियों का ज्ञान

अ. परिभाषाएँ

नाट्य, नृत्त, तथा नृत्य

गीतंवाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।

शारंगदेव–कृत संगीत रत्नाकर के अनुसार गायन वादन एवं नृत्य तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते हैं। तीनों कलाएँ एक दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी एक सूत्र में बद्ध हैं। तीनों कलाओं के परस्पर आपसी संबंध के कारण ही संभवतः संगीत मनीषियों ने "संगीत" नाम सर्जित किया है। शारंगदेव की उपर्युक्त वर्णित परिभाषा में 'नृत्य', 'नर्तन' अथवा 'नटन' शब्द से वर्णित अंग के तीन भेद माने जाते हैं–

नर्त्तन		
नाट्य	**नृत्त**	**नृत्य**
रसाश्रित	ताल एवं लयाश्रित	भावाश्रित
वाक्याभिनययुक्त	भावशून्य	संयुक्त

''एतच्चतुर्विधोपेतं नटनं त्रिविधं स्मृतम्। नाट्य नृत्यं नृत्तमिति मुनिभिर्भरतादिभिः।।'' –(अभिनय दर्पण **से)**

अर्थात् चार प्रकार के अभिनय (आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य) से युक्त नटन (नर्तन)–क्रिया भरत आदि मुनियों के अनुसार तीन प्रकार की होती हैं – नाट्य, नृत्त, तथा नृत्य। नृत्त या नृत्य की अपेक्षा वर्तमान में अंगेजी शब्द डांस (Dance) का प्रचलन अधिक है।

नाट्य– **"नाट्य तन्नाटकं चैव पूज्यं पूर्वकथायुतम्"।** – अभिनय दर्पण

अर्थात्– प्राचीन कथा अथवा चरित्र पर आधारित अभिनय नाट्य कहलाता है, जिसे जन मानस में सम्मान प्राप्त हो।

नाट्य को उक्त कथन में और अधिक सरलता से समझाया गया है – **"वाक्यार्थाभिनयरसाश्रयं नाट्यम्"।** अर्थात् किसी वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रदर्शित या व्यक्त कर रस (आनंद) सर्जन, नाट्य है। नाट्य का अर्थ नाटक है।किसी वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रकट करके, जो रस उत्पन्न किया जाता है, उसे नाट्य कहते हैं। दैनिक जीवन में मनुष्य के चारों ओर जो कुछ क्रिया–कलाप होते रहते हैं, वे सब नाट्य हैं। मन के भावों को अंग चेष्टा द्वारा प्रकट करना अभिनय कहलाता है। नाट्य के अंतर्गत चार अंग समाहित है – (1) आंगिक (2) वाचिक (3) आहार्य (4) सात्विक। नाट्य के प्रणेता के रूप में भरत को ही माना जाता है। भरत का नाट्य शास्त्र इस परम्परा का मूल ग्रंथ है।

नृत्त– **"भावाभिनयहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते"** अभिनय दर्पण अर्थात–अभिनय एवं भावरहित–नर्त्तन को नृत्त कहा जाता है। ताल और लय के साथ शुद्ध नर्तन क्रिया को नृत्त कहते हैं। इसमें भावनाओं के प्रदर्शन का महत्त्व नहीं होता, केवल लय एवं ताल के साथ अंग संचालन आवश्यक होता है। शास्त्रों में 'नृत्त' क्रिया को शुभ

माना गया है। यह कला नित्य ही शुभ अवसरों पर जैसे – राज्याभिषेक महोत्सव, विवाह, देवमूर्ति की यात्रा, पुत्रजन्म, गृहप्रवेश, आदि मांगलिक कार्यों में किया जाने वाला कला प्रदर्शन है। अभिनय तथा भाव रहित नर्तन को नृत्त कहते हैं। दशरूपक के आचार्य धनञ्य ने नृत्त का अन्य शब्दों में वर्णन लिखा है –**'नृत्ततालल्याश्रयम्'** अर्थात् – नृत्त ताल ओर लय पर आश्रित है। कथक के अंतर्गत ठाठ, परन, टुकड़े, ततकार के पलटे तथा उपज अंग में गणना आधारित कार्य शुद्ध नृत्त की श्रेणी में आते हैं। सभी शास्त्रीय नृत्यों में कथक का नृत्त अंग अति विशिष्टता लिए हुए है इसके अतिरिक्त 'सिंक्रोनाइज्ड जिमनास्टिक', 'एरोबिक्स' एवं 'बैलें' आदि इसके उदाहरण हैं।

नृत्य– **"रस भाव व्यंजनादियुक्तं नृत्य मितीर्यते"**– अभिनय दर्पण

रस एवं भाव व्यंजना युक्त नर्त्तन क्रिया नृत्य कहलाती है। नृत्य के अंतर्गत ताल लय पर अंग संचालन के साथ भावों का समन्वय होता है। जब नाट्य और नृत्त, दोनों मिल जाते हैं, तो वह 'नृत्य' बन जाता हैं अर्थात्– किसी भी शब्द का अभिनय जब ताल और लय के साथ किया जाये, तो वह 'नृत्य कहलाता है। कथक नृत्त में जब केवल पैरों का काम दिखाया जाता है, तो उस समय उसकी संज्ञा 'नृत्त' होती है, और नृत्त के साथ भिन्न–भिन्न भावों का प्रदर्शन किया जाता है, तो वह नृत्य कहलाता है। नृत्य भाव एवं रस पर आधारित है।

तांडव एवं लास्य

तांडव

जिस नृत्य में वीर–रस का प्रदर्शन होता है, उसे 'तांडव' कहते हैं। तांडव नृत्य पुरुषों के लिए अधिक उपयुक्त है, क्योंकि उसमें कुछ ऐसे अंगहारों का प्रदर्शन किया जाता है, जो पुरुष प्रधान हैं। तांडव स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा किये जा सकते हैं। शास्त्रों के अनुसार सात "ताण्डव नृत" हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं–1 आनन्द 2 संध्या 3 कालिका 4 त्रिपुर 5 संहार । इसके अतिरिक्त दो तांडव, जो शिवजी ने पार्वती के साथ किये हैं – 6 गौरी 7 उमा। वीर रस, वीभत्स रस, भयानक रस, प्रलयकारी रूप दर्शाने वाला नृत्त ताण्डव नृत्त के अन्तर्गत आते हैं। तांडव में शिव की पंच क्रियायें, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव एवं अनुग्रह को प्रदर्शित किया जाता है। नृत्य में वीरता, रौद्रता, आवेश एवं क्रोध का भाव रहता है। शास्त्रों में तांडव का प्रतीक 'शिव' को माना है।

लास्य

स्त्री श्रृंगार और कोमलता की प्रतीक है, इसलिए उसके द्वारा केवल नृत्य का प्रदर्शन ही लोक–रंजक होता है। जिस तरह तांडव स्त्री–पुरूष दोनों के द्वारा किया जा सकता है, उसी तरह लास्य भी स्त्री–पुरुष दोनों के द्वारा किया जा सकता है। शास्त्रोंक्त मान्यता है कि लास्य के अंगों को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करने हेतु श्री कृष्ण ने 'रास–मण्डल' की स्थापना की। रास के अन्तर्गत अनेक प्रकार के नृत्यों का जन्म हुआ। रास–नृत्य को 'हल्लीसक' भी कहते हैं। इसमें गीत, वाद्य, नृत्त और अभिनय सभी का समावेश था। श्रृंगार, भक्ति, वात्सल्य आदि रसों से युक्त जिनमें माधुर्य, सुन्दरता, कोमलता आदि हो, लास्य नृत के अन्तर्गत आते है। श्रृँगार प्रधान, लावण्यमयी एवं विलासयुक्त नृत्य ही लास्य नृत्य कहलाते हैं। शास्त्रों में लास्य का प्रतीक 'पार्वती' को माना है।

चतुर्विध अभिनय

'अभि' अर्थात् 'की ओर' तथा 'नय' अर्थात् 'ले जाना' अर्थात् रचनाकार के भाव की ओर दर्शकों को ले जाना भारतीय सौंदर्यशास्त्र में अभिनय को संप्रेषण एवं प्रदर्शन कलाओं के अंतर्गत माना है। रंगमंच पर श्रोता व दर्शकों को भाव व रसास्वादन कराने की क्रिया को अभिनय कहा है। अभिनय का सम्बन्ध 'नाट्य' से हैं। मनुष्य की चेष्टाएँ–सोचना, बोलना, करना आदि का नाट्य प्रयोग अभिनय है। रूपकों के अर्थ को आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनय द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दर्शकों के मन में रसोत्पत्ति करना अभिनय है। अभिनय के चार अंग हैं–**आंगिकों वाचिकश्चैन आहार्य सात्विकस्तथा।**

चत्वारोऽभिनया होतारः विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः।। –नाट्यशास्त्रम्

आंगिक– अभिनय प्रस्तुति में शारीरिक, अंग, प्रत्यंग एवं उपांग के प्रयोग द्वारा भाव अभिव्यक्ति आंगिक है।

6 अंग – सिर, हाथ, वक्ष, पार्श्व, कटि एवं पैर

6 प्रत्यंग – कंधे, बांहे, पीठ, उदर, उरू, जंघाएँ

12 उपांग – नेत्र, भौंह, पलक, पुतलियाँ, कपोल, नासिका, जबड़ा, अधर, दांत, जिव्हा, ठोड़ी एवं मुख।

उपर्युक्त अंग, प्रत्यंग एवं उपांग आंगिक अभिनय के साधन हैं, जिनके माध्यम से मनोगत भावों को प्रकट करना अभिनय का आंगिक पक्ष है। पनघट से पानी लाती नायिका, शर्माना, वृद्ध व्यक्ति की चाल आदि सब।

वाचिक– कविता, शब्द, वाणी, गीत द्वारा प्रस्तुत अभिनय वाचिक अभिनय कहलाता है। **महर्षि भरत** ने वाक् को नाट्य का शरीर कहा है। आंगिक, सात्विक एवं आहार्य तीनों अंग वाक्यार्थों को ही अभिव्यक्त करते हैं। अतः 'वाचिक' अंग का महत्त्व अधिक है। नृत्य करते समय वंदना, आमद, छंद, भजन, पद, ठुमरी तथा नाट्य में संवाद आदि में वाचिकाभिनय का योगदान रहता है।

आहार्य– नृत्य अथवा नाट्य में विभिन्न पात्रों की भिन्न–भिन्न प्रकृति, अवस्था आदि को वस्त्र, आभूषणों, रूप सज्जा एवं मंच पर प्रस्तुत आकृतियों द्वारा प्रभावी बनाना आहार्य अंग कहलाता है। यदि पात्र उचित आहार्य के साथ आंगिक, वाचिक एवं सात्विक अभिनय करता है, तो अभिव्यक्ति में आसानी एवं रसास्वादन में अनूकुलता रहती है। आहार्य द्वारा दर्शकों को देश, काल, प्रकृति व अवस्था के ज्ञान में सुगमता रहती है।

सात्विक – अभिनय दर्पण में आंगिक, वाचिक एवं आहार्य अभिनय अंग को बाह्य माने गये हैं। अभिनय की क्षमता का सफल प्रदर्शन सात्विक द्वारा ही सिद्ध माना है। सात्विक अभिनय को साक्षात् शिव का स्वरूप कहा है। पसीने–पसीने होना, रोमांचित होना, आंसू निकलना, वाणी का लडखड़ाना, मूर्छित होना, मुखाकृति में भावयुक्त बदलाव लाना, स्तंभित होना आदि सात्विक अभिनय कहलाते हैं।उपरोक्त चारों प्रकार के अभिनय के सूक्ष्म अभ्यास द्वारा कला को शुद्ध व प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

प्रमेलु/प्रमलु

परमेलु, परमिलु, प्रिमलु आदि नामों से प्रचलित नृत्य की एक विशेष बंदिश है। 'पर' अर्थात् दूसरा तथा 'मिलु' अर्थात् मिलना 'दूसरे का मिलना'। किन्हीं दो या उससे अधिक प्रकार के बोलों के मेल से बनी रचना प्रमेलु कहलाती है।'प्रमलु' की बंदिश में नाच के बोलों के साथ ढोलक, पखावज, नगाड़ा, मंजीरा, तबला, झांझ आदि ताल वाद्यों के बोलों के साथ कभी–कभी पक्षियों की बोलियों को भी सम्मिलित किया जाता है।कथक नृत्य की सभी शैलियों में उक्त प्रकार की बंदिशों को अपनाया गया है, और करीब–करीब सभी नर्त्तक अपने–अपने ढंग से 'परमिलू' की बंदिश नाचते हैं। 'परमिलू' की बंदिश के टुकड़े कथक नृत्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। कुकु, झिझि, त्वं किटिकिट, कूक, खिर्र, धुन धुन थर्र आदि इस प्रकार के बोल 'परमिलू' की बंदिश में अधिक प्रयोग किये जाते हैं।

जैसे– **जगजग थोऽऽम जगजग थोऽऽम जगथोऽ ऽमजग थोऽऽम जगजग,**
जगजग जगजग जगजग थोऽऽम झेंऽकुकु झेंऽकुकु झननन झननन,
झेंऽकुकु धिलांग झेंऽकुकु धिलांग झेंऽकुकु झेंऽकुकु धिलांग धिलांग,
झेंऽकुकु धिलांग धाऽऽऽ झेंऽकुकु धिलांग धाऽऽऽ झेंऽकुकु धिलांग।

संयुक्त हस्त–मुद्रा

मनोभावों को व्यक्त करने में जो संकेत सहायक सिद्ध हुए, कालान्तर में उन्हें मुद्रा की संज्ञा प्रदान की गई। नर्त्तक की दृष्टि से वाणी के अभाव में आन्तरिक इच्छाओं या भावों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हाथों एवं अँगुलियों को, जो एक विशिष्ट रूप देकर उनका संचालन करते हैं, उस संचालन के विशिष्ट रूप को ही 'मुद्रा' कहते हैं। प्राचीनकाल से ही नृत्य में मुद्रा का एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। नर्तक के लिए मुद्रा एक भाषा का कार्य करती है, जिसके माध्यम से वह अपने भावों को व्यक्त करता है, तथा अपनी मुद्राओं द्वारा ही वह दर्शक तक अपने भावों को पहुँचाता है।'मुद्रा' शब्द के अर्थों में क्रय–विक्रय में उपयोग आने वाला माध्यम, चिह्न या मोहर तथा आंतरिक इच्छा व भावों को व्यक्त करने हेतु हाथों व अँगुलियों का विशिष्ट रूप में संचालन प्रमुख है। भाषा व शब्द के अभाव में भी हस्त मुद्रा भाव संप्रेषण किया जा सकता है। मूक बधिर व्यक्तियों की भाषा तो पूर्णतः मुद्राओं पर आधारित है।अभिनय दर्पण में दो प्रकार की हस्त मुद्राओं का विस्तृत उल्लेख है–

अंसंयुताः संयुताश्च हस्तद्वेधा निरूपिता।
तत्रा संयुत हस्तानामादौ लक्षणमुच्यते।।

1. असंयुक्त हस्त मुद्रा– एक हाथ के प्रयोग द्वारा प्रदर्शित मुद्रा असंयुत हस्त मुद्रा कहलाती है। इनकी संख्या 28 है। इनका उल्लेख पाठ्यपुस्तक कक्षा 11 में किया जा चुका है।

2. संयुक्त हस्त मुद्रा– दोनों हाथों के प्रयोग से प्रदर्शित मुद्रा संयुत हस्त मुद्रा कहलाती है। अभिनय दर्पण में इनकी संख्या 23 मानी गई है। अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, पुष्पपुट, उत्संग, शिवलिंग, कटकावर्धन, कर्तरी स्वस्तिक, शकट, शंख, चक्र, संपुट, पाश, कीलक, मत्स्य, कूर्म, वराह, गरूड, नागबंध, खटवा, भेरूण्ड, डोला आदि।

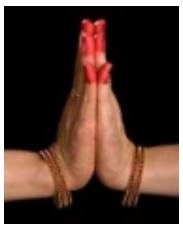

अंजलि

पुष्पपुट

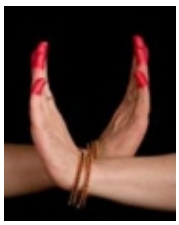

स्वस्तिक

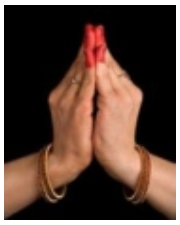

कपोत

कटकावर्धन

कर्कट

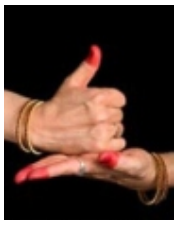

शिवलिंग

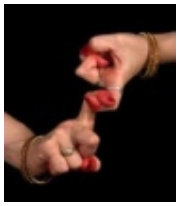

पाश

शकट

शंख

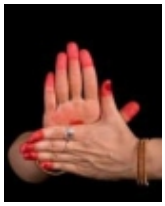

चक्र

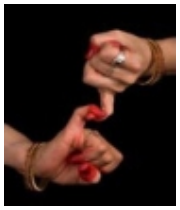

कीलक

कर्तरी स्वस्तिक

संपुट

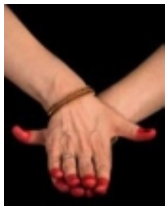

मत्स्य

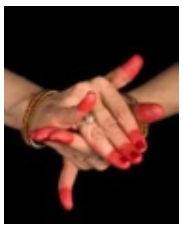

वराह

उत्संग

डोला

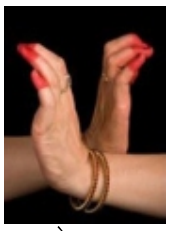

भेरूण्ड

(ब) गीत शैलियों का ज्ञान

ठुमरी

भारतीय संगीत की एक उपशास्त्रीय गायन शैली है। ठुमरी शब्द से तात्पर्य ठुमकना अर्थात् नृत्यगत चाल। ठुमरी का संबंध नृत्य, श्रृँगारिक काव्य, तथा उत्तर प्रदेश की लोक गायन शैली से है। कृष्ण की लीलाओं का चित्रण इसके काव्य में अधिक मिलता है।

पद्म विभूषण गिरिजा देवी

कथक नृत्य में जिन गीत शैलियों का प्रयोग किया जाता है, उनमें 'ठुमरी' भी एक बोल प्रधान गायकी है। राग की शुद्धता का इसमें विशेष महत्त्व नहीं होता, लेकिन शास्त्रीय संगीत की सभी विशेषताएँ इसमें मिलती हैं। ध्रुपद जैसी लयकारी, ख्याल की स्वर बद्धता और टप्पा–अंग की तानों जैसी विशेषताएँ 'ठुमरी' में पाई जाती है। 'ठुमरी' की दो शैलियाँ मानी जाती हैं– 1 पूर्वी अंग 2 पंजाबी अंग। 'ठुमरी' में ब्रज, अवधी और भोजपुरी जैसी भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। पहली में बोल बाँट एवं बोल बनाव की प्रधानता रहती है, इसलिये नृत्य के साथ उसे काफी गाया जाता है। पूरब अंग ठुमरी ही कथक नृत्य में अधिक प्रयुक्त होती है। दूसरे प्रकार की 'ठुमरी' विलम्बित लय में गायी जाती है। इसमें टप्पे की छोटी तानें तथा पंजाब के लोक–संगीत का रंग रहता है। शब्दों के द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करना 'ठुमरी' गायन की विशेषता मानी जाती हैं। माधुर्य, कोमलता, चैनदारी, कल्पनाशीलता, चपलता और गंभीरता जैसे सभी गुण 'ठुमरी' में पाये जाते हैं। इसमें दीपचन्दी, दादरा, तीनताल, पंजाबी ठेका तथा अद्धा इत्यादि तालों और भैरवी, खमाज, पीलू, काफी, तिलक–कामोद, जोगिया, गारा, देस, पहाड़ी और झिंझोटी जैसे रागों का प्रयोग किया जाता है। ठुमरी के रचनाकारों में बिंदादीन महाराज, सनेहपिया, ललन पिया, अख्तर पिया, मौजुद्दीन, भैया गणपतराव प्रमुख हैं। उदाहरण–

मोहे छेडो न नन्द के सुनहुं छैल
बड़ी देर भई, घर जाने दे मोहे
तोरी पइयां परूं मोरी रोको न गैल
पकरो न कर ब्रज नारी देखे सारी "ठाडी
ननद सुनेगी देगी गारी तुम मानों नाही
बिंदा सुनो ये जिया राखत मैल"।। रचना–बिंदादीन महाराज

गज़ल व ठुमरी साम्राज्ञी बेगम अख्तर

प्रख्यात ठुमरी गायकों में – बड़ी मोतीबाई, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, पं छन्नूलाल मिश्र, गौहर जान, शोभा गुर्टु, नैना देवी, सविता देवी आदि है। प्रख्यात ख्याल गायक – अब्दुल करीम खां, नज़ाकत अली– सलामत अली, बडे गुलाम अली, भीमसेन जोशी, प्रभा अत्रे भी ठुमरी गायन हेतु प्रसिद्ध हैं।

भजन

'किं नाम भजनम् ? भजनम्, नाम रसनम्' यह आत्मिक रस प्राप्ति की एक प्रक्रिया है। भजन का तात्पर्य आत्मिक संबंध, स्मरण, पूजा, प्यार, विश्वास, आध्यात्मिक एवं दैविक शक्ति के प्रति भावनात्मक जुड़ाव के अर्थों में प्रयुक्त गीत है। हिंदी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में वैष्णव, हिंदु, जैन, सिक्ख आदि परंपराओं द्वारा धार्मिक, आध्यात्मिक, ईश्वर संबंधी पद जो भक्ति भाव से ओत–प्रोत होकर गाये जाते हैं, भजन कहलाते हैं।

प्रमुख संत संगीतज्ञ एवं रचनाकार

मीराबाई

सूरदास

कबीरदास

तुलसीदास

इनमें अनेक अन्तरे होते हैं। भजन तीनताल, कहरवा, दादरा, रूपक आदि तालों में गाया जाता है। इनके गायन में राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। मींरा, सूर, तुलसी, कबीर, गोरख आदि की रचनायें इसी श्रेणी में आती है। सुन्दरता की दृष्टि से, खटका, मीड़, मुरकी, कण आदि का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जाता हैं। भजन–गायन में आलाप एवं तान का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। भजन एकल एवं सामूहिक दोनों रूपों में तथा घर, मंदिर, खुले प्रांगण, वृक्ष के नीचे तथा ऐतिहासिक व धार्मिक महत्त्व के स्थानों पर गाये जाते हैं। भजन की सगुण, निर्गुण, गोरखपंथी, अष्टछाप, वल्लभपंथी, दक्षिणी शैली आदि अनेक परम्परायें हैं। पं. कुमार गंधर्व, ओंकार नाथ ठाकुर, पुरूषोत्तम दास जलोटा, हरिओम शरण, कृष्णदास आदि कलाकार भजन गायन के लिए प्रसिद्ध है।

भारतीय परिवेश में जीवन के प्रत्येक अवसर पर भजन मंडलियों या पारिवारिक महिला अथवा पुरुष समूहों द्वारा भजन संध्या आयोजित करवाने का चलन हैं। संगीत के क्षेत्र में भजन गायकों को वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता रहता है।

पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर एवं पं. भातखंडे ने भजन शैली को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने का प्रयत्न किया।

चतुरंग

चतुरंग गायन अधिक प्राचीन नहीं है। इस प्रकार के गायन ख्याल की तरह ही गाये जाते हैं। 'चतुरंग' गायन के चार अंग होते हैं – (1) पद (2) तराना (3) सरगम (4) त्रिवट। चारों भाग एक ही राग में निबद्ध होते हैं।

पहले अंग में गीत के शब्द होते हैं। दूसरे अंग में जिस राग का 'चतुरंग' होता है, उसी राग में बँधी हुई तराने की रचना होती है। तीसरे अंग में सरगम होती है। चौथे अंग में तबले अथवा मृंदग की छोटी–सी परन होती है। चतुरंग की रचना मध्य अथवा द्रुत लय में प्रस्तुत की जाती है। गायन के चारों प्रकारों को (चतु = चार, रंग–भेद, प्रकार) एक ही रचना में प्रस्तुत किये जाने के कारण इसका नाम चतुरंग रखा गया है। इस प्रकार चतुरंग एक इंद्रधनुषीय गायन शैली प्रतीत होती है।

तराना

'तराने' में शब्दों का विशेष महत्त्व नहीं होता। इसमें ना, ता, रे, दिर–दिर, नोम, तोम दानी, ओदानी इत्यादि निरर्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं। तबला तथा मृंदग के बोल और कुछ फारसी भाषा के शब्द भी मिले रहते हैं। तराने की सुन्दरता राग और लय पर आधारित रहती है। 'तराना' मध्यलय से प्रारम्भ करके द्रुतलय में समाप्त किया जाता है। 'तराना' द्रुत लय में ही सुन्दर लगता है। अनेक गायक 'ख्याल' के बाद 'तराना' गायकी प्रस्तुत करते हैं। इस में तन्त्रकारी जैसी लयकारी के बड़े–बड़े कमाल दिखाये जाते हैं। दक्षिण भारत के भरतनाट्यम् नृत्य में प्रयुक्त तराने को 'तिल्लाना' कहते हैं। इसे अधिकतर तीनताल में ही गाया जाता है। ग्वालियर घराने में तराना गायन का सर्वाधिक प्रचार रहा है। तराने की उत्पत्ति का संबंध अमीरखुसरो से माना जाता है। वर्त्तमान सदी की प्रख्यात गायिका वीणा सहस्रबुधे ने तराने के संबंध में वैदिक काल के निबद्ध गान, मराठी संत दासोपंत (16 वीं सदी) तथा कथक नृत्य में प्रयोग के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य एवं प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। पंडित कृष्णराव शंकर, पंडित विनायक राव पटवर्धन, उस्ताद निसार हुसैन खां, उस्ताद अमीर खां, मालिनी राजुरकर, वीणा सहस्रबुधे, उस्ताद राशिद खां तराना गायन के महत्त्वपूर्ण कलाकार हैं।

पंडित विनायक राव पटवर्धन

मुख्य बिन्दु

- ताल एवं लय युक्त शुद्ध नर्तन क्रिया जिसमें अभिनय एवं भाव शून्यता हो नृत्त कहलाता है।
- किसी कथा अथवा वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रदर्शित करके आनंद का सर्जन करना नाट्य है।
- रस एवं भाव प्रदर्शन युक्त नृत्त क्रिया नृत्य कहलाती है।
- वीरता, आवेश, रौद्रता, क्रोध युक्त पुरूष प्रधान नृत्य तांडव तथा श्रृंगार, कोमलता, विलासमयी नृत्य लास्य श्रेणी के नृत्य कहलाते हैं।
- मनुष्य की चेष्टाओं – सोचना, बोलना, करना आदि का नाट्य प्रयोग अभिनय है, अभिनय के 4 अंग है – आंगिक,

वाचिक, सात्विक, आहार्य।

- पर+मिलु अर्थात् किन्हीं दो प्रकार के बोल से निर्मित रचना प्रमिलु कहलाती है।
- अभिनय दर्पण के अनुसार नृत्य में (23) संयुत (दोनों हाथों के प्रयोग युक्त) तथा (28) असंयुत (एक हाथ के प्रयोग युक्त) मुद्राएँ हैं।
- शब्दों के द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करना 'ठुमरी' गायन की विशेषता है। 'ठुमरी' एक बोल प्रधान एवं शृंगारिक गायकी है।
- भक्ति भाव से ओत प्रोत ईश्वर संबंधी पद 'भजन' कहलाते हैं।
- एक ही रचना में 4 भिन्न अंग (ख्यालनुमापद + तराना + सरगम + त्रिवट) का प्रयोग 'चतुरंग' कहलाता है।
- राग व तालबद्ध निरर्थक शब्दों (दानि,त,दारे,दीम....) के प्रयोग युक्त रचना तराना कहलाती है।
- प्रख्यात गायिका स्व. वीणा सहस्रबुधै ने तराना गायन शैली हेतु गहन शोध किया है।
- ग्वालियर घराने में तराना गायन का विशेष प्रचार रहा है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. नाटक का समानार्थी शब्द है –
   (अ) नाट्य (ब) नृत्त (स) नृत्य (द) नुपुर
2. **"भावाभिनयहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते"** कथन किसके लिए प्रस्तुत हुआ है–
   (अ) नृत्य (ब) नाट्य (स) नृत्त (द) अभिनय
3. शास्त्रों में तांडव नृत्य का प्रतीक किन्हें माना जाता है ?
   (अ) ब्रह्मा (ब) विष्णु (स) शिव (द) पार्वती
4. शारीरिक अंग, प्रत्यंग एवं उपांगों के प्रयोग युक्त अभिनय कहलाता है ।
   (अ) सात्विक (ब) वाचिक (स) आहार्य (द) आंगिक
5. दो भिन्न प्रकार के बोलों से युक्त रचना कहलाती है–
   (अ) भाव (ब) रस (स) तत्कार (द) प्रमलु
6. निम्नलिखित में से शास्त्रीय संगीत की उपशास्त्रीय विधा है।
   (अ) ध्रुपद (ब) ख्याल (स) ठुमरी (द) तराना
7. चतुरंग के 4 अंगों का सही क्रम छांटिए –
   (अ) पद, तराना, त्रिवट, सरगम (ब) तराना, पद, सरगम, त्रिवट
   (स) त्रिवट, सरगम, तराना, पद (द) पद, तराना, सरगम, त्रिवट
8. विकल्प जो भजन गायन की परंपरा से संबंधित नहीं है –
   (अ) सगुण (ब) अष्टछाप (स) निर्गुण (द) मांड
9. तराने के लिए प्रसिद्ध कलाकार है –
   (अ) सविता देवी (ब) वीणा सहस्रबुद्यै
   (स) अल्लाजिलाई बाई (द) बेगम अख्तर

उत्तरमाला– (1) अ (2) स (3) स (4) द (5) द (6) स (7) द (8) द (9) ब

लघुउत्तर प्रश्न–

1. नृत्त, नृत्य एवं नाट्य की प्रमुखता को दर्शाने वाला एक एक तथ्य लिखिए।
2. तांडव एवं लास्य के किन्हीं दो–दो अंतर/भेद को लिखिए।
3. कथक नृत्य में 'प्रमलु' को स्पष्ट कीजिए।
4. भजन गीत शैली का परिचय लिखिए।
5. तराना एवं चतुरंग में अंतर स्पष्ट कीजिए।
6. ठुमरी के प्रसिद्ध कलाकारों के नाम लिखिए।
7. 'चतुरंग' क्या है ? समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. अभिनय क्या है ? इसके अंगों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. अभिनयदर्पण के संदर्भ द्वारा नर्तन कला के तीनों भेदों की व्याख्या कीजिए ?

अभ्यास बिन्दु

1. नृत्त, नृत्य एवं नाट्य के भेद का प्रायोगिक अभ्यास करें।
2. किसी टेलीविजन सीरियल द्वारा अभिनय के अंगों को समझकर कक्षा में चर्चा करें।
3. हस्त मुद्राओं का चार्ट बनाकर कक्षा में लगावे तथा अपने संग्रह में भी रखें।
4. पाठ्यक्रम में वर्णित गीत शैलियों को सुनकर इनका अंतर समझें।
5. प्रत्येक शैली की कुछ रिकार्डिंग अपने संग्रह में रखें।
6. प्रत्येक शैली के दो–दो कलाकारों के जीवन परिचय का अध्ययन करें।

लास्य मुद्रा

ताडंव मुद्रा

संयुक्त हस्त मुद्रा (तालिका एवं अर्थ)

	हस्तमुद्रा	अर्थ / प्रयोग
1	अंजलि	प्रस्ताव,सम्मान
2	कपोत	कबूतर
3	कर्कट	केकड़ा
4	स्वस्तिक	शुभसंकेत
5	पुष्पपुट	फूलोंसेभरेहाथ
6	उत्संग	माला,शरमाना
7	शिवलिंग	भगवानशिवकालिंगस्वरूप
8	कटकावर्धन	श्रृंखला,कड़ी,विवाह
9	कर्तरीस्वस्तिक	दो कैंची, शाखाएँ
10	शकट	गाड़ी
11	शंख	शंख–खोल
12	चक्र	भगवानविष्णुकाअस्त्र

	हस्तमुद्रा	अर्थ / प्रयोग
13	संपुट	गोलआकारडिबिया,ढकना
14	पाश	रस्सियां, बंधन
15	कीलक	मैत्रीवार्ता
16	मत्स्य	मछली
17	कूर्म	कछुआ
18	वराह	सूअर
19	गरूड	भगवानविष्णु के पक्षी
20	नागबंध	सांपकाजोडा
21	खटवा	खाट
22	भेरूण्ड	पक्षियों की एक जोड़ी
23	डोला	नृत्यारंभ, वाद्य वादक

अध्याय 20

अ. कथक का इतिहास
ब. जयपुर एवं लखनऊ घराने का तुलनात्मक अध्ययन

अ. कथक का इतिहास

हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के संयुक्त प्रभाव युक्त तथा हिन्दुस्तानी संगीत पर आधारित, उत्तर भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैली 'कथक' है। कथक के विद्यार्थियों हेतु इसकी ऐतिहासिकता को जानना आवश्यक है। प्राचीन काल में नट, नर्तक, कुशीलव आदि नाम संगीत आधारित अभिनय अथवा नृत्यकार हेतु प्रयुक्त होते थे। ब्रह्मपुराण, महाभारत, नाट्यशास्त्र में कथा आधारित नृत्य करने वाले के लिये 'कथक' शब्द प्रयुक्त किया गया है। संगीत रत्नाकर (13 वीं सदी) के नृत्याध्याय में –

कथका बन्दिनश्चात्र विद्यावन्तः प्रियम्बदः ।
प्रशंसाकुशलाश्चान्ये चतुरा सर्वमातुषु।।

'कथक' अर्थात् हावभाव द्वारा कथा कहने वाला', स्वयं कथा कहकर नृत्य करना। नृत्य के मूल तत्वों के जानकार कथक नृत्यकार, कृष्ण लीलाओं का नृत्य प्रधान 'नाट्य' किया करते थे तथा अपनी आजीविका चलाते थे। संगीत दर्पण, संगीत मकरंद आदि ग्रंथों में भी कथक संबंधी पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। 'कथा कहें सो कथक कहावे'। 'कथक' शब्द द्वारा एक जाति व नृत्य शैली दोनों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। मुगलकाल में ईश्वर आराधन में प्रयुक्त भारतीय कलाएँ, दरबार में मनोरंजन हेतु भी प्रयुक्त हुई। मुगल बादशाहों द्वारा प्रशिक्षकों की नियुक्ति करवाकर प्रशिक्षण दिलवाया जाता था। 17 वीं सदी के अनेकों चित्र दरबारों में नृत्य प्रदर्शन करते दर्शाते हैं कि ये प्रस्तुतियाँ मूलतः 'कथक' ही हैं, अन्य किसी भी शैली से इनका साम्य नहीं है।

सोलहवीं शताब्दी में रीतिकाल के कवि – सूरदास, कृष्णदास, परमानंद दास, छीतस्वामी आदि कवियों की रचनाओं में विशुद्ध रूप से कथक नृत्य के बोलों का प्रयोग दिखाई देता है –

बाजत मृंदग उघटत सुधंग तक्कु जिन, कुकुजिन..... । कृष्णदास

गिड़गिड़ता, गिड़ गिड़वा, तत् तत् थैई थैई गति तीनों... । छीत स्वामी

कथक के प्रमुख आश्रयदाताओं में नवाब वाजिद अली शाह (लखनऊ), महाराज सवाई जयसिंह, सवाई रामसिंह द्वितीय, सवाई माधोसिंह (जयपुर) तथा राजा चक्रधर सिंह (रायगढ़) के नाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

नवाब वाजिद अली शाह

नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में नृत्य व संगीत को अभूतपूर्व आश्रय प्राप्त हुआ। उनके 'रहस–खाने' में कृष्ण की लीलाओं पर आधारित नृत्य व रास मंडल आयोजित होते थे वाजिद अली शाह को संगीत की प्रत्येक विद्या पर अभिरूचि व गहन पकड़ थी। प्रत्येक कला के विशेषज्ञ, विद्वानों को उनका आश्रय प्राप्त था। ठाकुर प्रसाद जी उनके नृत्य गुरू थे। वे स्वयं रास मंडली में कृष्ण बनकर नृत्य करते थे। लेकिन इस काल में दरबारी संस्कृति द्वारा संगीत का विलासपूर्ण व मनोरंजक स्वरूप अधिक मुखर हुआ। तथा भारतीय मोक्ष मार्गी एवं आध्यात्मिक स्वरूप का

ह्रास हुआ।

नृत्य गुरू ठाकुर प्रसाद

वाजिद अली शाह ने स्वयं अनेक गतों की रचना की, जिनका उल्लेख उनकी पुस्तक 'बन्नी' में है। कथक में ठुमरी का उपयोग एवं विकास भी वाजिद अली शाह के काल की ही देन है। कथक की शैलीगत विशेषताएँ जिनमें – सलामी, आमद, ठाठ, तोड़े, गत आदि का स्थायीकरण एवं विकास इसी युग की देन है।

धीरे–धीरे दरबारों में नृत्य का चलन बढ़ने लगा। लखनऊ, बनारस, रायगढ़, जयपुर, टोंक, बीकानेर, चुरू आदि अनेक स्थानों पर कथक को आश्रय मिला, लेकिन लखनऊ तथा बिंदादीन जी के परिवार का महत्त्व शिक्षण, प्रशिक्षण व प्रदर्शन में बना रहा। इसी क्रम में घरानों का अस्तित्व उभरने लगा। एक ओर नवाबों के आश्रय में लखनऊ घराना अपनी श्रृंगारिकता, नाजुकता, से ओतप्रोत रहा वहीं जयपुर राजदरबार के संरक्षण में जयपुर शैली का विकास अपने ओज व भक्तिपूर्ण समन्वय को दर्शाता है। इनके ही प्रभाव से बनारस व रायगढ़ शैलियों का अस्तित्व विकसित हुआ, लेकिन कथक नृत्यकारों के लिए लखनऊ एक पवित्र तीर्थ की तरह तथा बिंदादीन महाराज साक्षात कृष्ण के स्वरूप एवं महागुरु के रूप में मान्य रहे हैं।

राजा चक्रधर सिंह

राजा चक्रधर सिंह (1924–1947) – कथक नृत्य के विकास तथा प्राश्रय में रायगढ़ नरेश राजा चक्रधर सिंह का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कथक की रायगढ़ शैली के संस्थापक स्वयं राजा चक्रधर सिंह थे। अनेक उच्च संगीतकार, जयपुर एवं लखनऊ घराने के नृत्यकार इनके दरबार में थे। समस्त शैलियों का अध्ययन कर इन्होंने कथक की रायगढ़ शैली को विकसित किया। नृत्य प्रस्तुति हेतु उन्होंने अनेकों गत, तोड़ा, ठुमरी, गजल आदि की रचना की। नृत्य प्रस्तुति के दौरान वे स्वयं तबला, पखावज वादन करते थे। 1939 में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में उन्हें 'संगीत सम्राट' उपाधि से सम्मानित किया गया। उन्होंने नृत्य व संगीत संबंधी लगभग 15 पुस्तकें लिखीं। रायगढ़ में उनकी स्मृति में "राजा चक्रधर सिंह संगीत अकादमी " संचालित है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद – भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय आकाशवाणी, दूरदर्शन द्वारा कलाओं का प्रसार किया गया तथा अनेकों कार्यक्रम, योजनाओं पर पहल की गई। इस क्रम में संगीत नाटक अकादमी द्वारा 'कथक केन्द्रों' की स्थापना विद्यालयी व विश्वविद्यालयी शिक्षा में कथक नृत्य शिक्षा का प्रारंभ छात्रवृत्तियां, सांस्कृतिक समारोह, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक दलों में कथक, कलाकारों को अवसर तथा राष्ट्रीय पुरस्कारों द्वारा कलाकारों को प्रोत्साहन देकर कथक नृत्य को नई दिशा प्रदान की गई है। इस कड़ी में स्पिक मैके के प्रयास भी अत्यंत सराहनीय हैं। आज तकनीक, मीडिया व विज्ञान के सहयोग से इस कला को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त हुई है। एकल, युगल एवं समूह प्रदर्शनों में अभिनव कथानक एवं प्रयोग देखे जा रहे हैं।

प्रख्यात नृत्य गुरु शम्भू महाराज इसे 'नटवरी नृत्य' ही कहते थे तथा कथक नामकरण के भी विरोधी थे। कथक नृत्य की प्राचीनता व एतिहासिकता को हम कैसे भी निर्धारित करें लेकिन इसके वर्तमान स्वरूप का अस्तित्व हमें दो–ढ़ाई सौ वर्ष पुराना ही दिखाई देता है। कथक के घरानों की चर्चा में अधिकांश अन्य नृत्याचार्यों की मूल शिक्षा भी लखनऊ में ही दिखाई देती है। तथा लखनऊ घराने का नृत्य या बिंदादीन परिवार का नृत्य एक ही दिखाई देता हे। जयपुर घराना भी मुख्यतः 5 परिवारों – नायक नाथूलाल, गिरधारीलाल, शंकरलाल, गिरधारी जी, पूर्णराम का ही केन्द्र रहा है।

बिंदादीन महाराज

लखनऊ घराने के प्रमुख कलाकार– बिंदादीन महाराज, कालका प्रसाद, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज, बिरजू महाराज।

जयपुर घराने के प्रमुख कलाकार– हरिहर प्रसाद व हनुमान प्रसाद, पं. जयलाल, पं. नारायण प्रसाद, पं. सुंदरप्रसाद, पं कुंदनलाल गंगानी, सुंदर लाल गंगानी, चरण गिरधर चाँद, पं. राजेन्द्र गंगानी है।

बनारस घराने के कलाकार– पं. जानकी प्रसाद, पं. सुखदेव मिश्र, सितारा देवी, गोपीकृष्ण, सुनयना हजारी लाल हैं।

रायगढ़ घराने के कलाकार– कार्तिकराम, कल्याणदास, फिरतू महाराज, मुकुल राम, रामलाल के नाम उल्लेखनीय हैं।

सभी शास्त्रीय नृत्य शैलियों की तरह नृत्य के मूल तत्त्वों – हाव–भाव, अभिनय, मुद्रा, रस आदि का प्रयोग नाट्यशास्त्र व अभिनयदर्पण में वर्णित विधान के अनुसार ही कथक नृत्य में किया जाता है। लेकिन कथक नृत्य की अपनी निजी शैलीगत विशेषताओं

का दर्शन अन्य शैलियों से स्वतंत्र है। कथक के नृत्त अंग में – ठाठ, आमद, तोड़ा, सलामी, तत्कार, उठान, प्रमेलु आदि अंग हैं। नृत्य प्रस्तुति के दौरान जिन कथानकों का प्रयोग किया जाता है उनमें – कृष्णलीला, कालिय दमन, बाल लीला, गोवर्द्धन लीला, पूतना वध, पनघट, महारास, माखन चोरी, सुदामा चरित्र, मीरां के गिरधर अहिल्या उद्धार, गज व ग्राह, दशावतार, चीरहरण, शबरी, शिव तांडव आदि की प्रस्तुति की जाती है।

कत्थक के नृत्य अंग में– गत विकास, गत् भाव, वंदना, कवित्त आदि हैं। विशुद्ध रूप से उत्तर भारतीय संगीत के प्रयोग पर आधारित यह एकमात्र नृत्य शैली है। उत्तर भारतीय संगीत की गायन शैली – ध्रुपद, धमार, ठुमरी, गजल, भजन, चतुरंग, तराना का प्रयोग, राग, ताल, स्वरलिपि व वाद्यों आदि का प्रयोग इसे संपूर्ण उत्तर व मध्य भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैली का दर्जा देता है। कथक नृत्य में – तबला, पखावज, सारंगी, सितार, बांसुरी, हारमोनियम, घुंघरू आदि वाद्यों का प्रयोग होता है।

ब. जयपुर व लखनऊ घराने का तुलनात्मक अध्ययन

घराने का अर्थ है परम्परा, शैली, सम्प्रदाय, पंथ, आचार आदि। जब हम किसी घराने की बात करते हैं तो किसी विशिष्ट परम्परा अथवा शैली (Style) को इंगित करते हैं। प्रत्येक घराने में कोई भिन्नता, विशेषता व अनोखापन होता है, जो कि उस घराने का प्रतीक मानी जाती है। घराना स्थापित होने में एक अरसा गुजर जाता है। भारत में वैदिक काल से नृत्य का वर्णन मिलता है।

नृत्य का स्वरूप कब से कथक कहलाने लगा यह कहना कठिन है, कथक सम्पूर्ण उत्तर भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैली के रूप में विकसित हुआ।मुगलकाल में जब यह नृत्य कला मंदिरों से निकलकर राजदरबारों की शोभा बढ़ाने लगी तो एक ओर हिन्दु राजाओं का आश्रय मिला तथा दूसरी ओर मुगल दरबारों का, एक ओर सात्विक अभिनय, ओज एवं तैयारी प्रदर्शित करने वाला कथक, दुसरी ओर लखनऊ के नवाबों की नजाकत, अदाओं एवं विलासिता दर्शाने वाला कथक। कला के विभिन्न क्षेत्र गायन, वादन, नर्त्तन आदि में स्थान अथवा कलाकार विशेष के नाम से शैलियाँ अथवा घराने प्रचलित होने लगे, जैसे गायन में ग्वालियर घराना, पटियाला घराना, डागर घराना, अल्लादियां खाँ घराना, जानकी प्रसाद घराना आदि। इसी प्रकार कथक नृत्य में अनेक घराने पनपने लगे। जैसे – जयपुर घराना, लखनऊ घराना, बनारस घराना, रायगढ़ घराना आदि।

कथक के मुख्य तीन घराने माने जाते हैं – (1) जयपुर घराना। (2) लखनऊ घराना। (3) बनारस घराना।

जयपुर घराना

हिन्दु राज दरबारों में कथक की जिस शैली का विकास हुआ उसे जयपुर घराना नाम दिया गया। (जयपुर के राजा महाराजाओं ने संगीत एवं नृत्य के श्रृँगारिक पक्ष के साथ शास्त्रीय एवं भक्ति पक्ष को भी महत्त्व दिया।) महाराजा सवाई जय सिंह ने जयपुर में विभिन्न विधाओं के 36 केन्द्र स्थापित किये। यहाँ पर ख्याति प्राप्त कलाकारों को प्रश्रय व प्रोत्साहन दिया जाता। सवाई रामसिंह द्वितीय व माधोसिंह द्वितीय के काल में उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। यहाँ के कलाकार देश में 'जयपुर' घराने के नाम से पहचाने जाने लगे। जयपुर घराने के प्रथम प्रवर्त्तक भानूजी थे। इन्होंने शिव–ताण्डव की शिक्षा प्राप्त की। इनके पुत्र व पौत्रों को जिनके नाम मालू जी, कानू जी, लालू जी थे, शिव–ताण्डव की शिक्षा परम्परा से प्राप्त थी।

हरिप्रसाद तथा हनुमान प्रसाद की जोड़ी देवपरी की जोडी के नाम से प्रसिद्ध थी। हरिप्रसाद की आकाशचारी तथा चक्करदार परने और हनुमान प्रसाद का लास्य प्रधान नृत्य विशिष्ठ था। इनके कुछ जातिए भाई इस घराने के प्रसिद्ध कलाकार थे जिनमें श्यामलाल, चुन्नीलाल, दुर्गाप्रसाद, गोवर्द्धनजी, जयलाल और सुन्दर प्रसाद, नारायणराम, रमनलाल, अनोखेलाल, लक्ष्मणप्रसाद थे।

लखनऊ घराना

मुगल दरबारों में कथक नृत्य के जिस स्वरूप को प्रोत्साहन व आश्रय मिला उसे लखनऊ घराने के नाम से जाना जाने लगा। बादशाह अकबर से लेकर अंतिम मुगल शासक तक कथक को प्रोत्साहन मिला। कथक नृत्य के सर्वांगीण विकास एवं उन्नति के शिखर तक ले जाने का श्रेय लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को जाता हैं। इन्होने स्वयं नृत्य की शिक्षा प्राप्त की तथा कई पुस्तकें लिखी। ईश्वरीप्रसाद जी को लखनऊ घराने का जन्मदाता माना जाता हैं। ठाकुरप्रसाद जी वाजिद अली शाह के गुरु थे। इनकों गुरू दक्षिणा में 6 पालकी भरकर रूपए दिए गए। बिन्दादीन जी ने पन्द्रह सौ ठुमरियों की रचना की। दरबारी वातावरण में रहकर भी इन्होने अपना सात्विक जीवन स्थित रखा। छोटे भाई कालका प्रसाद के साथ मिलकर कालका बिन्दादीन नाम की ख्याति देशभर में रही। कालका प्रसाद के तीन पुत्र अच्छन महाराज, लच्छु महाराज एवं शंभु महाराज थे। अच्छन महाराज कठिन तालों में बड़ी सुगमता से नृत्य करते थे। अच्छन महाराज के पुत्र बिरजू महाराज वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार हैं।

	जयपुर घराना	लखनऊ घराना
1.	हिन्दु राज दरबारों में कथक के जिस स्वरूप का विकास हुआ, उस शैली को जयपुर घराने का नाम दिया गया।	मुगल शासकों के दरबार में कथक नृत्य के जिस स्वरूप का विकास हुआ उस शैली (स्वरूप) को लखनऊ घराने के नाम से जाना जाता हैं।
2.	राजपूती प्रभाव होने के कारण ओजपूर्ण एवं वीर रस से ओतप्रोत हैं। हाथों को पूरा फैलाकर एवं पैरों से दमदार आघात किया जाता हैं। अतः जोश व आवेश से परिपूर्ण हैं।	मुस्लिम प्रभाव होने से इस शैली में नजाकत व खूबसूरती पर बल दिया जाता हैं। अंगों के संचालन में गोलाइयाँ, त्रिभंग और सौन्दर्ययुक्त भंगिमाओं का प्रयोग किया जाता हैं।
3.	राजस्थान के शासकों की धार्मिक वृत्ति होने के कारण इस शैली में भक्ति रस की एक धारा है। देवी–देवताओं की स्तुति से नृत्य का आरम्भ नमस्कार से होता है।	बादशाहों एवं नवाबों के समक्ष नृत्य प्रारम्भ करने से पूर्व झुककर सलाम करने का अंदाज पेश किया जाता हैं। ''सलामी'' इस घराने की देन है।
4.	सात्विक श्रृँगार, भक्ति, एवं करूण रस जयपुर घराने की परम्परा है।	श्रृँगार, सौन्दर्य, सरलता, नाजुकता का प्रदर्शन लखनऊ घराने की प्रमुख विशेषता हैं।
5.	कठिन लयकारी, तत्कार व अप्रचलित तालों में नृत्य प्रस्तुति इस घराने में प्रमुखता से प्रस्तुत की जाती हैं।	गत निकास व गत भ ाव का प्रदर्शन लखनऊ घराने की प्रमुख विशेषता हैं।
6.	ठाठ प्रस्तुति में दांये पैर का प्रयोग होता है।	बाँये पैर पर नर्त्तक खड़ा होता है।
7.	आमद में ''त्राम'' बोल का प्रयोग हैं।	आमद में ध, त, क, थुंगा, बोलो का प्रयोग होता है।
8.	चक्कर लेने में अधिकतर 'तिग धा दिग दिग थेई' के बोलो का प्रयोग होता है।	तत्, तत् थेई बोलो का प्रयोग होता है।
9.	एक पाद चक्कर आकाश भ्रमरी आदि चमत्कारिक प्रस्तुति की जाती हैं।	नजाकत, नफासत युक्त श्रृंगारिक प्रस्तुति इस शैली का गुण हैं।
10.	भजन व पौराणिक गाथा युक्त गीतों पर भाव प्रदर्शन किया जाता है।	ठुमरी, गजल द्वारा भाव प्रदर्शन किया भाव प्रदर्शन किया जाता है।
11.	पखावज के बोल पर पूरे पैर का प्रयोग होता है।	तबले पर नटवरी के बोल जिसमें एडी का प्रयोग किया जाता है।
12.	पंडित जयला ल, सुन्दर प्रसाद, कुन्दनलाल गंगानी नारायण प्रसाद, राजेन्द्र गंगानी इस शैली के प्रमुख नृत्याचार्य है।	बिन्दादीन महाराज, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभु महाराज, बिरजू महाराज प्रमुख नृत्याचार्य है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु–

- दक्षिण व पूर्वोत्तर भारत को छोड़कर शेष भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैली 'कथक' है।
- कथक में हिन्दु व मुस्लिम संस्कृतियों का समन्वय दृष्टिगत होता है। अदा, सलामी, आमद, ठाठ आदि इस के साक्ष्य हैं।
- कथक की ऐतिहासिकता के प्रमाण–ब्रह्म पुराण, महाभारत, नाट्यशास्त्र व संगीत रत्नाकर से प्राप्त होते हैं।
- कथक के विकास, शैलीगत संरचना, प्रचार–प्रसार, शिक्षण एवं प्रदर्शन में कालका बिंदादीन महाराज के परिवार का अतुलनीय योगदान है।
- मध्यकालीन राज दरबारों से प्राप्त नृत्य के चित्र, रीतिकालीन कवियों की रचनाओं से प्राप्त नृत्य शब्दावली युक्त पद, कथक शैली के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है।
- राजदरबारों द्वारा प्राप्त आश्रय के कारण कथक के कृष्ण एवं रासमयी स्वरूप के साथ श्रृँगार, नाजुकता तथा दरबारी संस्कृति व वेशभूषा का समागम हुआ।
- नवाब वाजिद अली शाह, राजा चक्रधर सिंह एवं जयपुर नरेशों ने कथक के विकास एवं आश्रय में अमूल्य योगदान दिया।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार के संस्थानों–संगीत नाटक अकादमी, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा ने कथक नृत्य शैली को नए आयाम दिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. कथका बन्दिनश्चात्र....." कथन उद्धृत है –
   (अ) संगीत रत्नाकर (ब) नाट्यशास्त्र (स) अभिनयदर्पण (द) बृहद्देशी
2. नवाब वाजिद अली शाह के नृत्य गुरु कौन थे ?
   (अ) बिंदादीन महाराज (ब) अच्छन महाराज (स) ठाकुर प्रसाद (द) पं. जयलाल
3. जयपुर कथक घराना की कितनी प्रमुख शाखाएँ हैं?
   (अ) पाँच (ब) तीन (स) सात (द) एक
4. कथक केन्द्र की स्थापना किसके द्वारा की गई है।
   (अ) संगीत संकल्प (ब) स्पिक मैके
   (स) सांस्कृतिक संबंध परिषद (द) संगीत नाटक अकादमी
5. कथक नृत्य में प्रयुक्त संगीत हैं ?
   (अ) कर्नाटक संगीत (ब) हिन्दुस्तानी संगीत
   (स) रवीन्द्र संगीत (द) नजरूल संगीत
6. देवपरी की जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध नृत्यकार थे
   (अ) पं० हरिप्रसाद हनुमानप्रसाद (ब) शम्भू महाराज, लच्छू महाराज
   (स) अड़गू जी खड़गू जी (द) पं० सुन्दर प्रसाद, जयलाल
7. कठिन लयकारी एवं अप्रचलित तालों में नृत्य प्रस्तुति किस घराने की विशेषता है –
   (अ) लखनऊ (ब) जयपुर (स) बनारस (द) रायगढ़

8. नजाकत व नटवरी के बोल किस घराने का गुण है –

(अ) बनारस (ब) जयपुर (स) लखनऊ (द) रायगढ़

उत्तरमाला– (1) अ (2) स (3) अ (4) द (5) ब (6) अ (7) ब (8) स

लघुउत्तर प्रश्न

1. कथक नृत्य के विकास में नवाब वाजिद अलीशाह के योगदान को समझाइये।
2. राजा चक्रधर सिंह ने किस प्रकार कथक नृत्य शैली को सहयोग प्रदान किया।
3. कथक के प्रमुख घरानों के दो–दो कलाकारों के नाम लिखिए।
4. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कथक की विकास यात्रा पर टिप्पणी लिखिए।
5. कथक शब्द का तात्पर्य समझाते हुए इसमें प्रयुक्त होने वाली गीत शैलियों व वाद्यों के नाम लिखिए।
6. लखनऊ घराने पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. जयपुर घराने की प्रमुख विशेषताओं को समझाइये।
8. जयपुर व लखनऊ घराने के प्रख्यात कलाकारों के नाम लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. कथक नृत्य की एतिहासिक विकास यात्रा को समझाइये।
2. जयपुर व लखनऊ घराने के अंतर को विस्तार से समझाइये।

अभ्यास बिन्दु

1. दोनों घरानों की प्रस्तुति देखकर तुलनात्मक अध्ययन को समझना।
2. दोनों घराने के इतिहास का अध्ययन कर तुलनात्मक परिचर्चा करें।

विशेष नोट :

कथक नृत्य के इतिहास, विकास एवं परिचय की विस्तृत जानकारी हेतु कक्षा–11 पाठ्यपुस्तक की विषय–वस्तु का अध्ययन अवश्य करें।

अध्याय 21

नृत्यकारों का जीवन परिचय

अच्छन महाराज

मूल नाम – पंडित जगन्नाथ प्रसाद

जन्म – 1883 गांव लगुहा, सुल्तानपुर (उ.प्र)

मृत्यु – 11 मई सन् 1947 को (लखनऊ)।

शैली / घराना – लखनऊ घराना

गुरू – पिता कालिकाप्रसाद और ताऊ बिन्दादीन जी से कत्थक नृत्य की शिक्षा छः वर्ष की अल्पायु से ही शुरू कर दी गई।गायन की शिक्षा उस्ताद मिंया जान, उस्ताद अमीर खां, उस्ताद काले खां एवं गोरे खां द्वारा प्राप्त की।

नृत्यगत विशेषता – ताल और लय के साथ घुँघरूओं पर अद्भुत अधिकार था। तत्कार को द्रुतगति में स्पष्ट रूप में प्रदर्शित करने में माहिर थे।

शिष्य वर्ग – लच्छु महाराज, शम्भु महाराज, बिरजू महाराज

इनका अच्छा स्वभाव होने के कारण "अच्छे भैया" के नाम से पुकारते थे। धीरे–धीरे अच्छे भैया से "अच्छन महाराज" हो गये। कत्थक नृत्य जगत में इसी नाम से ख्याति प्राप्त की। बचपन से ही नृत्य सीखने के लिए कठोर साधना व अभ्यास आपकी प्रकृति में था। नौ वर्ष की अवस्था में तो 10–12 घंटे का अभ्यास करते थे। अभ्यास के समय जब पैरों से पसीना और खून बहने लगता था तब पैर फिसल न जाये इसके लिए वे खून पसीने पर रेत (बालू) डलवा देते थे, लेकिन तत्कार का अभ्यास रोकते नहीं थे। अनका अभ्यास और तपस्या वर्षों चलती रही। जवानी तक पहुँचते–पहुँचते उनकी तैयारी अपने आप में बेजोड़ थी। पैरों की तैयारी और चक्कर लेने में इनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता था। लय के अन्दर मात्राओं के उलट–फेर का जवाब नहीं था। उनके समकालीन विद्वान उन्हें "लय का बादशाह" नाम से भी पुकारते थे।जिस वस्तु में भी उन्हें लयकारी के गुण दिखाई देते, उसमें वे रूचि लेते और आनन्द के साथ उसका उपभोग करते थे। रेलगाड़ी, मालगाड़ी, तन्दरूस्त और मरियल घोड़ों की चाल, तांगा तथा इक्का आदि की चाल वे बड़े मनोयोग से देखते और आनन्द लेते थे। कोई क्षण ऐसा न जाता था, जब वे एक नई लय में डुबे हुए नजर न आते हो।तबला भी बहुत अच्छा और तैयारी के साथ बजाते थे।

बचपन में दुबले–पतले थे, लेकिन आयु बढ़ने के साथ शरीर स्थूल हो गया। मृत्यु होने के समय तक इतना स्थूल शरीर होने पर भी नृत्य कर लेते थे, जिसे देखकर लोग आश्चर्य करते थे।अच्छन महाराज अचकन, ढीला पाजामा और टोपी पहनते थे। हाथ में छड़ी रखते थे। प्रातः साढ़े चार बजे उठकर नित्य कर्म के बाद पूजा–पाठ में लग जाते। उनका नियम कभी टूटता नहीं था। उनकी तीन पुत्रियाँ व

एक पुत्र थे। पुत्र जिसकी प्रसिद्धि बिरजू महाराज के नाम से विश्व विख्यात है।अच्छन महाराज के अपने दोनों छोटे भाइयों, एवं पुत्र के अतिरिक्त अन्य सैंकडों शिष्य हैं।

पंडित गोपीकृष्ण

नाम – पंडित गोपीकृष्ण

जन्म – 22 अगस्त सन् 1935 (कोलकाता)

मृत्यु – 18 फरवरी सन् 1994 (मुंबई)

माता – तारा बाई

शैली / घराना – बनारस घराना

गुरू – सुखदेव मिश्र (नाना) शम्भु महाराज (कत्थक), गोविन्दराज पिल्लई (भरतनाट्यम) माता तारा बाई तथा पिता द्वारा

पंडित गोपीकृष्ण की माता तारा बाई गायन कला में दक्ष थी। इनके नाना सुखदेव महाराज नेपाल दरबार में संगीतज्ञ थे। सुखदेव महाराज ने अपनी पुत्रियाँ अलकनन्दा, सितारा,तारा तथा पुत्र पांडे महाराज और चौबे महाराज सभी सदस्यों को नृत्य संगीत में पारंगत किया। बचपन में गोपीकृष्ण बम्बई में रहे। स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद कलकता चले गये। कोलकाता में पिता द्वारा कत्थक नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। बम्बई वापस आने पर उन्होंने फिल्मों में नृत्य का कार्य किया। फिल्म 'झनक–झनक पायल बाजे' से सर्वाधिक ख्याति मिली। इस फिल्म में नायक–नर्तक थे। आपकी प्रसिद्धि इस फिल्म से उच्चतम शिखर पर पहुँच गई। फिल्मों में भी नृत्य निर्देशन का कार्य करते थे। उन्होंने नृत्य में नवीन तत्त्वों का समावेश किया जो नृत के अन्तर्गत आते हैं। गोपीकृष्ण परम्पराओं के अनुकरण में विश्वास नहीं करते थे। उनके नृत्य में कथकलि व भरतनाट्यम के तत्वों का समावेश महत्त्वपूर्ण है।

15 वर्ष की आयु में उन्हें 'नटराज' की उपाधि से सम्मानित किया गया। वे नर्तक, अभिनेता व नृत्य निर्देशक थे। 'नटेश्वर नृत्य कला मंदिर' एवं 'नटेश्वर भवन नृत्य अकादमी' की स्थापना की। लगातार 9 घंटे 20 मिनट तक नृत्य करके रिकार्ड कायम किया।

पंडित कुन्दनलाल गंगानी

नाम – पंडित कुन्दनलाल गंगानी

जन्म – सन् 1926 सुजानगढ़ (चूरू)

मृत्यु – 16 जुलाई सन् 1984 में दिल्ली में।

पिता – गणेशीलाल गंगानी

गुरू – नारायणप्रसाद, सुन्दरप्रसाद, पं. शिवनारायण (गायन), हजारी लाल (तबला)

घराना – जयपुर घराना

शिष्यवर्ग – स्वर्णलता, पारो, जुबीन (फिल्मी अभिनेत्रियाँ), राजेन्द्र गंगानी, प्रेरणा श्री माली

इनकी शिक्षा–दीक्षा मुख्यतः मामा नारायण प्रसाद द्वारा हुई। नारायण प्रसाद रायगढ़ में थे, तभी कुन्दनलाल उनके साथ चले गये। आप मध्यप्रदेश तथा बिहार में भी पाँच वर्ष रहे। बम्बई में भी 15 वर्ष तक नृत्य की शिक्षा दी। बड़ौदा विश्वविद्यालय के नृत्य विभाग में कत्थक–निर्देशक के पद पर सन् 1953 तक कार्य किया। जयपुर घराने के प्रसिद्ध नर्त्तक हनुमान प्रसाद रिश्ते में आपके नाना थे। तबले की शिक्षा चाचा हजारीलाल से और गायन में पंडित शिवनारायण से प्राप्त की। 13 वर्ष की अवस्था से ही आप सार्वजनिक प्रदर्शन करने लगे।

दुर्लभचित्र–मदनलाल,कुंदनलाल,सुंदरलाल

जोधपुर के राष्ट्रीय कला मण्डल और जयपुर में भी नृत्य का प्रशिक्षण दिया। दिल्ली के कत्थक केन्द्र में नृत्य गुरू के पद पर 1970 से 1984 तक कार्य किया।

महत्त्वपूर्ण – गुरु कुंदनलाल गंगानी के नृत्य में तांडव व लास्य का सम्मिश्रण व अभिनय की प्रधानता थी, उन्होंने विलंबित लय में नवीन गतों, परन, तिहाई, आदि की रचनाएँ की। शिक्षण व प्रदर्शन दोनों में ही आपका योगदान, जयपुर घराने की कीर्ति को नवीन दिशाएँ देता रहेगा।

नृत्याचार्य पंडित जयलाल

नाम – पंडित जयलाल

जन्म – सन् 1885 में (बसंत पंचमी), चुरू जिले के एक गांव में

मृत्यु – 19 मई 1945 को कलकत्ता में

पिता – पं. चुन्नीलाल जी

गुरू – पिता चुन्नीलालजी, चाचा दुर्गालालजी, सूखेखां, बिन्दादीन महाराज, उस्ताद जीवन खां (तबला)

घराना – जयपुर घराना

शिष्य वर्ग – रामगोपाल, जयकुमारी, कार्त्तिकराम, कल्याणदास, सुन्दरप्रसाद, गौरीशंकर, हीरालाल, अनुजराम, फिरतूदास, बर्मनलाल

जयपुर घराने के प्रमुखतम कलाकारों में पंडित जयलाल की प्रसिद्धि थी। जयपुर–दरबार के बाद आपका सम्बन्ध, जोधपुर, सीकरी, नेपाल, रायगढ़, तथा मेहर के दरबारों में भी था। आपके पुत्र रामगोपाल एवं पुत्री जयकुमारी ने कलकत्ते में जयपुर घराने के कत्थक नृत्य का अच्छा प्रसार किया। नर्त्तक के साथ–साथ आप योग्य संगीतज्ञ, कुशल तबला वादक व पखावज वादक भी थे।

तबले की विधिवत शिक्षा शेखावटी के उस्ताद तबला वादक जीवन खाँ से प्राप्त की। जयपुर नृत्य घराने की कीर्ति में नृत्य गुरु पं. जयलाल का योगदान अतुलनीय है।

मुख्य बिन्दु

- अच्छन महाराज की नृत्यशिक्षा पिता कालका प्रसाद व बिंदादीन महाराज से हुई।
- अच्छन महाराज को लय का बादशाह कहा जाता था
- पं. गोपीकृष्ण ने फिल्मों में नृत्य, अभिनय एवं नृत्य निर्देशन द्वारा कत्थक नृत्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की। मात्र 15 वर्ष की आयु में 'नटराज' उपाधि से सम्मानित हुए।
- पं. गोपीकृष्ण ने परंपरा के बजाय नवीन अन्वेषण को अपने नृत्य में स्थान दिया, भारत सरकार द्वारा 1975 में पद्म श्री से सम्मानित किए गए।
- गुरू कुंदन लाल गंगानी नृत्य की प्रमुख शिक्षा पं. नारायण प्रसाद के सानिध्य में प्राप्त की।
- नृत्य प्रदर्शन के अलावा तबला वादन में भी अत्यंत कुशल थे।
- कुंदन लाल गंगानी ने कथक केन्द्र– नई दिल्ली में नृत्य गुरू पद पर रहे।
- पं. जयलाल द्वारा कथक में तबले के बोलों की रचना, उनकी प्रमुख देन हैं।
- जयपुर घराने के प्रमुख स्तंभ पं. जयलाल माने जाते हैं। उनके पुत्र व पुत्री रामगोपाल एवं जयकुमारी ने उनकी परंपरा को आगे बढ़ाया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. 'नटराज' उपाधि से सम्मानित नृत्यकार कौन थे ?
   (अ) अच्छन महाराज (ब) गोपीकृष्ण (स) कुंदन लाल गंगानी (द) पं. जयलाल
2. अच्छन महाराज का मूल नाम क्या था ?
   (अ) जगन्नाथ प्रसाद (ब) बैजनाथ प्रसाद (स) सुंदर प्रसाद (द) नारायण प्रसाद
3. अच्छन महाराज के पुत्र कौन है ?
   (अ) लच्छू महाराज (ब) शंभू महाराज (स) बिंदादीन महाराज (द) बिरजू महाराज
4. मुंबई में "नटेश्वर नृत्य कला मंदिर" की स्थापना किसने की।
   (अ) बिरजू महाराज (ब) गोपीकृष्ण (स) पं. जयलाल (द) कुंदन लाल गंगानी
5. प्रसिद्ध कत्थक नृत्यकार रामगोपाल एवं जयकुमारी के पिता कौन थे ?
   (अ) पं. कुंदन लाल गंगानी (ब) पं. अच्छन महाराज (स) पं. जयलाल (द) गोपीकृष्ण
6. निम्न में से जयपुर घराने का कत्थक नृत्यकार है ।
   (अ) अच्छन महाराज (ब) गोपीकृष्ण (स) कुंदन लाल गंगानी (द) बिरजू महाराज

उत्तरमाला– (1) ब (2) अ (3) द (4) ब (5) स (6) स

लघुउत्तर प्रश्न

1. पं. अच्छन महाराज की नृत्य साधना प्रक्रिया का उदाहरण दीजिए।
2. पं. गोपीकृष्ण के नृत्य की विशेषताओं को लिखिए।
3. पं. जयलाल जयपुर घराने के आधार स्तंभ है, समझाइये।
4. पं. कुंदनलाल गंगानी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. पाठ्यक्रम में वर्णित नृत्यकारों के जन्म–मृत्यु वर्ष, नृत्य गुरू व घराने के नाम लिखिए।

अभ्यास बिन्दु

1. उपरोक्त नृत्यकारों के चित्र एकत्रित कर उनके जीवन संबंधी अन्य प्रेरक घटनाओं का संग्रह करें।

अध्याय 22

अ. शास्त्रीय नृत्य शैलियों का ज्ञान
ब. राजस्थानी लोक–नृत्य–शैलियों का ज्ञान

अ. शास्त्रीय नृत्य शैलियों का ज्ञान

कथकली

भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में 'कथककली' नृत्य अपनी वेशभूषा, विशिष्ट रंगों में शृंगार तथा सिर पर आकर्षक सजावट युक्त मुखौटे के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है।

'कथा' अर्थात् कहानी एवं 'कली' से तात्पर्य है कलात्मक प्रस्तुति। एतिहासिक अध्ययनों एवं विभिन्न शोध कार्यों द्वारा कथकली का संबंध प्राचीन लोक नृत्य शैलियां – कुटीयट्टम, कृष्णाट्टम एवं रामनाट्टम शैलियों से हैं। मूक अभिनय के कारण कथकली एक प्रकार का व्याख्यात्मक संगीत नाट्य है। कथकली के जीर्णोद्धार का श्रेय इस सदी के महाकवि वल्लथोलको है। 17 वीं सदी में प्रसिद्ध नर्तक केरल वर्मा ने कथकली के वर्तमान स्वरूप को जन्म दिया। त्रावणकोर राजपरिवार के द्वारा भी कथकली को प्रोत्साहन व प्राश्रय दिया गया।

कथकली में संगीत, कथा एवं अभिनय का समन्वय होता है। गायन वादन पार्श्व/नेपथ्य से होता है। नृत्य की शिक्षा केलिए बाल्यकाल में ही कलारी (एक प्रकार का अखाड़ा) भेजा जाता हैं। जहाँ विशेष व्यायाम एवं मालिश से शरीर में लोच विकसित होता है। तत्पश्चात लगभग 6 वर्षों तक नम्बूद्री पंडितों द्वारा नृत्य शिक्षा दी जाती है। कथकली की मुद्राएँ– नाट्यशास्त्र तथा हस्त लक्षण दीपिका नामक प्राचीन ग्रंथों से ग्राह्म है। हाव–भाव, लयबद्ध अंग संचालन युक्त अभिनय व नृत्य के अंतर्गत कुशल नर्तक चेहरे द्वारा ही क्रोध, साहस, प्रेम, दया, भय आदि भावों को सफलता पूर्वक व्यक्त करता है। इसमें स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरूष ही निभाते हैं। नृत्य व अभिनय द्वारा काव्यप्रदर्शन ही कथकली है। मालाबार क्षेत्र के प्रत्येक बड़े मंदिर का अपना कथकली मंडल होता है।

वेशभूषा–कथकली में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चेहरे की सज्जा है जिसमें लगभग 3–4 घंटे का समय लगता है। सात प्रकारों से मुख सज्जा की जाती है– पाक्का, पायुप्पु, कट्टी, कारी, ताटी, मिनुक्कु, एवं तेप्पु। पात्र की भूमिका के आधार पर इनमें रंग व सज्जा का भेद है। जैसे– पाक्का या पाच्चा (हरे रंग व लाल होठ)– कृष्ण, राम,

विष्णु, शिव, सूर्य, नल, अर्जुन ।

ताटी (लाल रंग)– रावण, दुशासन, हिरण्याकश्यप, मिनुक्कु (चमकीला पीला, नारंगी)– सीता, मोहिनी, पांचाली आदि अर्थात् राजसिक, तामसिक एवं सात्विक पात्रों के अनुसार रंग–चयन तथा वेशभूषा में बदलाव आता है, पोशाक में अनेकों गांठें लगानी पड़ती है। सिर पर बड़ा एवं भव्य मुकुट पूरी बांह का अंगरखा, गले में लंबा दुपट्टा, आभूषणों में चूड़ियां, पायल, हार बाजूबंद आदि वेशभूषा, पात्र की भूमिका के अनुसार निर्धारित होते है।

नृत्य के चरण– केलिकोट्ट, सेवाकलि एवं मंजूथरा, नृत्य आरंभ होने से पहले के चरण है। टोटायम (पर्दे के पीछे का नृत्य) एवं पुरुष (कतारबद्ध होकर नृत्यारंभ) से नृत्य का मुख्य कथानक शुरू होता है। थिरोनत्तम, कालब, इरट्टी आदि नृत्य के विभिन्न चरण है।

मद्दमलम, चेंडा, इडक्का (ढ़ोल नुमा वाद्य), मंजीरा, झांझ आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। कथकली नृत्य की दो महत्त्वपूर्ण शैलियां हैं– किडंगूर शैली–त्रावणकोर, कुल्लुवयी शैली– पलक्कड स्थानों से संबंधित हैं। श्री नारायण मेनन, कृष्ण नायर, रमन पिल्लई, गोपीनाथ, शंकरन नम्बूद्री, राघवन नायर, कृष्णनकुट्टी, कुंजुकुरूप आदि प्रमुख कथककली कलाकार है।

कुचिपुड़ी

भारत के प्रमुख शास्त्रीय नृत्यों में से एक कुचिपुड़ी नृत्य मूलतः आंध्रप्रदेश के कृष्णा जिले के कुचिपुड़ी नामक गांव से संबंधित है। यह परंपरागत रूप से नृत्य नाट्य है। कुंचेलापुरम (कुचिपूरी) अन्य शास्त्रीय नृत्यों के समान ही इस नृत्य की गहराई में संस्कृत साहित्य, धार्मिक कथानक, मंदिर एवं नाट्यशास्त्र आदि का आधार दिखाई देता है। इस शैली को वर्तमान स्वरूप में स्थापित कर रंगमंच पर लाने में एक सन्यासी तीर्थ नारायण यती एवं उनके शिष्य सितेन्द्र योगी (17 वीं सदीं) का योगदान है। वैष्णव परंपरा में कृष्ण आधारित शैली के रूप में, तमिलनाडु की लोक शैली भागवत मेला से इसका गहन संबंध है। कुचिपुड़ी नृत्य एकल, युगल एवं सामूहिक रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। कर्नाटक शास्त्रीय संगीत पर आधारित गीत व वाद्य द्वारा नृत्य संगति होती है। 1920 से 1950 के दौरान शास्त्रीय हिन्दु नृत्य के रूप में वेदांतम् लक्ष्मीनारायण शास्त्री, वेम्पत्ति वेंकटनारायण शास्त्री तथा चिंता वेंकटरमैया ने इस शैली को पुनः नवजीवन प्रदान किय। अमेरिकी नृत्यांगना ईथर शेरमेन (रागिनी देवी), उनकी पुत्री इन्द्राणी रहमान, यामिनी कृष्णमूर्ति, स्वप्न सुंदरी, राजा–राधा रेड्डी आदि इस शैली के प्रख्यात कलाकार व गुरु है।

तैलचित्र–सितेन्द्र योगी

गुरूराजा–राधा रेड्डी

महिला नृत्यांगनाएँ जरीदार रंगीन साड़ी या सिलाई की गई ड्रेस पहनती है। इसमें भरतनाट्यम की तरह आगे पंखा नहीं होता अपितु पल्लु की प्लेंटे बनाकर उन्हें विशेष तरीके से लगाया जाता है। केशविन्यास भी भरतनाट्यम से भिन्न होता है। सिर पर चंद्रमा एवं सूर्य के प्रतीक आभूषण लगाए जाते हैं। त्रिभुवन(तीन लोक) नुमा केश सज्जा भी की जाती है। कृष्ण आदि पात्रों में नाटकीय वेशभूषा भी प्रयुक्त की जाती है।

कुचिपुड़ी नृत्य की संगति में नट्टुवरन (मुख्य संगीतज्ञ) मंजीरे पर ताल देता है। मृदंग, वायलिन, बांसुरी, वीणा, घट्य आदि दक्षिणी वाद्यों का प्रयोग होता है। दशावतार, नारायण तीर्थ, रूक्मिणी विवाह, प्रहलाद चारित्रम, आदि कथानक नृत्य के विषय हैं। नृत्य प्रशिक्षण में शारीरिक व्यायाम, योग शास्त्रीय अध्ययन, अभ्यास एवं प्रस्तुति प्रमुख चरण हैं। नृत्य प्रस्तुति में शब्दम्, वर्णम्, पदम्, तिल्लाना आदि गीत शैलियों का प्रयोग किया जाता है। थाली नृत्य में थाली की किनार पर

खड़े होकर विविध लयकारियों का प्रदर्शन किया जाता है।

मोहिनीअट्टम

'मोहिनी'अर्थात् भगवान विष्णु का अवतार एवं 'अट्टम्' अर्थात् नृत्य।

मोहिनीअट्टम् की शाब्दिक व्याख्या ''मोहिनी'' के नृत्य के रूप में की जाती है, हिन्दू पौराणिक गाथा की दिव्य मोहिनी, केरल का शास्त्रीय एकल नृत्य–रूप है । पौराणिक गाथा के अनुसार भगवान् विष्णु ने समुद्र मन्थन के सम्बंध में और भस्मासुर के वध की घटना के सम्बंध में लोगों का मनोरंजन करने के लिए ''मोहिनी'' का वेष धारण किया था। यह केवल स्त्रियों द्वारा निष्पादित किया जाता है । मोहिनीअट्टम्' की विशेषता, बिना किसी अचानक झटके अथवा उछाल के लालित्यपूर्ण, ढलावदार शारीरिक अभिनय है ।यह, 'लस्प' शैली से संबंधित है जो स्त्रीत्वपूर्ण, मुलायम और सुन्दर है । अभिनय में सर्पण द्वारा बल दिया जाता है, तथा पंजो पर ऊपर और नीचे अभिनय होता है, जो समुद्र की लहरों तथा कोकोनट पाम वृक्षों अथवा खेत में धान पौधों के ढलान से मिलता–जुलता है

भगवान विष्णु के मोहिनी अवतार से ऐतिहासिक संबंध दर्शाने वाली इस नृत्य शैली में भरतनाट्यम एवं कथकली के तत्व समाहित हैं तथा केरल प्रदेश से इसका उद्गम है। अन्य शास्त्रीय नृत्यों की तरह ही 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ से इसके मूल सिद्धांत लिए गए है। इस नृत्य में लास्य अंग की प्रधानता है। मोहिनीअट्टम नाम का उल्लेख 16 वीं सदी के ग्रंथ 'व्यवहार माला', 'घोषयात्रा' में भी मिलता है। लेकिन इसके वर्तमान स्वरूप हेतु त्रावणकोर के राजा स्वाति तिरूनाल' के प्रयास ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। राजा स्वाति तिरूनाल ने देवदासी नृत्य के तत्त्व, कथकली के तत्व व नंग्यार शैली के मुखाभिनय के तत्त्वों को समाहित कर शैली का विशेषीकरण किया तथा प्रस्तुति हेतु अनेक पदम, वर्णम आदि की रचना की।

मोहिनीअट्टम् को 4 प्रमुख भागों में बांटा जाता है – नगनम्, जगनम्, धगनम्, सम्मिश्रम्। पदाद्यात अत्यंत कोमल एवं लय–ताल आश्रित होते हैं। 'अतिभंग' इस नृत्य की मुख्य मुद्रा है। इनमें चोलकेटु(ईश्वर आराधना) जतिस्वरम्, वर्णम, पदम् तिल्लाना, श्लोकम् प्रमुख हैं।

जरी की स्वर्णिम किनारी युक्त सफेद, क्रीम साड़ी। कमर, हाथ, गले, कान एवं सिर पर स्वर्णिम आभा युक्त आभूषण सिर के बांयी ओर जूड़ा बनाकर फूलों से सजाया जाता है। पैरों में घुंघरू, आल्ता (लाल रंग से सजावट) का प्रयोग होता है।नृत्य संगति में कर्नाटक शास्त्रीय संगीत एवं वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। मृदंगम (मद्दलम), इडक्का, बांसुरी, वीणा, कुझितालम्, आदि वाद्य प्रयोग में लिए जाते हैं। मोहिनीअट्टम के प्रख्यात नृत्याचार्यों में वल्लथोल नारायणमेनन, गोपीनाथ, मुकुंदराजा, कृष्ण पाणिक्कर, कल्याणीकुट्टीअम्मा, राघवन नायर, कनक रेले, कुंजन पणिक्कर आदि।

सत्रिया

पूर्वोत्तर 'आसाम' के वैष्णव मठों एवं मंदिरों से प्रचलित शास्त्रीय नृत्य नाट्य शैली 'सत्रिया' है। इसमें केन्द्रीय विषय कृष्ण एवं राधा है। सन् 2000 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा इसे आधिकारिक पहचान प्रदान की। आसाम में मंदिर व मठों को 'सत्रा' कहते हैं इनमें नृत्य के विशेष स्थान 'नामघर' कहलाते हैं। सत्रिया नृत्य शैली को स्थापित करने में 15 वीं सदी के वैष्णवसंत श्रीमंत शंकर देव का नाम प्रमुख है, नृत्य के मूलभूत तत्त्व नाट्यशास्त्र अभिनय दर्पण व संगीत रत्नाकर पर ही आधारित है। प्रारंभ में यह नृत्य केवल पुरुष साधकों द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता था, वर्तमान में महिला एवं पुरुषों की समान सहभागिता दिखाई देती है।

यह असमी नृत्य और नाटक का नया खजाना, शताब्दियों तक सत्रों द्वारा एक बड़ी प्रतिज्ञा के साथ विकसित और संरक्षित किया गया है। इस नृत्य शैली को अपने धार्मिक विचार और सत्रों के साथ जुड़ाव के

कारण उपयुक्त ढंग से सत्रिया नाम दिया गया। शंकरदेव ने विभिन्न स्थानीय शोध प्रबन्धों, स्थानीय लोक नृत्यों जैसे विभिन्न घटकों को शामिल करते हुए इस नृत्य शैली की रचना की। नव वैष्णव आंदोलन से पहले असम में दो नृत्य शैलियां थीं– ओजा पल्लि और देवदासी। ओजा पल्लि नृत्यों के दो प्रकार अब तक असम में हैं दृसुकनानी, जिसमें ओजा पल्लि नृत्य सर्प देवी की पूजा के अवसर पर समूह गायन की संगति करते हैं। शक्ति सम्प्रदाय (पंथ) का सुकनानी ओजा पल्लि है। मनसा और व्याहार गीत, रामायण, महाभारत और कुछ पुराणों के असमी रूपांतर से ग्रहण किए गए हैं और व्याहार गीत वैष्णव सम्प्रदाय का है। श्रीमंत शंकरदेव ने सत्र में अपने दैनिक धार्मिक अनुष्ठानों में व्याहार गीतों को जोड़ा। अब तक भी व्याहार गीत असम के सत्रों के धार्मिक अनुष्ठानों का एक भाग हैं।

सत्रिया में नृत्त, नृत्य, नाट्य का सुंदर सम्मिश्रण है, यह नृत्य अंकिया नाट भाओना एवं मणिपुरी शैली से साम्य है, तथा 'नामघरों में सन्यासियों द्वारा उपनिषद, भागवत पुराण के कथानको के आधार पर किया जाता था श्री मत शंकर देव एवं उनके शिष्य माधवदेव द्वारा सत्रिया नृत्य की शैलीगत विशेषताओं, प्रस्तुति एवं रचनाओं पर सूक्ष्म कार्य किया गया, वर्तमान सदी में इसे वैश्विक पहचान देने में संगीत नाटक अकादमी एवं डा. भूपेन हजारिका के प्रयास अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहे हैं। नृत्य प्रस्तुति में पौरुषिक भंगी (तांडव) एवं स्त्री भंगी (लास्य) का मिश्रण है। पारंपरिक रूप से आज भी दैनिक आराधन के तौर पर पुरुष सन्यासियों (भोकोट) द्वारा 'सत्रा' में किए जाते हैं।

पुरुष वेशभूषा में धोती, चादर, पागुरी (पगड़ी) तथा महिला परिधान में – गुरी, चादर तथा कांची होते हैं। ये वस्त्र सफेद आसामी पाट सिल्क पर लाल, नीली, पीली, हरे रंग की डिजाइनों में बुनावट किए होते हैं। कृष्ण एवं नादुभंगी नृत्य पीले, सूत्रधर नृत्य में सफेद आदि विशेष परिधान प्रचलित हैं। आभूषणों में ललाट पर 'कोपाली', 'मुथीखारू' गामखारू (हाथ कड़े), मातामोनी (गले हेतु) तुका सुना (कर्ण हेतु) सत्रिया नृत्य की प्रस्तुति में रागों पर आधारित 'बोर गीत' नामक रचनाएँ प्रयुक्त होती है। वाद्यों में – खोल, मंजीरा, पाटीताल, खूंटीताल, बांसुरी काली (शहनाई के समान) मंच पर वायलिन हारमोनियम आदि भी प्रयुक्त होते हैं।

पाद (पैर) संचालन की स्थिति को तीन भागों– पुरुष ओरा, प्रकृति ओरा एवं सम में बांटा जाता है। हस्त मुद्राएँ प्रायः नाट्यशास्त्र, अभिनयदर्पण एवं हस्तमुक्तावली ग्रंथ पर आधारित हैं। अंकिया नाट में पात्रों की स्थिति के अनुरूप 'मास्क' (मुखौटे) का प्रयोग भी होता है।सूत्रधारी नाच, प्रवेशर नाच, रासार नाच, युद्धार नाच, झुमुरा नाच, नादु भंगी, चाली नाच

सत्रिया नृत्य के प्रमुख गुरूओं में – मनीराम दत्त मुक्तियार, गहन चंद्र गोस्वामी, जतिन गोस्वामी, घनाकांत बोरा, तनकेश्वर हजारिका, रामकृष्ण तालुकदार आदि है।

महिला कलाकारों में – गोरिया हजारिका, अनिता शर्मा, मेनका बोरा, अपराजिता दावका आदि है।

ब. राजस्थानी लोक–नृत्य शैलियों का ज्ञान

कच्छी घोड़ी नृत्य

कच्छी घोड़ी, कच्ची घोड़ी, काछी घोरी कच्छ की घोड़ी नाम से जाना जाने वाला नृत्य मूलतः राजस्थान के शेखावटी अंचल से है लेकिन राजस्थान के प्रत्येक भाग के अलावा अन्य प्रदेशों में भी किया जाता है। महाराष्ट्र और गुजरात में तो इसी नाम से जाना जाता है, तमिलनाडु में 'पोइक्कल कुथीराईअट्टम्', उड़ीसा में 'चैतोघोड़ा' नाम से घोड़े बहुत अंतर के साथ प्रचलित है। सरगरा, भांभी, भावी, कुम्हार आदि जातियों द्वारा प्राश्रित यह नृत्य विशेष राजकीय अवसरों पर तो सभी वर्ग के कलाकारों को करते देखा जाता है।

इस नृत्य की उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक कथानक प्रचलित हैं जिनमें – मुगल–मराठा युद्ध, राणा प्रताप व चेतक, लोक देवता रामदेव पीर, तथा गरीबों के हितैषी लुटेरों आदि प्रसिद्ध है।

नृत्य प्रस्तुति में गायक, वादक एवं नृत्यकार सम्मिलित प्रस्तुति देते हैं, शादी–विवाह, स्वागत समारोह, सामाजिक उत्सवों तथा राजकीय आयोजनों में नृत्य दिखाई देता है। नृत्यकार कुरता एवं साफा व घुंघरू पहनता है। बांस, टोकरी व कपडे से घोड़ी, जिसमें सुंदर एवं आकर्षक काँच कढ़ाई तथा सजावट कार्य किया जाता है। नृत्यकार इसमें कमर तक प्रवेश करके हाथ में तलवार घुमाते हुए नकली युद्ध का प्रदर्शन करता है। घोड़ी का सिर तथा रोंएदार गुच्छेवाली पूंछ हिलते–डुलते वास्तविक घोड़ी का आभास कराते हुए दर्शकों को रोमांचित करती है। नृत्य के दौरान ताशा एवं ढ़ोल वाद्य वातावरण में उत्तेजना एवं युद्ध का वातावरण उपस्थित करते हैं। लसकरिया बींद, रसाला, रंगभरिया, भंवरिया, टोडरमल आदि गीत विशेष प्रचलित है।

लोक कलाकारों की आजीविका तथा लोक नृत्यों के प्रचलित परंपराओं में कच्छीघोड़ी नृत्य का विशेष महत्त्व है।

नृत्यांगना गुलाबो

कालबेलिया नृत्य

विश्व स्तर पर राजस्थान के प्रचलित नृत्यों में कालबेलिया नृत्य की उत्कृष्ट पहचान है। कालबेलिया जनजाति जो अधिकतर पाली, भीलवाड़ा, सिरोही, चित्तौड़, अजमेर एवं उदयपुर जिलों में स्थित है, मूल रूप से सांप पकड़ने, पालने, विष निकालने, उपचार करने, नृत्य एवं संगीत आदि कार्य करते हैं। ये सपेरा, जोगी, जोगीड़ा नाम

से भी जाने जाते हैं तथा जलंधर नाथ के शिष्य 'करणीपाव' से अपना संबंध मानते हैं।

कालबेलिया समुदाय हिन्दु धर्म को मानते हैं एवं घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करते हैं।

कालबेलिया नृत्य के संगीत में पूंगी, इकतारा, डफली, चंग, धुरालियों, खंजरी आदि प्रमुख वाद्य हैं। स्त्रियाँ ही अधिकतर नृत्य करती हैं। कभी–कभी पुरूष भी साथ नृत्य करते हैं। नृत्य की गति तीव्र कमर का विशेष तौर पर मटकना, नृत्य में करतब प्रदर्शन, कंठ एवं वाद्यों का सुरीलापन एवं काले वस्त्रों पर आकर्षक सजावट युक्त परिधान तथा आभूषण इस नृत्य को वैश्विक पहचान देने में महत्त्वपूर्ण कारक है। राजस्थान के अधिकांश लोक नृत्यों में घूमर नृत्य की झलक दिखाई देती है। इसके विपरीत कालबेलिया नृत्य में हाथ, पैर एवं कमर का अपना स्वतंत्र संचालन एवं नृत्य भंगिमाएँ हैं।

कालबेलिया नृत्य मंडली

कालबेलिया स्त्रियाँ डफली, छोटी चंग बजाकर बस्ती, मोहल्ले में नाचती गाती है तथा पैसा आटा आदि मांग कर लाती है। होली एवं अन्य त्यौहारों पर प्रायः ऐसा देखा जाता है। व्यावसायिक तौर पर इन के नृत्य की आजकल सर्वत्र खूब मांग रहती है। इस कारण इनके जीवन स्तर में बहुत बदलाव देखे गए हैं। प्रख्यात नृत्यांगना गुलाबों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस नृत्य को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके गीतों की गमक एवं खटके तथा नृत्य में जोश व मस्ती के साथ द्रुत लय में नृत्य प्रस्तुति विदेशी पर्यटकों को भी आकर्षित करते हैं।

गैर–नृत्य

'घेर' 'गैर', 'गैहर' राजस्थान के होली नृत्यों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण 'नृत्य' नाम हैं। गोल घेरे में इस नृत्य की संरचना होने के कारण इसका नाम 'गैर' या 'घेर' प्रचार में आया है। इस नृत्य में पुरुष लकड़ी की डांडिया लेकर गोल घेरे में नृत्य करते हैं। वृत्ताकार आकृति में यह नृत्य केवल पुरूषों द्वारा किया जाता है। नाचते–नाचते एक दूसरे से आगे पीछे डंडियों से टकराव, पैरों की विशेष गति एवं नगाड़े की ताल का साम्य वातावरण में ओज, आनंद की सृष्टि करता है।

होली के त्यौहार का माहौल गैर नृत्य एवं चंग की गूंज से शुरू होता है। नृत्य के दौरान ऊँची 'पटान' स्थान बनाया जाता है जहां नगाड़ा,ढ़ोल, शहनाई, चंग वादक बैठते हैं तथा सभी जाति वर्ग के लोग गोल घेरे में नृत्य करते हैं। नृत्य के साथ गीत भी गाए जाते हैं। नर्तक विविध ऐतिहासिक वेशभूषाओं में भी नृत्य करते हैं, पैरों में घुंघरू पहनते हैं।

राजस्थान में मेवाड़ (नाथद्वारा, शाहपुरा, भीलवाड़ा, मांडल) तथा मालानी (बाड़मेर, पारलू, सनावड़ा मांगला) की गैर अत्यंत प्रसिद्ध है। दोनों ही प्रकारों में नृत्य की चाल का फर्क है।

इनमें ताल कहरवे की ही एक विशेष चाल –

धिंऽऽधिं नाऽ धिंऽ धिंधिं ऽधिं नाऽ ऽऽ

मंद के मध्य लय की ओर झूमते हुए बढ़ती हैं तथा नर्तक को मदमस्त कर देती है। मेवाड़ की गैर में सफेद अंगरखी, सफेद धोती, एवं लाल पगड़ी पहनते हैं। मालानी की गैर में सफेद 'औंगी' जो फ्राक की तरह लंबी होती है, इस पर तलवार का पट्टा, गोल साफा (पगड़ी) पहनते हैं। गैर नृत्य राजस्थान का ओजपूर्ण एवं विशिष्ट नृत्य है। राजस्थान की रजवाड़ी शान का महिला प्रधान नृत्य यदि घूमर है तो पुरुष प्रधान नृत्य निश्चित तौर पर 'गैर' नृत्य को ही कहा जा सकता है जिसमें हम राजस्थान की रौबीली शान व परंपरा का अनुभव कर सकते हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु –

- कथकली में – चित्रकला, मूर्तिकला, नाट्य एवं संगीत कला का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। पारंपरिक तौर पर कथकली प्रशिक्षण में 'कलारी' (एक प्रकार का अखाड़ा) तथा नम्बूद्री पंडितों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। कथकली का मूल रामनाट्यम् तथा कृष्णाट्टम् लोक शैलियों में मिलता है कथकली के जीर्णोद्धार व शैलीगत विकास में केरल वर्मा तथा महाकवि वल्लथोल का स्थान महत्त्वपूर्ण है।
- कुचिपुड़ी नृत्य का वर्तमान स्वरूप श्री सितेन्द्र योगी के प्रयासों की देन है। थाली की किनार पर नृत्य, कुचिपुड़ी नृत्य का एक अंग है।
- केरल प्रदेश से दो शास्त्रीय नृत्य की शैलियां विकसित हुई है – कथकली एवं मोहिनीअट्टम्।
- त्रावणकोर के राजा स्वाति तिरूनाल ने मोहिनीअट्टम् के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।
- आसाम के वैष्णव मंदिरों में सत्रिया–नृत्य की परंपरा रही है। सन् 2000 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा आधिकारिक तौर पर इसे शास्त्रीय नृत्य का दर्जा दिया गया है।
- अन्य राज्यों में भी कच्छी घोड़ी नृत्य के समान ही नृत्य देखने को मिलते हैं। इसमें नकली घोड़ी पर सवार नर्तक हाथ में तलवार लहराता युद्ध का नृत्यमय प्रदर्शन करता है।
- पूंगी, डफली, खंजरी, घुरालियों आदि वाद्य कालबेलिया नृत्य में प्रयुक्त होते हैं। कालबेलिया नृत्य में गायन, वादन, नृत्य तथा वेशभूषा अत्यंत प्रभावी अंग है। गुलाबों नृत्यांगना ने कालबेलिया नृत्य को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दी है।
- होली के दिनों में 'गैर या घेर' नृत्य पुरुषों का एक प्रमुख एवं प्रभावी नृत्य हैं। गोल घेरे में विशेष परिधान पहने पुरुष छड़ीनुमा डंडियों को टकराकर नृत्य करते हैं। गैर नृत्य में कहरवा ताल की एक विशेष चाल दर्शकों व नर्तक को झूमने पर मजबूर कर देती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. 'कच्छी घोड़ी' शब्द से तात्पर्य जाना जाता है –
   अ. अकबर की घोड़ी ब. कच्छ प्रदेश की घोड़ी
   स. सपेरों की घोड़ी द. कच्छावा घोड़ी
2. कच्छी घोड़ी नृत्य के समान ही, तमिलनाडु में प्रचलित नृत्य है –
   अ. चैतो घोड़ा ब. मोहिनीअट्टम् स. पोइक्कल कुथीराई अट्टम् द. कृष्णाट्टम्
3. पूंगी, डफली आदि वाद्यों का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है –
   अ. कालबेलिया ब. तेराताली स. घूमर द. कच्छी घोड़ी
4. कालबेलिया नृत्य की प्रसिद्ध नृत्यांगना है –
   अ. अल्लाजिलाई बाई ब. तीजन बाई स. फलकूबाई द. गुलाबो
5. केवल पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है –
   अ. मोहिनीअट्टम् ब. कुचिपुड़ी स. गैर नृत्य द. कालबेलिया
6. 'सफेद औंगी' (फ्राकनुमा वस्त्र) पहनकर 'गैर' किया जाता है –
   अ. बाड़मेर ब. उदयपुर स. नाथद्वारा द. शाहपुरा
7. 'अंकिया नाट्' किस नृत्य से संबंधित है ?
   (अ) कथकली (ब) कुचिपुड़ी (स) सत्रिया (द) मोहिनीअट्टम्

8. कथककली नृत्य किस लोक शैली से प्रभावित है ?

(अ) कुटीयट्टम् (ब) भागवत मेला (स) अंकियानाट (द) देवदासी नृत्य

9. खोल नामक वाद्य किस नृत्य शैली का प्रमुख वाद्य है ?

(अ) सत्रिया (ब) कथकली (स) मोहिनीअट्टम् (द) कुचिपुड़ी

उत्तरमाला– (1) ब (2) स (3) अ (4) द (5) स (6) अ (7) स (8) अ (9) अ

1. संबंध मिलाइये

1. कथकली	–	अ. आंध्रप्रदेश
2. कुचिपुड़ी	–	ब. केरल
3. मोहिनीअट्टम्	–	स. आसाम
4. सत्रिया	–	द. केरल

उत्तर– 1. ब 2. अ 3. द 4. स

2. संबंध मिलाइये

1. केरल वर्मा	–	अ. सत्रिया
2. सितेन्द्र योगी	–	ब. कथकली
3. स्वाति तिरूनाल	–	स. कुचिपुड़ी
4. श्रीमत शंकर देव	–	द. मोहिनी अट्टम्

उत्तर– 1. ब 2. स 3. द 4. अ

लघुउत्तर प्रश्न –

1. कच्छी घोड़ी नृत्य में नृत्यकार एवं घोड़ी की वेशभूषा का उल्लेख कीजिए।
2. कालबेलिया नृत्य की विशेषताओं को समझाइये।
3. गैर–नृत्य की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।
4. कच्छी घोड़ी, कालबेलिया एवं गैर नृत्य में प्रयुक्त किए जाने वाले वाद्यों के नाम लिखिए।
5 कालबेलिया जनजाति का सामान्य परिचय लिखिए।
6 कालबेलिया एवं गैर नृत्य में तुलनात्मक अंतर स्पष्ट कीजिए।
7. पाठ्यक्रम में वर्णित चारों नृत्यों के मूलप्रदेश, संबंधित लोक नृत्य शैली, प्रमुख कलाकारों का उल्लेख कीजिए।
8. उपर्युक्त चारों नृत्यों में प्रयुक्त किए जाने वाले वाद्यों का उल्लेख कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम में वर्णित नृत्यों की वेशभूषा का उल्लेख कीजिए।

अभ्यास बिन्दु

1. पाठ्यक्रम के नृत्यों के वीडियो यू ट्यूब अथवा सी.डी आदि अन्य माध्यमों से देखकर अध्ययन करें।
2. शास्त्रीय नृत्य एवं लोक नृत्यों में अंतर को समझें।
3. शास्त्रीय नृत्यों का नाट्यशास्त्र से क्या संबंध है ? इस विषय की ऐतिहासिकता को अध्यापक की सहायता से समझें।
4. पाठ्यक्रम में निर्धारित तीनों लोक नृत्यों के कार्यक्रम अथवा रिकार्डिंग का अध्ययन कर – वेशभूषा, अंग संचालन, वाद्य, संगीत, तथा प्रस्तुति की समीक्षा करें।
5. तीनों लोक नृत्यों के तकनीकी अंतर को समझें एवं इनके चित्र अपने संग्रह में संग्रहित करें।

अध्याय 23

ताल–परिचय

ताल को विभिन्न लयकारियों में लिखने के तरीके को स्वर विहार भाग– 1 में समझाया जा चुका है। संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जा रहा है– किसी ताल के ठेके की दुगुन, चौगुन आदि से तात्पर्य है कि– मूल ठेके में ताल की बोल व्यवस्था में बदलाव करते हुए, जहाँ ठेके में निर्धारित एक मात्रा काल में एक बोलबोला जाता है, वहीं दुगुन क्रिया में एक मात्रा काल में दो बोल बोले जायेंगें तथा चौगुन क्रिया में एक मात्रा काल में चार बोल बोले जायेंगें। इस प्रकार यदि 10 मात्रा की ताल में दुगुन के अंतर्गत पूरे ठेके को 5 मात्रा काल में ही पूरा कर लिया जायेगा। यहाँ विद्यार्थी ध्यान दें कि ताल की मूल रचना 10 मात्रा काल में है, लेकिन दुगुन प्रक्रिया को 5 मात्रा में ही कर लिया गया है, अतः शेष 5 मात्रा काल को पूर्ण करने के दो–दो तरीके हैं–

(1) संपूर्ण ताल के मात्रा काल में दुगुन क्रिया को दो बार बोला जाये अर्थात् ताल के दो आवर्त्तन बोले जायेंगे।

(2) प्रारंभ में 5 मात्रा तक ठेका तथा शेष 5 मात्राओं में दुगुन की प्रस्तुति अर्थात् 10 मात्रा काल में दुगुन की आवृति अंतिम 5 मात्रा में ली जाएगी, इस प्रकार ताल का एक चक्र पूर्ण होगा।

उदाहरण– ताल झपताल – 10 मात्रा, भाग 4 ताली 3, खाली 1

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ठेका	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
चिह्न	×		2			0		3		
दुगुन (प्रथमतरीका)	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना,	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
चिह्न	×		2			0		3		
दुगुन (दूसरातरीका)	धी	ना	धी	धी	ना	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
चिह्न	×		2			0		3		

इसी प्रकार सभी तालों में दुगुन एवं चौगुन (एक मात्रा में 4 बोल) क्रियाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है। पाठ्यक्रम में निर्धारित तालों के ठेके मय दुगुन, चौगुन उल्लिखित किये जा रहे हैं–

ताल–तीव्रा (7 मात्रा, 3 भाग)

तीव्रा ताल में 7 मात्रा एवं 3 भाग हैं, इसके विभाग क्रमशः 3/2/2 मात्राओं में विभाजित हैं। तीव्रा ताल का वादन पखावज वाद्य पर अधिक किया जाता है इसमें खालीं नहीं होती है, क्रमशः 1, 4, 6 वीं मात्रा पर ताली है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7
ठेका	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
चिह्न	×			2		3	
दुगुन	धादिं	तातिट	कतगदि	गन,धा	दिंता	तिटकत	गदिगन
चिन्ह	×			2		3	
चौगुन	धादिंतातिट	कतगदिगनधा	दिंतातिटकत	गदिगनधादिं	तातिटकतगदि	गनधादिंता	तिटकटगदिगन
चिह्न	×		2			0	

ताल झपताल– (10 मात्रा, 4 भाग)

ताल झपताल का विभाजन 2/3/2/3 के क्रम से है इस ताल में तीन ताली (1, 3, 8 वीं मात्रा पर) तथा एक खाली (6वीं मात्रा पर है)

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ठेका	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
चिह्न	×		2			0		3		
दुगुन	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
चिह्न	×		2			0		3		
चौगुन	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	ऽऽ,धीना	धीधीनाती	नाधीधीना
चिह्न	×		2			0		3		

इकताल (12 मात्रा, 6 भाग)

ताल इकताल में 12 मात्रा व 6 भाग है। प्रत्येक विभाग में दो–दो मात्राएँ हैं क्रमशः 1, 5, 9, 11 वीं मात्रा पर ताली 3, 7वीं मात्रा पर खाली प्रयोग की जाती है। शास्त्रीय संगीत की सर्वाधिक प्रचलित तालों में इकताल का स्थान है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
चिह्न	X		0		2		0		3		4	
दुगुन	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना
चिह्न	X		0		2		0		3		4	
चौगुन	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	?	?	?
चिह्न	X		0		2		0		3		4	

अंतिम तीन मात्राओं में विद्यार्थी चौगुन बनाने का प्रयास करें।

धमार (14 मात्रा, 4 भाग)

ताल धमार में 14 मात्रा व 4 भाग होते हैं, धमार ताल का भाग विभाजन 5/2/3/4 है इसमें 1, 6, 11वीं मात्रा पर ताली तथा 8 वीं मात्रा पर खाली होती है, धमार गायन शैली में इस ताल का पखावज पर वादन अधिक प्रचलित है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
ठेका	क	धिं	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
चिह्न	×					2		0			3			
दुगुन	क	धिं	ट	धि	ट	धा	ऽ	कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ
चिह्न	×					2		0			3			
चौगुन	क	धिं	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ऽऽ,कधि	टधिटधा	ऽगतिट	तिटताऽ
चिह्न	×					2		0			3			

त्रिताल (16 मात्रा, 4 भाग)

त्रिताल अथवा तीन ताल में 16 मात्रा तथा 4 भाग होते हैं। प्रत्येक भाग में 4–4 मात्राएं होती हैं। 1, 5 व 13वीं मात्रा पर ताली तथा 9वीं मात्रा पर खाली होती है। शास्त्रीय संगीत में अत्यंत प्रचलित ताल है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ठेका	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
चिह्न	×				2				0				3			
दुगुन	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
चिह्न	×				2				0				3			
चौगुन	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा
चिह्न	×				2				0				3			

पंजाबी–ताल

पंजाबी ताल में मात्र सोलह, भाग चार होते है। प्रत्येक भाग में चार–चार मात्रा होती है। एक, पांच तथा तेरह पर ताली और नौ पर खाली।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	ऽधी	ऽक	धा	धा	ऽधी	ऽक	धा	त	ऽती	ऽक	ता	धा	ऽधी	ऽक	धा
X				2				0				3			

दुगन

धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	ताऽती	ऽकता	धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	धाऽधी	ऽकधा	ताऽती	ऽकता	धाऽधी	ऽकधा
X				2				0				3			

मुख्य बिन्दु–

- ताल की व्यवस्थित एवं मूल रचना ठेका कहलाती है जिसमें विभिन्न बोल, विभाग एवं ताल चिह्न निर्धारित होते हैं।
- लय (गति) के विभिन्न प्रकार लयकारी कहलाते हैं जैसे दुगुन, तिगुन एवं चौगुन आदि।
- दुगुन से तात्पर्य एक मात्रा काल में ठेके के (ताल की मूल रचना के) 2 बोल बोले जायेंगे।
- चौगुन लयकारी के अंतर्गत एक मात्रा काल में ठेके के 4 बोल बोले जाऐंगे
-

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

पं. राजेन्द्र गंगानी

1. ग ति ट किस ताल का भाग हैं ?
   (अ) तीव्रा (ब) झपताल (स) धमार (द) इकताल
2. ताल इकताल में "धिं" का प्रयोग कितनी बार है ?
   (अ) 2 बार (ब) 4 बार (स) 6 बार (द) 3 बार
3. ताल झपताल के एक आवर्त्तन की दुगुन कितनी मात्रा में आएगी ?
   (अ) 5 मात्रा (ब) 2 मात्रा (स) 10 मात्रा (द) 7 मात्रा
4. किस ताल का वादन पखावज पर अधिक किया जाता है ?
   (अ) त्रिताल (ब) तीव्रा (स) इकताल (द) झपताल
5. क्रमशः दुगुन एवं चौगुन लयकारी हेतु एक मात्रा काल में ताल के कितने बोल प्रयुक्त होते हैं ?
   (अ) 2 एवं 4 बोल (ब) 3 एवं 4 बोल (स) 4 एवं 2 बोल (द) 1 एवं 2 बोल

उत्तर– (1) स (2) द (3) अ (4) ब (5) अ

लघुउत्तर प्रश्न–

1. ताल त्रिताल की चौगुन के चार आवर्त्तन, कितनी मात्रा में आयेंगे? समझाइये
2. ताल इकताल की दुगुन, व चौगुन का एक–एक आवर्त्तन, ताल के एक चक्र में ही किस प्रकार लिखा जाएगा ? स्पष्ट कीजिए।
3. ताल के एक आवर्त्तन की लयकारी तथा संपूर्ण ताल के एक आवर्त्तन में लयकारी को समझाइए।

अभ्यास बिन्दु

- पाठ्यक्रम की तालों के ठेके ताली खाली लगाकर अभ्यास करें।
- लयकारी का अभ्यास द्रुत मध्य एवं विलंबित लय में करें।
- विभिन्न तालों की दुगुन चौगुन लयकारी के एक–एक आवर्त्तन को संयुक्त रूप से किसी ताल के एक ही आवर्त्तन में अभ्यास करें।

अध्याय 24

क्रियात्मक कार्य–हेतु संदर्भ–सामग्री

ठेका तीन–ताल

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	त	धिं	धिं	धा
×				2				0				3			

ततकार के विभिन्न प्रकार–1 (ठाँह लय)

1	ताऽ	थेई	थेई	तत	आऽ	थेई	थेई	तत	ताऽ	थेई	थेई	तत	आऽ	थेई	थेई	तत
	×				2				0				3			
2	ताथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत	आथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत	ताथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत	आथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत
	×				2				0				3			
3	त्राऽऽत्रि	घिऽऽन	ताऽथेई	थेईतत	आऽऽत्रि	घिऽऽन	ताऽथेई	थेईतत								
	×				2											
	त्राऽऽत्रि	घिऽऽन	ताऽथेई	थेईतत	आऽऽत्रि	घिऽऽन	ताऽथेई	थेईतत								
	0				3											
4	ताऽथेई	थेईतत	ताऽऽत्रि	घिऽऽन	आऽथेई	थेईतत	ताऽऽत्रि	घिऽऽन								
	×				2											
	ताऽथेई	थेईतत	ताऽऽत्रि	घिऽऽन	आऽथेई	थेईतत	ताऽऽत्रि	घिऽऽन								
	0				3											
5	ताऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ	तकतक	तकतक	आऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ	तकतक	तकतक								
	×				2											
	ताऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ	तकतक	तकतक	आऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ	तकतक	तकतक								
	0				3											
6	तकतक	तकतक	ताऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ	तकतक	तकतक	आऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ								
	×				2											
	तकतक	तकतक	ताऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ	तकतक	तकतक	आऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ								
	0				3											
7	तकतक	तकतक	तकतक	तकतक	तकतक	तकतक	ताऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ								
	×				2											
	तकतक	तकतक	तकतक	तकतक	तकतक	तकतक	आऽऽत्रि	घिऽन्नाऽ								
	0				3											

8	ऽऽतक	तकतक	ताऽथेऽ	ईऽताऽ		ऽऽतक	तकतक	ताऽथेऽ	ईऽताऽ
	×					2			
	ऽऽतक	तकतक	ताऽथेऽ	ईऽताऽ		ऽऽतक	तकतक	आऽथेऽ	ईऽताऽ
	0					3			
9	ताऽथेऽ	ईऽताऽ	ताऽथेऽ	ईऽताऽ		ताऽथेऽ	ईऽताऽ	ऽऽतक	तकतक
	×					2			
	आऽथेऽ	ईऽताऽ	आऽथेऽ	ईऽताऽ		ताऽथेऽ	ईऽताऽ	ऽऽतक	तकतक
	0					3			
10	ताऽथेऽ	ईऽताऽ	तकतक	तकतक		आऽथेऽ	ईऽताऽ	तकतक	तकतक
	×					2			
	ताऽथेऽ	ईऽताऽ	तकतक	तकतक		आऽथेऽ	ईऽताऽ	तकतक	तकतक
	0					3			
11	ताऽथेऽ	ईऽताऽ	थेऽईऽ	ताऽताऽ		तकतक	तकतक	ताऽथेऽ	थेईतत
	×					2			
	आऽथेऽ	ईऽताऽ	थेऽईऽ	ताऽताऽ		तकतक	तकतक	ताऽथेऽ	थेईतत
	0					3			

सलामी तोड़ा

ताऽ	थेई	थेई	तत	ताऽथेई	थेईतत	आऽथेई	थेईतत
×				2			
ताऽ	थेई	थेई	तत	ताऽथेई	थेईतत	आऽथेई	थेईतत
0				3			
तऽऽत्	तऽऽत्	ताऽथेई	थेईतत	आऽथेई	थेईतत्	तऽऽत्	तऽऽत
×				2			
थेई	याथे	ईया	त्राम	तततत	ताऽथेईथेईतत्	आऽथेईथेईतत्	तिगधाऽदिगदिगथेईत्राम
0				3			

तोड़ा

ताऽ थेई तत थेई। आऽ थेई तत थेई। थेई थेईताऽ थेई थेईताऽ। थेई थेई तत तत। ताऽ ऽऽ तत् तत्। ताऽथेई
× 2 0 3 × 2
थेईतत आऽथेई, थेईतत। तिगधादिगदिग थेईत्राम थेईऽऽ तिगधादिगदिग। थेईत्राम थेईऽऽ तिगधाऽदिगदिग थेईत्राम।
0 3

ठाह दुगून का तोड़ा

थुन थुन तत् तत्। तिग्धाऽ तिगतिग थेई ऽऽ। थुन् थुन् तत् तत्। तिग्धाऽऽ दिगदिग थेई ऽऽ।
× 2 0 3
थुन् थुन् तत् तत्। तिग्धाऽऽ दिगदिग थेई ऽऽ। तिग्धाऽ दिगदिग थेई तिग्धाऽ। दिगदिग थेई तिग्धाऽ दिगदिग।
× 2 0 3
थुन्थुन् तत्तत् तिग्धाऽदिगदिग थेईऽऽ। थुन्थुन् तत्तत् तिगधाऽदिगदिग थेईऽऽ।
× 2
थुन्थुन् तत्तत् तिग्धाऽदिगदिग थेईऽऽ। तिगधाऽदिगदिग थेईतिगधाऽ दिगदिगथेई तिगधाऽदिगदिग।
0 3

टुकड़ा

ताऽ थेई तत थेई। आऽ थेई तत थेई। तिगधाऽदिगदिग थेईत्राम थेईऽऽ तिगधाऽदिगदिग। थेईत्राम थेईऽऽ
× 2 0 3
तिगधाऽदिगदिग थेईत्राम।

टुकड़ा

ताऽथेई थेईतत आऽथेई थेईतत्। थेई थेई थेई त्राम। थेई तत थेई त्राम। थेई ऽऽ थेई थेई।
× 2 0 3
थेई त्राम थेई तत । थेई त्राम थेई ऽऽ। थेई थेई थेई त्राम। थेई तत् थेई त्राम।
× 2 0 3

चक्करदार–परन

गिदिगन नागेतिट तागेतिर किटतक। धकिटधा ऽनधाऽ गदिगन धाऽगिदि। गिनधाऽ गिदिगिन धाऽऽऽ गिदिगिन।
× 2 0
नागेतिट तागेतिर किटतक धकिटधा। ऽनधाऽ गदिगिन धाऽगिदि गिनधाऽ। गिदिगिन धाऽऽऽ गिदिगिन नागेतिट
3 × 2
तागेतिट किटतक धकिटधा ऽनधाऽ। गिदिगिन धाऽगिदिगिनधाऽ गिदिगिन्।
0 3

परन, आड़ी–लय

धात्रक धेकेट धात्रक धेकेट । धाऽक्र धातिट धात्रक धेकेट । तिटति टतिट तात्रक तेकेट। धिटधा ऽधिर धाऽधा ऽधाऽ।
× 2 0 3
धिटधि टधिट धाऽकिटतक धुमकिटतक। धाऽकिटतक धुमकिटतकधाऽऽ धाऽकिटतक।
× 2
धुमकिटतक धाऽकिटतक धुमकिटतक धाऽऽ। धाऽकिटतक धुमकिटतक धाऽकिटतक धुमकिटतक।
0 3

कृष्ण–लास्य

छुमछुम छननन छननन नाऽचत। गिरधर गोपिनकोसंग लेके। हाऽथक नकपिच काऽरीऽ भाऽगत। इत उत राधा प्यारी।
× 2 0 3
धरनहिं पाऽवत कृष्णमु राऽरीऽ । ताऽथेई थेईतत आऽथेई थेईतत्। त्रामतत थेईतत थेईऽऽ त्रामतत। थेईतत थेईतत
× 2 0 3
त्रामतत थेईतत।

शिवतांडव–परन

किनजग थरींऽग किनजग थरींऽग। जगथरीं ऽगजग थरींऽग झिनझिन। तकथुन थरींऽग धिकथाऽ थरींऽग।
× 2 0
धदीगन थरींऽग कुकुदित थरींऽग। थरींऽग थरींऽग थरीथरी थरींऽग । झैऽकिट झिनकिट तकथुन थुनकिट।
3 × 2
थेईऽऽथेईयाथे ईयाथेई, थेईथेई। याथेईया थेईथेई थेईयाथे ईयाथेई।
0 3

नृत्यांगी–तोड़ा (नृत्य के बोल पर आधारित)

त्रामतिग्धा दिगदिगथेइ त्रामतिग्धा दिगदिगथेइ। ततथेइ तथेइत ता ततथेइ । तथेइत ता ततथेइ तथेइत।
× 2 0
तिग्धादिगदिग त्तत्राम थेइत्राम थेइत्राम। थेइ तिग्धादिगदिग त्तत्राम थेईत्राम। थेइत्राम थेइ तिग्धादिगदिग त्तत्राम।
3 × 2
थेईत्राम थेईत्राम थेइ थेईत्राम। थेईत्राम थेइथेईत्राम थेईत्राम थेइ।
0 3

कवितांगीतोड़ा (काव्य पर आधारित)

झमकिझ मकिझम कतझन नननन। दिगदिगतादिग दिगदिगतादिग थेइतत ऽतथेई। धतकथुं गनधागे दिगतागे
× 2 0
दिगतागे। धतकथुं गनताने दिगदिगतागे दिगतागे। ताथेइता थेईताथे इताथेइ ताऽथेई। ऽऽऽता थेइताथे इताथेइ
3 × 2
ताथेइता। थेइताऽ थेइऽऽ ऽताथेइ ताथेइता। थेईताथे इताथेइ ताऽथेइ ऽऽऽता।
0 3

पक्षीपरन

किटतक तातकूकू जेहकुकु किट्टाकुकु। टेहकुकु थर्रकुकु झिनकुकु, ताऽकुकु।
× 2
खिर्रकुकु थर्रकुकु किट्टाकुकु टेहकुकु। टेहकुकु धिधिकुकु टेहकुकुधिधकुकु। धा
0 3

प्रमिलू–परन

शोभना नारायण

लसतय मुनतट कसतपी ऽतपट। झटपट नटतना गृदगृद गृदनाना।
× 2
मोऽरमु कुटधर शीऽशल कुटकर। पगपट कतझट कतपी ऽतांबर।
0 3
कृष्णकुँ बरनट बरमुर लीऽधर। कीजै जैकृष्ण कुँवर नटवर।
× 2
मुरलीऽ धरकीऽ जैजै कृष्णकुँ। वरनट बरमुर लीऽधर कीजै।
0 3

शंकर–स्तुति

धा धिन धिन धा। जटा ऽजू ऽट मध । गंऽ गझ लक् कत । सीऽ सचं ऽद्र लीऽ ।
× 2 0 3
ल्लाऽ टझ लक् कत । मुंऽ डमा ऽल गले । शेऽ षध रणि धर । पाऽ रव तीऽ पति ।
× 2 0 3
शिव हर हर पाऽ । रव तीऽ पति शिव । हर हर पाऽ रव । तीऽ पति शिव हर। हर
× 2 0 3

गणेश–स्तुति

गणा ऽना ऽम गण । पति गणे ऽश लम्। बोऽ दर सोऽ हेऽ, । भुजा ऽचा ऽर एक
× 2 0 3
दऽ न्तच ऽन्द्र माऽ । लला ऽट राऽ जैऽ । ब्रऽ ह्म विष् णुम । हेऽ शता ऽल देऽ
× 2 0 3
धुर पद गाऽ वेऽ, । अति विचि ऽत्र गण,। नाऽ थआ ऽज मिर । दंऽ गब जाऽ वेंऽ।

ठेका झपताल

ततकार का प्रकार एवं पलटे

दिगदिग दिगदिग। ताऽथेई, ततआऽ थेईतत्। दिगदिग दिगदिग। ताऽथेई, ततआऽ थेईतत्।
× 2 0 3
दिगदिग ताऽथेई। ततदिग दिगआऽ थेईतत्। दिगदिग ताऽथेई। ताऽथेई, ततआऽ थेईतत्।
× 2 0 3
दिगदिग दिगदिग। दिगदिग दिगदिग ताऽथेई। ततआऽ थेईतत। ताऽथेई, ततआऽ थेईतत।
× 2 0 3

तिहाई

ताऽथेई, ततआऽ । थेईतत् दिगदिग ताऽथेई । ततआऽ थेईतत् । दिगदिग थेईऽऽ दिगदिग ।
× 2 0 3
थेईऽऽ दिगदिग । थेईऽऽ थेईऽऽ ताऽथेई । ततआऽ थेईतत । दिगदिग ताऽथेई ततआऽ ।
× 2 0 3
थेईतत दिगदिग । थेईऽऽ दिगदिग थेईऽऽ । दगदिग थेईऽऽ । दिगदिग थेईऽऽ दिगदिग । थेई
× 2 0 3

तिहाइयाँ

तिग्दाऽदिगदिग तिग्दाऽदिगदिग। तिग्दाऽदिगदिग तिग्दाऽदिगदिग थेई। थेई थेई ।
× 2 0
तिग्दाऽदिगदिग तिग्दाऽदिगदिग तिग्दाऽदिगदिग। तिग्दाऽदिगदिग थेई। थेई थेई तिग्दाऽदिगदिग।
3 × 2
तिग्दाऽदिगदिग तिग्दाऽदिगदिग। तिग्दाऽदिगदिग थेई थेई। थई
0 3

सलामी का टुकड़ा

× 2 0 3
तऽ ऽत । तऽ ऽत ताऽ । थेई थेई । तत आऽ थेई।
थेई तत। तऽ ऽत तऽ । ऽत थेई । ऽऽ ऽऽ ऽऽ।
तऽ ऽत । तऽ ऽत थेई । ऽऽ ऽऽ । ऽऽ तऽ ऽत।
तऽ ऽत । थेई ऽऽ ऽऽ । ऽऽ तत । तत ताऽथेई थेईतत।
आऽथेई थेईतत। तत तत थेई। याथे ईया। त्राम तत तत।
ताऽथेईथेईतत आऽथेईथेईतत। तततत थेई ताऽथेईथेईतत। आऽथेईथेईतत तततथेई। ताऽथेईथेईतत आऽथेईथेईतत
तततत। थेई

आमद

× 2 0 3

धतिटधा तिटधाधा। तिटक्रधा तिटक्रधा तिटधागे। दिगनन, गिनधेत। धेत्तग ऽन्नधाऽ तिटऽके।

× 2 0 3

तऽगदि ऽगनऽ। धाऽतिट कतगदि गनधाऽ। तिटकतगदिगन धाऽताऽधाऽतिट। कतगदिगनधाऽ

× 2 0 3

ताऽधाऽतिटकत गदिगनधाताऽ। धाऽताऽ थेईतत। थेईआऽ थेईतत थेईथेई। तथेईत थेईथेई। ताऽतत ताऽतत ताऽतत ताऽतत। ता

तोड़ा

त्रांऽग त्रांऽग । ऽऽ त्रांऽग तकत । ऽऽ तकत । तकत तकत थुन्न ।
दिगदिगदिग थेईऽ । ताथैया ताथैया ताथैया । ताथैया ततत । थुंथुंथु नानाना दिगदिगदिग।
थेईऽ ततत । थुंथुंथुं नानाना दिगदिगदिग। थेईऽ ततत । थुंथुंथुं नानाना दिगदिगदिग। थेई

× 2 0 3

चक्करदार–परन

धेतधेत त्रकधेत । तगन्न धेऽत्ताऽ तगन्न । धेऽत्ताऽ धेतधेत । ताऽघेघे तिटकत गदिगन ।
धाऽघेघे तिटकत । गदिगन धाऽघेघे तिटकत । गदिगन धाऽऽऽ । धेतधेत त्रकधेत तगन्न ।
धेऽत्ताऽ तगन्न । धेऽत्ताऽ धेतधेत ताऽघेघे । तिटकत गदिगन । धाऽघेघे तिटकत गदिगन ।
धाऽघेघे तिटकत । गदिगन धाऽऽऽ धेतधेत । त्रकधेत तगन्न । धेऽत्ताऽ तगन्न धेऽत्ताऽ ।
धेतधेत ताऽघेघे । तिटकत गदिगन धाऽघेघे । तिटकत गदिगन । धाऽघेघे तिटकत गदिनन । धा

× 2 0 3

कवित्त

जमुनाके तटपर । बंऽसीब जाऽवत धेऽनुच। राऽवत गोऽपीन । चाऽवत ग्वालबा ऽलसंग।

× 2 0 3

नचतक न्हैयाताता। थेईताता थेईताता थेईताता। थेईताता थेईताता। थेईताता थेईताता थेईताता। थेई

× 2 0 3

नृत्य संगति हेतु लहरें

तीन–ताल

राग खमाज

सां – नि ध। – म प ध। म ग – सा। ग म प नि।
x 2 0 3

राग चन्द्रकौंस

ग म ध नि। सां – – सां। नि ध नि सां। नि ध म गसा।
3 x 2 0

राग नाटकुरंजिका

म – ध नि। सां – रें नि। सां ध – म। म म रे सा।
3 x 2 0

राग कीरवाणी

ग सासा ध नि। सा सा सा सारे। प पप ध प। म ग रे गम।
3 x 2 0

झपताल

राग –दुर्गा

ध – । म – प । म म । रे – सा ।
x 2 0 3

राग वृंदावनी सारंग

सां – । नि प म । रे म । रे नि सा।
x 2 0 3

एकताल

रागवागेश्री

सां – । नि ध । म ध । नि ध। म ग । रे सा।
x 0 2 0 3 4

राग मालकौस

सां – । नि सां । ध नि। ध म । ग सा । नि सा।
x 0 2 0 3 4

पद्मभूषण स्व. कलानिधि नारायणन

चतुर्विध अभिनय